सामयिक वार्ता

अप्रैल 2024 ❐ मूल्य : 20 रुपए



मोदी राज के दस साल

नफरत की राजनीति, याराना पूँजीवाद और रसातल में लोकतंत्र

राजेन्द्र राजन की कविताएँ



फन्ने खां : एक

सिर्फ फन्ने खां सोचता था
बाकी सब सिर हिलाते थे
सिर्फ फन्ने खां जानता था
बाकी सब वही जानते थे
जो फन्ने खां बताता था
सिर्फ फन्ने खां बोलता था
बाकी सब तालियाँ बजाते थे

कैसा समय आ गया था
जब सबका सोचना
जानना समझना
सब एक फन्ने खां में समा गया था।

फन्ने खां : दो

फन्ने खां के मुरीद
लोगों से अकसर कहते
कि फन्ने खां के रहते
कभी तूफान नहीं आ सकता
अगर आएगा भी
तो फन्ने खां के सीने से टकराकर
लौट जाएगा

लोग सुन लेते
कुछ दाँतों तले अंगुलियाँ दबाकर
कुछ मुस्कराकर
और तूफान की तरफ से निश्चिंत होकर
चुपचाप अपना काम करते जाते

लेकिन एक दिन जोरों का तूफान आया
सारा वातावरण काँपने लगा
पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी
लोग भयातुर हो चिल्लाने लगे
फन्ने खां कहाँ है
फन्ने खां कहाँ है

लेकिन न कहीं फन्ने खां दीख रहा था
न उसका कोई मुरीद

फन्ने खां उस वक्त
बिस्तर में दुबका
तूफान के गुजर जाने का
इंतजार कर रहा था

जब तूफान थम गया और लोगबाग
तूफान के थपेड़ों से टूटी अपनी जिंदगियों
और को घरों को दुरुस्त करने में लगे थे
फन्ने खां बिस्तर से निकलकर
बालकनी में आ खड़ा हुआ
और सीना फुलाते हुए
तूफान को ललकारने लगा

फन्ने खां के मुरीद भी
फिर से नजर आने लगे
कहने लगे
अगर फन्ने खां न होता तो
तूफान जाता ही नहीं
धन्यवाद फन्ने खां।

फन्ने खां : तीन

लोगों ने सुन रखा था
कि फन्ने खां झुकना नहीं जानता
वह तभी झुकता है
जब सजदे में होता है

एक दिन ऐसी जोर की हवा चली
कि परदा टूटकर गिर गया
लोगों ने हैरत से देखा
फन्ने खां झुका हुआ है हाथ जोड़े
एक बड़ी सी तिजोरी के आगे

उसके होंठ हिल रहे थे
जैसे वह प्रार्थना कर रहा हो
या दुआ माँग रहा हो
फिर वह दोनों हाथ आगे बढ़ाये दंडवत लेट गया
जैसे तिजोरी के कदमों में बिछ गया हो

(शेष आवरण पृष्ठ 3 पर)

सामयिक वार्ता

अप्रैल 2024, वर्ष 46 अंक 1-2

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

संपादक : **अफलातून**

संपादन सहयोग
सच्चिदानंद सिन्हा,
चंचल मुखर्जी (संयोजक), लोलार्क द्विवेदी,
संजय गौतम, प्रियदर्शन, अरविंद मोहन,
हरिमोहन, राजेन्द्र राजन, अरुण कुमार त्रिपाठी,
महेश विक्रम सिंह, संजय भारती, गंगा प्रसाद, स्मिता

प्रबन्ध सहयोग : नीता चौबे
अक्षर संयोजन : गौरीशंकर सिंह
आवरण चित्र : **हकु शाह**
सौजन्य से : **पार्थिव शाह**

खाता नाम - सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा - सोनारपुरा, वाराणसी
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या **40170100005458**
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहाँ दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं
S के बाद O (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
इस खाते में पैसा जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना
ई-मेल अथवा मोबाइल-08765811730/ 08004085923

कार्यालय
डी. 28/160, पाण्डे हवेली, वाराणसी-221001
फोन : 08004085923 (संपादन),
08765811730 (प्रबंध)
e-mail- varta3@gmail.com

इस अंक में

सदस्यता शुल्क : एक प्रति : 20/-, वार्षिक शुल्क : 150/-, संस्थागत वार्षिक शुल्क : 200/-
पाँच वर्षीय शुल्क : 600/-, आजीवन शुल्क : 2000/-

संपादकीय

तीसरी आजादी की लड़ाई

जनता और संसद की अलग-अलग औकात को गांधीजी ने 'रचनात्मक कार्यक्रम' नामक पुस्तिका में स्पष्ट किया है । उम्मीद है इन बुनियादी बातों को हम इतिहास के इस मोड़ पर याद रखेंगे। इस विषय में गांधीजी कहते हैं, ''हम अरसे से इस बात को मानने के आदी बन गये हैं कि आम जनता को सत्ता या हुकूमत सिर्फ धारा सभा (विधायिका या संसद) के जरिये मिलती है। इस खयाल को मैं अपने लोगों की एक गंभीर भूल मानता रहा हूँ। इस भ्रम या भूल की वजह या तो हमारी जड़ता है या वह मोहिनी है, जो अंग्रेजों के रीति-रिवाजों ने हम पर डाल रखी है। अंग्रेज जाति के इतिहास के छिछले या ऊपर-ऊपर के अध्ययन से हमने यह समझ लिया है कि सत्ता शासन-तंत्र की सबसे बड़ी संस्था संसद से छनकर जनता तक पहुँचती है। सच बात यह है कि हुकूमत या सत्ता जनता के बीच रहती है, जनता की होती है और जनता समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों की हैसियत से जिनको पसंद करती है, उनको उतने समय के लिए उसे सौंप देती है। यही क्यों, जनता के बिना स्वतंत्र संसद की सत्ता तो ठीक, हस्ती तक नहीं होती। पिछले इक्कीस बरसों से भी ज्यादा अरसे से मैं यह इतनी सीधी-सादी बात लोगों के गले उतारने की कोशिश करता रहा हूँ। सत्ता का असली भण्डार या खजाना तो जनता की सत्याग्रह की या सिविल नाफरमानी की शक्ति में है। एक सूमचा राष्ट्र अपनी संसद के कानूनों के अनुसार चलने से इनकार कर दे, और इस सिविल नाफरमानी के नतीजों को बरदाश्त करने के लिए तैयार हो जाए तो सोचिये कि क्या होगा! ऐसी जनता संसद को और उसके शासन-प्रबंधन को जहाँ का तहाँ, पूरी तरह, रोक देगी। सरकार की, पुलिस की या फौज की ताकत, फिर वह कितनी ही जबरदस्त क्यों नहीं हो, थोड़े लोगों को ही दबाने में कारगर होती है। लेकिन जब कोई समूचा राष्ट्र सब कुछ सहने को तैयार हो जाता है, तो उसके दृढ़ संकल्प को डिगाने में किसी पुलिस की या फौज की कोई जबरदस्ती काम नहीं देती।'' खेती को गुलाम बनाने तथा पूँजीपतियों के हाथों में सौंपने के कदम के प्रतिकार में चले संयुक्त किसान मोर्चे के ऐतिहासिक किसान आंदोलन ने लोकतंत्र की इसी श्रेष्ठतम शक्ति का प्रदर्शन किया। इसके फलस्वरूप उन कानूनों को संसद के द्वारा ही बापस लेना पड़ा। वनों को पूँजीपतियों को सौंपने के लिए लंबे संघर्ष के बाद मिले अधिकारों को भी इस सरकार ने बेहिचक छीना है।

देश के नये संसद भवन के उद्घाटन के मौके पर हमारे गणतंत्र की मुखिया, राष्ट्रपति को निमंत्रित नहीं किया गया। उस आयोजन में प्रधानमंत्री की वेशभूषा, राजदंड और आडंबर किसी राजतंत्र का आभास दिला रहे थे। फिलहाल बहुदलीय चुनाव तो हो रहे हैं लेकिन ऐसा काफी कुछ हो रहा है जिससे लोकतंत्र की नींव खोखली हो रही है। संसद के भीतर और बाहर असहमति की आवाजों को दबाने के लिए तमाम दमनकारी कदम उठाए जा रहे हैं। संसद के सत्र के दौरान बड़ी संख्या में प्रतिपक्ष के सदस्यों को निलंबित कर कई कानून पास करा लिए गए। अभिव्यक्ति की आजादी को कुचलने के भी तमाम उपाए अपनाए गए हैं। मुख्यधारा के अधिकांश मीडिया प्रतिष्ठान स्वेच्छा से अथवा दबाव में सरकार के समक्ष घुटने टेक चुके हैं। सरकार के आत्मीय पूँजीपतियों द्वारा मीडिया प्रतिष्ठान खरीदे भी गए हैं। संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता और स्वतंत्रता समाप्त कर उन्हें प्रतिपक्ष और प्रतिवाद की आवाज को कुचलने के औजार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। प्रवर्तन निदेशालय (ई.डी.),सी.बी.आई, आयकर विभाग, चुनाव आयोग इनमें प्रमुख औजार हैं। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दायर ९० फीसदी मामले प्रतिपक्ष के नेताओं पर है तथा प्रतिपक्ष शासित राज्यों के हैं। शासन के शीर्ष में बैठे नेताओं द्वारा प्रतिपक्ष के नेताओं का भयादोहन आम चलन हो गया है। धनशोधन निवारण कानून (पीएमएलए) तथा गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) कानून (यूएपीए) की जमानत न देने के प्रावधानों के आधार पर कई राजनैतिक और सामाजिक कर्मियों को वर्षों जेलों में निरुद्ध रखा गया। देश के मूर्धन्य समाजसेवी फादर स्टैन स्वामी की इन्हीं प्रावधानों के कारण जेल में मृत्यु हुई।

इस आम चुनाव के पहले ही हमारे लोकतंत्र की बुनियादी कमजोरियों का पर्दाफाश हो गया है। चुनाव के

दौरान उम्मीदवारों के खर्च का हिसाब बार-बार जमा कराया जाता है। आयोग द्वारा नियुक्त वित्तीय अधिकारी हिसाब किताब का निरीक्षण भी करते हैं। उम्मीदवारों के चुनाव खर्च की सीमा निर्धारित है। ध्यान देने लायक बात है कि राजनैतिक दलों द्वारा किए गए चुनाव खर्च की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। इस वजह से बहुदलीय लोकतंत्र में असीमित चुनाव खर्च की वैधानिक छूट है। इस छूट की वजह से उम्मीदवारों के खर्च की सीमा बेमानी हो जाती है। चुनाव अवधि में दलों के चुनाव खर्च को जमा करने की अनिवार्यता भी नहीं है। इस प्रकार दलों द्वारा चुनाव में काला धन लगाने का रास्ता बिना रोकटोक के बना रहता है। 27 अगस्त 2018 को भारत के निर्वाचन आयोग ने दलों द्वारा किए गए चुनाव खर्च के विषय में एक बैठक बुलाई थी। 42 राजनैतिक दलों ने इस बैठक में भाग लिया। 41 दल इस राय के थे कि दलों द्वारा चुनाव खर्च की भी सीमा निर्धारित होनी चाहिए। एकमात्र भारतीय जनता पार्टी दलों द्वारा किए गए चुनाव खर्च की सीमा निर्धारित करने के खिलाफ थी। आयोग द्वारा इस बैठक के नतीजों को लागू करने के निवेदन के साथ केंद्र सरकार को पत्र भी लिखा गया। भारतीय जनता पार्टी की सरकार द्वारा इस बैठक के नतीजों पर विचार ही नहीं किया गया।

2017 के वित्त विधेयक से जोड़ कर भाजपा सरकार **चुनावी बॉन्ड योजना** लाई। इस योजना के तहत दलों को बिना स्रोत सार्वजनिक किए असीमित चंदा प्राप्त करने का प्रावधान था। इस योजना को लागू करने के लिए जन प्रतिनिधित्व कानून, कंपनी कानून, आयकर कानून आदि में संशोधन भी किए गए। सरकार ने तब दावा किया तथा प्रधानमंत्री अब भी दावा कर रहे हैं कि यह योजना पार्दर्शिता लाने तथा चुनाव में काला धन रोकने के लिए लाई गई थी। यह दावा भी नोटबंदी द्वारा काला धन समाप्त करने की उलटबाँसी की तरह था। बहरहाल सर्वोच्च न्यायालय की पांच सदस्यीय संवैधानिक पीठ ने चुनावी बॉन्ड योजना तथा इसके लिए लिए समस्त कानूनों में संशोधनों को असंवैधानिक ठहरा कर रद्द कर दिया है। सरकार ने पूर्ण बेहयाई से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के द्वारा किसने किस दल को कितना चंदा दिया यह आम चुनाव के पहले सार्वजनिक न होने देने का निष्फल प्रयास किया।

चुनावी बॉन्ड के लेन देन के सार्वजनिक हो जाने के बावजूद ऊँट के मुंह में जीरा ही प्रकट हुआ है परंतु इस लेन देन से 'घूस की रसीद' जनता के हाथ लग गई हैं। कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा ऐलानिया इस योजना का विरोध करने और इन बॉन्ड्स को न स्वीकार करने का निर्णय निश्चित ही स्वागत योग्य है।

संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों का निलंबन 26 जून 1975 को आंतरिक आपातकाल लागू करके हुआ था। 1977 का आम चुनाव विपक्षी एकता स्थापित कर 'लोकतंत्र बनाम तानाशाही' के मुद्दे पर लड़ा गया तथा पहली बार केंद्र में सत्ता परिवर्तन हुआ। 1977 में बनी सरकार ने आंतरिक आपातकाल लागू करने की प्रावधान को बहुत कठिन बना दिया। संसद में दो तिहाई बहुमत के अलावा दो तिहाई राज्यों में दो तिहाई बहुमत के बाद ही इसे लागू किया जा सकता है। 1977 के आम चुनाव के परिणामों को **'दूसरी आजादी की लड़ाई'** कहा गया। आंतरिक आपातकाल के 19 महीनों में संविधान प्रदत्त मौलिक आजादियाँ छिन गई थीं। आपातकाल के समर्थक विनोबा ने आपातकाल को **'अनुशासन पर्व'** कहा था तब मूर्धन्य गांधीवादी चिंतक दादा धर्माधिकारी ने इसे **'दुःशासन पर्व'** कहा था। मौजूदा आम चुनाव देश की जनता **'तीसरी आजादी की लड़ाई'** के रूप में लड़ेगी और जीतेगी।

भारतीय जनता पार्टी के दस वर्षों के शासन में देश के प्राकृतिक संसाधन और जनता की दौलत से बने बंदरगाह, हवाई अड्डे, रेलवे, संचार-साधन आदि को याराना कॉर्पोरेट घरानों को सौंपना एक प्रमुख कार्यक्रम था। इटली के तानाशाह शासक बिनेटो मुसोलिनी के नाम के साथ 'फासीवाद' जुड़ा है। मुसोलिनी ने खुद फासीवाद को इन शब्दों में परिभाषित किया, **''फासीवाद को ज्यादा मुनासिब तौर पर कॉर्पोरेटवाद कहा जाना चाहिए क्योंकि यह राज्य सत्ता और कॉर्पोरेट -सत्ता का विलय ही तो है।''**

सामयिक वार्ता के प्रकाशन में लंबा अंतराल रहा जिसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। देश के इतिहास के इस महत्वपूर्ण मोड़ पर 'मोदी राज के दस साल' पर यह विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। देश के मूर्धन्य अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री, पत्रकार, चिकित्सक तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने सामयिक वार्ता के लिए लिखकर अपना जरूरी सहयोग दिया है। इन लेखों से 'दुःशासन पर्व' को समझने में मदद मिलेगी। वर्तमान निर्वाचन प्रणाली के विकल्प के रूप में हम आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली को मानते हैं तथा इसकी तफसील को भी इस अंक में दिया गया है। हम सभी विशिष्ट लेखकों के आभारी हैं।

अप्रैल 2024

–अफलातून

जनतंत्र का भविष्य/किशन पटनायक

करीब 27 वर्ष पहले किशन पटनायक ने अपने मित्र राजकिशोर द्वारा सम्पादित पत्रिका 'दूसरा शनिवार' (सितम्बर 1997) के लिए यह लेख लिखा था। यह पुराना लेख भविष्य की बाबत है इसलिए और ध्यान खींचता है। कई बातें इस दौर के लिए भी प्रासंगिक और नई हैं। – अफ़लातून

सिर्फ भारत में नहीं, पूरे विश्व में जनतंत्र का भविष्य धूमिल है। 1950 के आसपास अधिकांश औपनिवेशिक मुल्क आजाद होने लगे। उनमें से कुछ ही देशों ने जनतंत्र को शासन प्रणाली के रूप में अपनाया। अभी भी दुनिया के ज्यादातर देशों में जनतंत्र स्थापित नहीं हो सका है। बढ़ते मध्य वर्ग की आकांक्षाओं के दबाव से कहीं – कहीं जनतंत्र की आंशिक बहाली हो जाती है। लेकिन कुल मिलाकर विकासशील देशों में जनतंत्र का अनुभव उत्साहवर्धक नहीं है। नागरिक आजादी की अपनी गरिमा होती है, लेकिन कोई भी विकासशील देश यह दावा नहीं कर सकता कि जनतंत्र के बल पर उसका राष्ट्र मजबूत या समृद्ध हुआ है या जनसाधारण की हालत सुधरी है।

अगर भारत में जनतंत्र का खात्मा जल्द नहीं होने जा रहा है, तो इसका मुख्य कारण यह है कि पिछड़े और दलित समूहों की अकांक्षाएँ इसके साथ जुड़ गई हैं। अतः जनतंत्र का ढाँचा तो बना रहेगा, लेकिन जनतंत्र के अन्दर से फासीवादी तत्वों का जोर-शोर से उभार होगा। जयललिता, बाल ठाकरे और लालू प्रसाद पूर्वाभास हैं। अरुण गवली, अमर सिंह जैसे लोग दस्तक दे रहे हैं। अगर वीरप्पन कर्नाटक विधान सभा के लिए निर्वाचित हो जाता है तो इक्कीसवीं सदी के लिए आश्चर्य की बात नहीं होगी। 2024 में वीरप्पन की बेटी भाजपा में शामिल हुई तथा उसने कहा, 'मुझे श्री नरेन्द्र मोदी की छवि दिखाई देती है।' यानी जनतंत्र जनतांत्रिक मूल्यों की रक्षा नहीं कर पा रहा है। अगर राजनीति की गति बदली नहीं, तो अगले दो दशकों में भारत के कई इलाकों में क्षेत्रीय तानाशाही या अराजकता जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

इसका मतलब यह नहीं कि जनतंत्र का कोई विकल्प है। अगर 1947 या 1950 में हम एक जनतांत्रिक शासन प्रणाली नहीं अपनाते, तो देश की हालत इससे भी बुरी होती। गलती यह हुई कि हम अपने जनतंत्र को सही रूप और चरित्र नहीं दे पाये। भारत के इतिहास, भूगोल, समाज और अर्थनीति को समझते हुए भारत में जनतंत्र का जो मौलिक स्वरूप होना चाहिए था, उसका निरूपण आज तक नहीं हो पाया है। हमारे नेतृत्व का दिवालियापन और बौद्धिक वर्ग की वैचारिक गुलामी इसके लिए दायी हैं। 1947 में उनके सामने सफ़ल जनतंत्र के दो नमूने थे और शासन व्यवस्था की एक औपनिवेशिक प्रणाली भारत में चल रही थी। इन तीनों को मिलाकर हमारे बौद्धिक वर्ग ने एक औपनिवेशिक जनतंत्र को विकसित किया है, जो जनतंत्र जरूर है, लेकिन अंदर से खोखला है। शुरु के दिनों में अन्य विकासशील देशों के लिए भारत की मार्गदर्शक भूमिका थी। जब भारत ही जनतंत्र का कोई मौलिक स्वरूप विकसित नहीं कर पाया, तो अन्य देशों के सामने कोई विकल्प नहीं रह गया।

पिछले पचास साल में भारत तथा अन्य विकासशील देशों में जनतंत्र की क्या असफलताएँ उजागर हुई हैं, उनका अध्ययन करना और प्रतिकार ढूँढना – यह काम भारत के विश्वविद्यालयों ने बिलकुल नहीं किया है। शायद इसलिए कि पश्चिम के समाजशास्त्र ने इसमें कोई अगुआई नहीं की। पश्चिम से सारे आधुनिक ज्ञान का उद्गम और प्रसारण होता है लेकिन वहाँ के शास्त्र ने भी 1950 के बाद की दुनिया में जनतंत्र की असफलताओं का कोई गहरा या व्यापक अध्ययन नहीं किया है, जिससे समाधान की रोशनी मिले। पश्चिम की बौद्धिक क्षमता संभवतः समाप्त हो चुकी है ; फिर भी उसका वर्चस्व जारी है।

1950 के आसपास जिन देशों को आजादी मिली, उन समाजों में आर्थिक सम्पन्नता नहीं थी और शिक्षा की बहुत कमी थी। इसलिए इन देशों के जनतांत्रिक अधिकारों में यह बात शामिल करनी चाहिए थी कि प्रत्येक नागरिक के लिए आर्थिक सुरक्षा की गारंटी होगी और माध्यमिक स्तर तक सबको समान प्रकार की शिक्षा उपलब्ध होगी। अगर ये दो बुनियादी बातें भारतीय जनतंत्र की नींव में होतीं, तो भारत की विकास की योजनाओं की दिशा भी अलग हो जाती। जाति प्रथा, लिंग भेद, सांप्रदायिकता और क्षेत्रीय विषमता जैसी समस्याओं के प्रतिकार के लिए एक अनुकूल वातावरण पैदा हो जाता। लोग जनतंत्र का एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर सकते थे।

हुआ है उलटा। सारे समाज विरोधी तत्व जनतंत्र का उपयोग अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए कर रहे हैं। राजनीति पर उन्हींका अधिकार है। जनतंत्र एक व्यापक राजनीति के द्वारा संचालित होता है। इस राजनीति का चरित्र

इतना भयावह होता गया है कि अच्छे लोगों के लिए राजनीति बर्जनीय मानी जा रही है। इसका तार्किक परिणाम है कि राजनीति पर अधिकारियों का अधिकार हो जायेगा। अगर विवेकशील लोगों का प्रवेश राजनीति में नहीं होगा तो भ्रष्ट लोगों का राजत्व अवश्य होगा। इस द्वन्द्व का समाधान कैसे होगा? अच्छे लोग राजनीति में कैसे आयेंगे और वहाँ अच्छे बन कर रहेंगे, इसका कोई शास्त्र या विवेचन होना चाहिए। समाज अगर जनतंत्र चाहता है, तो समाज के ही कुछ तरीके होने चाहिए, जिससे अच्छे लोग राजनीति में आयेंगे और बने रहेंगे यह सिलसिला निरंतरतापूर्वक चालू रहेगा। अगर वैसा नहीं होता है, तो राजतंत्र क्यों बुरा था? राजतंत्र को बुरा माना गया क्योंकि अच्छे राजा का बेटा अच्छा होगा इसका कोई निश्चय नहीं है। 150 साल के अनुभव से यह मालूम हो रहा है कि जनतंत्र में भी इसका निश्चय नहीं है कि एक बुरे शासक को हटा देने के बाद अगला शासक अच्छा होगा। अतः जनतंत्र को कारगर बनाने के लिए नया सोच जरूरी है। जनतंत्र के ढाँचे में ही बुनियादी परिवर्तन की जरूरत है।

राजनैतिक दल और राजनैतिक कार्यकर्ता आधुनिक जनतंत्र के लिए न सिर्फ अनिवार्य हैं, बल्कि उनकी भूमिका जनतंत्र के संचालन में निर्णायक हो गई है। फिर भी हमारे संविधान में ऐसा कोई सूत्र नहीं है, जिसके तहत नेताओं और दलों पर संस्थागत निगरानी रखी जा सके। ब्रिटेन या अमेरिका में जनमत यानी संचार माध्यमों की निगरानी को पर्याप्त माना जा सकता है। लेकिन भारत जैसे मुल्क में यह पर्याप्त साबित नहीं हो रही। पश्चिम के जनतंत्र को जो भी सीमित सफलता मिली है, उसके पीछे वहां के जनसाधारण की आर्थिक संपन्नता और शिक्षा का व्यापक प्रसार भी है। इसके अतिरिक्त कई प्रकार की परंपराएं वहां विकसित हो चुकी हैं। उन देशों के लोगों को यह बात बुरी नहीं लगती कि सारे स्थापित राजनैतिक दल पूँजीपतियों पर आश्रित हैं। भारत या किसी भी गरीब मुल्क में यह बात बुरी लगेगी कि सारे राजनैतिक दल पूँजीपतियों के अनुदान पर आश्रित हैं।

राजनीति का खर्च कहाँ से आयेगा? राजनीति का खर्च बहुत बड़ा होता है, राजनेताओं यानी राजनैतिक कार्यकर्ताओं का अपना खर्च है, संगठन का खर्च है, चुनाव और आन्दोलनों का खर्च है। यह कल्पना बिलकुल गलत है कि अच्छे काम के लिए पर्याप्त पैसे मिल जाते हैं। राजनीति का अनुभव है कि बुरे काम के लिए पैसे मिल जाते हैं। अच्छी राजनीति के लिए जितना पैसा जनसाधारण से मिलता है, उतने से काम नहीं चलता है। अतः राजनीति के लिए कहाँ से पैसा आयेगा, यह जनतंत्र का एक जटिल प्रश्न है और इसका एक सांविधानिक उत्तर होना चाहिए। अगर संविधान इसका उत्तर नहीं देगा, तो सारे के सारे राजनेता या तो पूँजीपतियों पर आश्रित होंगे या उनसे मिलकर भ्रष्टाचार को बढ़ायेंगे। कार्यकर्ता उनके पिछलग्गू हो जायेंगे। कार्यकर्ता का अपनी जीविका के लिए दल पर आश्रित रहना भी अच्छी बात नहीं है, क्योंकि वह दल का गुलाम हो जायेगा।

भारत जैसे देश में जनतंत्र को चलाने के लिए हजारों (शायद लाखों) राजनैतिक कार्यकर्ता चाहिए। संसद, विधान सभा, जिला परिषद, ग्राम पंचायत आदि को मिला कर हजारों राजनैतिक पद हैं। प्रत्येक पद के लिए अगर दो या तीन उम्मीदवार होंगे, तब भी बहुत बड़ी संख्या हो जायेगी। इनमें से बहुत सारे कार्यकर्ता होंगे, जिन्हें पूर्णकालिक तौर पर सार्वजनिक काम में रहना होगा तो उनके परिवारों का खर्च कहाँ से आएगा? भ्रष्टाचार की बात करनेवालों को इस प्रश्न का भी गंभीरतापूर्वक उत्तर ढूँढना पड़ेगा।

पिछले 50 साल की राजनीति पर हम संवेदनशील हो कर गौर करें, तो इस बात से हम चमत्कृत हो सकते हैं कि हजारों आदर्शवादी नौजवान देश के भविष्य को संदर बनाने के लिए परिवर्तनवादी राजनीति में कूद पड़े थे। आज अगर उनके जीवन इतिहासों का विश्लेषण करेंगे, तो मालूम होगा कि उनमें से अधिकांश बाद के दिनों में, जब उनको परिवार का भी दायित्व वहन करना पड़ा, या तो राजनीति से हट गये या अपने आदर्शों के साथ समझौता करने लगे। निजी तथा सार्वजनिक जीवन की जरूरतों को पूरी करने के लिए शुरु में छोटे-छोटे ठेकेदारों से, भ्रष्ट प्रशासकों से या काले व्यापारियों से चंदा लेना पड़ा। बाद में जब लगातार खर्च बढ़ता गया और प्रतिष्ठा भी बढ़ती गई, तब बड़े व्यापारियों और पूँजीपतियों के साथ साँठगाँठ करनी पड़ी। अगर वे आज भी राजनीति में हैं, तो अब तक इतना समझौता कर चुके हैं कि भ्रष्टाचार या शोषण के विरुद्ध खड़े होने का नैतिक साहस नहीं है। पिछले 50 साल आदर्शवादी कार्यकर्ताओं के सार्वजनिक जीवन में पतन और निजी जीवन में हताशा का इतिहास है।

अगर शुरू से ही समाज का कोई प्रावधान होता कि राजनीति में प्रवेश करनेवाले नौजवानों का प्रशिक्षण-प्रतिपालन हो सके, उनके लिए एक न्यूनतम आय की व्यवस्था हो सके, तो शायद वे टूटते नहीं, हटते नहीं, भ्रष्ट नहीं होते। कम से कम 50 फीसदी कार्यकर्ता और नेता स्वाधीन मिजाज के होकर रहते। अगर किसी जनतंत्र में 10 फीसदी राजनेता बेईमान होंगे तो देश का कुछ बिगड़ेगा नहीं। अगर 50 फीसदी बेईमान हो जायें, तब भी देश चल सकता है। अब तो इस पर भी संदेह होता है कि सर्वोच्च नेताओं के 5 फीसदी भी देशभक्त और इमानदार हैं या नहीं।

समाज के अभिभावकों का, देशभक्त कार्यकर्ताओं का संरक्षण समाज के द्वारा ही होना चाहिए। सारे राजनेताओं को हम पूँजीपतियों पर आश्रित होने के लिए छोड़ नहीं सकते।

समाज खुद उनके प्रशिक्षण और प्रतिपालन का दायित्व ले। इस दायित्व को निभाने के लिए यदि बनी बनाई संस्थाएँ नहीं हैं, तो सांविधानिक तौर पर राज्य के अनुदान से संस्थायें खड़ी की जाएं। जिस प्रकार न्यायपालिका राज्य के अनुदान पर आधारित है, लेकिन स्वतंत्र है, उसी तरह राजनेताओं का प्रशिक्षण और प्रतिपालन करनेवाली संस्थायें भी स्वतंत्र होंगी। केवल चरित्र, निष्ठा और त्याग के आधार पर राजनैतिक संरक्षण मिलना चाहिए। जो आजीवन सामाजिक दायित्व वहन करने के लिए संकल्प करेगा . जो कभी धन संचय नहीं करेगा, जो संतान पैदा नहीं करेगा, उसीको सामाजिक संरक्षण मिलेगा। जो धन संचय करता है, तो संतान पैदा करता है, उसको भी राजनीति करने, चुनाव लड़ने का अधिकार होगा, लेकिन उसे सामाजिक संरक्षण नहें मिलेगा। जिसे सामाजिक संरक्षण मिलेगा उसके विचारों पर अनुदान देनेवालों का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। सिर्फ आचरण पर निगरानी होगी। निगरानी की पद्धति पूर्वनिर्धारित रहेगी।

यह कोई विचित्र या अभूतपूर्व प्रस्ताव नहीं है। कोई भी राज्य व्यवस्था हो, सार्वजनिक जीवन में चरित्र की जरूरत होगी। किसी भी समाज में समर्पित कार्यकर्ताओं का एक समूह चाहिए। आधुनिक युग के पहले संगठित धर्म ने कई देशों में सार्वजनिक जीवन का मार्गदर्शन किया। धार्मिक संस्थाओं ने भिक्षुओं, ब्राह्मणों, बिशपों को प्रशिक्षण और संरक्षण दिया, ताकि वे सार्वजनिक जीवन का मानदंड बनाये रखें। ग्रीस में और चीन में प्लेटो और कन्फ्यूशियस ने राजनैतिक कार्य के लिए प्रशिक्षित और समर्पित समूहों के निर्माण पर जोर दिया। सिर्फ आधुनिक काल में सार्वजनिक जीवन के मानदंडों को ऊँचा रखने की कोई संस्थागत प्रक्रिया नहीं तय की गयी है। इसलिए सारी दुनिया का सार्वजनिक जीवन अस्त-व्यस्त है। सार्वजनिक जीवन का दायरा बढ़ गया है, लेकिन मूल्यों और आदर्शों को बनाये रखने की संस्थायें नहीं हैं।

संविधान के तहत या राजकोष से राजनीति का खर्च वहन करना भी कोई नयी बात नहीं है। विपक्षी सांसदों और विधायकों का खर्च राजकोष से ही आता है। यह एक पुरानी मांग है कि चुनाव का खर्च भी क्यों नहीं? राजनीति का खर्च भी क्यों नहीं? कुछ प्रकार के राजनेताओं का जीवन बचाने के लिए केन्द्रीय बजट का प्रतिमाह 51 करोड़ रुपये खर्च होता है। करोड़पति सांसदों को भी पेंशन भत्ता आदि मिलता है। इनमें से कई अनावश्यक खर्चों को काट कर देशभक्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं के लिए एक सामाजिक कोष का निर्माण शुरु हो सकता है।

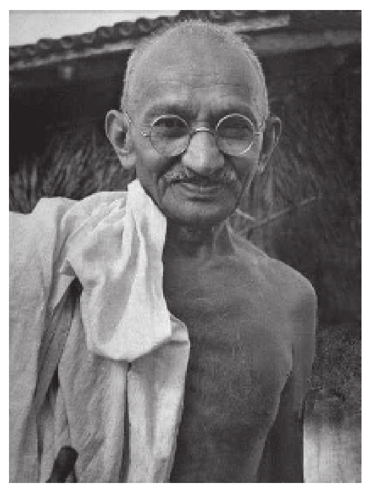
अगर विवेकशील लोग राजनीति में दखल नहीं देंगे तो भारत की राजनीति कुछ ही अरसे के अंदर अपराधियों और भ्रष्टाचारियों के हाथों में चली जायेगी। जो लोग इसके बारे में चिंतित हो रहे हैं, उन्हें एक मूल्य आधारित राजनैतिक खेमा खड़ा करना होगा। इस खेमे के लिए एक बड़े पैमाने का कोष निर्माण करना होगा। आज की संसद या विधान सभा इसके लिए अनुदान नहीं देगी। सामाजिक और स्वैच्छिक ढंग से ही इस काम को शुरु करना होगा।

धर्म-नियंत्रित समाजों के पतन के बाद नैतिक मूल्यों पर आधारित एक मानव समाज के पुनर्निर्माण के बारे में कोई व्यापक बहस नहीं हो पायी है, यह बहस अनेक बिंदुओं से शुरु करनी होगी। यह भी एक महत्वपूर्ण बिंदु है।

(स्रोत : दूसरा शनिवार, संपादक : राजकिशोर, सितंबर 1997)

आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है,पूंजी और मजदूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओरसे जिन मुट्ठीभर पैसेवाले लोगों के हाथों में राष्ट्र की संपत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है उनकी संपत्ति को कम करना और दूसरी ओर जो करोड़ों लोग अधपेट खाये और नंगे रहते हैं उनकी संपत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेइंतहा अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राजव्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आजाद हिंदुस्तान में देश के बड़े-से-बड़े धनिकों के हाथ में हुकूमत का जितना हिस्सा रहेगा उतना ही गरीबों के हाथ में भी होगा; और तब नई दिल्ली के महलों और उनकी बगल में बसी हुई गरीब मजदूर बस्तियों के टूटे-फूटे झोपड़ों के बीच जो दर्दनाक फरक आज नजर आता है,वह एक दिन को भी नहीं टिकेगा।

- ***गांधीजी,*** *(रचनात्मक कार्यक्रम,13. आर्थिक समानता)*



झूठी खुशहाली का ढिंढोरा

देश की अर्थव्यवस्था 2014 के बाद से लगातार ढलान पर

अरुण कुमार

सत्तारूढ़ दल आजकल चुनावी वेला में हर रोज धुआंधार ऐलान कर रहा है कि देश की अर्थव्यवस्था ऐसी रफ्तार पकड़ रही है कि उससे न सिर्फ अमीर, बल्कि गरीब भी खुशहाल हो रहे हैं। सरकार देश में गरीबी घटने का भी दावा कर रही है। कहा जाता है कि करीब 7% की दर से बढ़ने वाली भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया में सबसे तेजी से बढ़ने वाली बड़ी अर्थव्यवस्था है। इसके अलावा, यूक्रेन युद्ध और महामारी के कारण दुनिया में प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद महंगाई पर काबू पाने और रोजगार सृजन में बेहतरी का दावा भी किया गया है।

दावा यह भी है कि भारत ने इन वैश्विक तूफानों का अधिकांश अमीर देशों के मुकाबले बेहतर ढंग से सामना किया है, इसलिए यह 'विश्वगुरु' बन गया है। जी20 की अध्यक्षता को भारत के विश्व मंच पर प्रमुख खिलाड़ी बनने के प्रमाण की तरह पेश किया गया। दावा किया जाता है कि दुनिया में भारत की अहमियत बढ़ गई है क्योंकि उसे दूसरे देशों से सम्मान मिल रहा है और यूक्रेन और गाजा में युद्ध जैसे विश्व मामलों में उसके रुख की सराहना हो रही है। अर्थव्यवस्था के अच्छे प्रदर्शन का एक और संकेत दुनिया के प्रमुख कॉरपोरेट की भारत में निवेश करने की इच्छा बताई गई। आइए देखते हैं कि हकीकत क्या है।

1. आमदनी और गरीबी

सरकार के लिए अंतरराष्ट्रीय अनुमोदन महत्वपूर्ण है क्योंकि लोग उसे निष्पक्ष मानते हैं। लेकिन, क्या अनुमोदन वाकई मिला है? प्रति व्यक्ति आय, भुखमरी, लोकतंत्र के अधिकांश अंतरराष्ट्रीय मानकों पर भारत का प्रदर्शन खराब है। बेशक, अर्थव्यवस्था का आकार बड़ा है क्योंकि भारत दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है। लेकिन इससे दूसरे देशों के मुकाबले औसत भारतीय की दुर्दशा छुप जाती है। मसलन, अगर प्रति व्यक्ति आय के पैमाने पर देखें तो भारत दुनिया में 137वें स्थान पर है। अर्थव्यवस्था में भारी गैर-बराबरी के मद्देनजर इससे औसत भारतीय की हकीकत पर परदा डालने की कोशिश होती है।

भारत में अरबपतियों की तीसरी सबसे बड़ी संख्या है। इसलिए, प्रति व्यक्ति आय के आंकड़े भी अधिकांश भारतीयों की दयनीय स्थिति का बयान नहीं करते हैं। सरकार के मुताबिक ई-श्रम पोर्टल पर 30 करोड़ भारतीय पंजीकृत हैं। उनमें से 90% से अधिक ने प्रति माह 10, 000 रुपये से कम आय बताई है, जो प्रति व्यक्ति आय का दो-तिहाई ही बैठता है। और, ये असंगठित क्षेत्र के बेहतर स्थिति वाले मजदूर हैं। बदतर स्थिति वाले लोगों के पास कंप्यूटर या इंटरनेट की सुविधा नहीं है इसलिए वे पंजीकृत नहीं हैं। बेशक, उनकी आय कम होगी, गरीबी रेखा से भी नीचे। सो, कोई आश्चर्य नहीं कि सरकार को 81 करोड़ लोगों (जनसंख्या का 58%) को मुफ्त खाद्यान्न देना पड़ता है क्योंकि वे अपने परिवारों के लिए पर्याप्त भोजन-सामग्री खरीदने में असमर्थ हैं।

दावा किया जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था अब ब्रिटेन को पीछे छोड़कर दुनिया की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गई है। दावा किया गया है कि विकास की वर्तमान दर से भारत तीन वर्षों में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा और 2030 तक 7 ट्रिलियन (70 खरब) डॉलर तक पहुंच जाएगी। संयुक्त राष्ट्र, आइएमएफ और विश्व बैंक जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थान इन आंकड़ों का समर्थन करते हैं। वे कैसे नहीं कर सकते? दरअसल ये आंकड़े एकत्र करने वाली एजेंसियां नहीं हैं और उन्हें सरकारी आंकड़े का ही उपयोग करना होता है। इसलिए, सरकारी डेटा की त्रुटियां उनके डेटा और विश्लेषण में भी दोहराई जाती हैं। ये एजेंसियां केवल डेटा में कुछ फेरबदल करती हैं और काम जारी रखती हैं क्योंकि उनके लिए आधिकारिक आंकड़ों का उपयोग करना अनिवार्य है।

2. आर्थिक झटके और गैर-बराबरी

अर्थव्यवस्था कितनी अच्छी है, इस सवाल का जवाब इस बात पर निर्भर करता है कि किससे पूछा जाता है। सुखी-संपन्न और कारोबारी खुश हैं क्योंकि उन्हें लाड़-प्यार मिल रहा है और रियायतें दी जा रही हैं। आय में अधिकांश वृद्धि कारोबारियों और पेशेवर लोगों के मद में हुई है। संगठित क्षेत्र में रोजगार वाले मध्यम वर्ग को भी कुछ लाभ हुआ है। असली नुकसान निम्न मध्यम और गरीब वर्ग के लोगों को हुआ है। ये लोग असंगठित क्षेत्रों में हैं और वे घाटे में हैं। महंगाई बेहिसाब बढ़ने से इन तबकों के लोगों की वास्तविक आय भी घट गई है, खासकर रोजमर्रा की जरूरतों और खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि की मार भारी है।

असंगठित क्षेत्र और उसमें कार्यरत लोगों को सरकारी नीतियों की वजह से नुकसान उठाना पड़ा है। ये नीतियां हैं-

(1) अचानक नोटबंदी, 2) दोषपूर्ण जीएसटी, (3) अचानक लॉकडाउन और (4) एक हद तक 2018 में शुरू हुए गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं (एनबीएफसी) का संकट। इन सभी गलत कदमों का कुल असर यह हुआ कि असंगठित क्षेत्र की कीमत पर संगठित क्षेत्र विकसित हुआ। इससे आंकड़ों में अर्थव्यवस्था की अच्छी तस्वीर उभरती है, जबकि ऐसा है नहीं।

संगठित क्षेत्र में ऑटोमेशन और मशीनीकरण के कारण कम लोगों को रोजगार मिलता है, इसलिए रोजगारविहीन वृद्धि होती है। असंगठित क्षेत्र के उजड़ने का अर्थ है नौकरियां खत्म होना/काम न मिलना। सो, नतीजतन (कई प्रकार की) बेरोजगारी बढ़ रही है। इससे पारिवारिक गरीबी बढ़ती है।

इस असंगत वृद्धि का नतीजा अमीर, मध्यम वर्ग और गरीबों के बीच बढ़ती गैर-बराबरी है। इसकी वजह से आमदनी के निचले पायदान पर खड़े बड़ी संख्या में लोगों की क्रय शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिए, उपभोग की वस्तुओं की मांग काफी घट जाती है और अर्थव्यवस्था में मंदी की शिकार हो जाती है। यह महामारी से पहले भी देखा गया था जब विकास दर 8% से गिरकर 4% हो गई थी।

ऊपर बताए गए अर्थव्यवस्था को लगे चार झटकों का असर यह हुआ कि पिछले सात साल में असंगठित क्षेत्र को औसतन 12 लाख करोड़ रुपये यानी कुल 84 लाख करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है। इसके मुकाबले विभिन्न कल्याण कार्यक्रमों के मद में गरीबों को पिछले सात वर्षों में सिर्फ 25 लाख करोड़ रुपये की मदद मुहैया की गई है। लब्बोलुआब यह कि गरीबों को नुकसान झेलना पड़ा है।

फिर भी, तमाम मुश्किलों के बावजूद लोग आम चुनावों और कई विधानसभा चुनावों में मौजूदा सत्तारूढ़ पार्टी को ही वोट देना जारी रखते हैं। कोविड महामारी के दौरान संकट के बावजूद सत्तारूढ़ पार्टी उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव जीत गई।

इसकी कई वजहें हैं। एक, यह धुआंधार प्रचार किया जा रहा है कि देश काफी विकास कर रहा है। इसके अलावा, बहुसंख्यक समुदाय की धार्मिक भावनाओं का कुटील दोहन किया जा रहा है। और, न केवल सत्तारूढ़ दल बल्कि सत्ता में बैठा हर कोई गरीबों को 'लाभार्थी' बना रहा है। गरीबों को भोजन, नकद पैसे, मुफ्त बस यात्रा, लैपटॉप वैगरह की पेशकश की जाती है। इससे मतदाताओं को रिश्वत देने की सत्तारूढ़ दल की कोशिशें जायज बन जाती हैं। अंत में, अमीर देशों को लेकर मध्यम वर्ग में बैठी हीन भावना को भी भुनाया जाता है। भारत के विश्व नेता बनने का भाव देश के मध्यम वर्ग को लुभाता है क्योंकि उससे उनके भीतर पैठा असुरक्षा का भाव कुछ कम होता है और यह सोचकर वह खुश होता है कि वह अमीर देशों के लोगों के बराबर है।

3. आंकड़ों में हेरफेर

आंकड़े (डेटा) एक बड़ा मुद्दा है क्योंकि सरकार अपने कामकाज की अच्छी तस्वीर पेश करने के लिए उसमें हेरफेर कर रही है। सभी सरकारें ऐसा करती हैं लेकिन मौजूदा सत्तारूढ़ निजाम ने उसे नई ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है। हालांकि, उसके अपने शीर्ष अधिकारियों ने ही आंकड़ों की गुणवत्ता पर सवाल उठाया है। फिर, आंकड़े जब उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं आते हैं, तो उन्हें जारी नहीं किया जाता है (जैसे, बेरोजगारी का डेटा) या या दावा किया जाता है कि ये आंकड़े सही नहीं हैं (जैसे, जीडीपी के मामले में)।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि आंशिक या सीमित आंकड़ों और गैर-वाजिब पद्धति के जरिए सरकार अपने मनोनुकूल फरेबी आंकड़े पेश कर रही है। हाल में जारी गरीबी और राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का भी यही हाल है।

राष्ट्रीय आय के आंकड़ों के लिए घटते असंगठित क्षेत्र की जगह बढ़ते संगठित क्षेत्र को तवज्जो दी गई है। अब यह बात भी खुल गई है कि कृषि क्षेत्र के आंकड़े भी गलत है। इसलिए, जो असंगठित क्षेत्र 94% को रोजगार देता है और उत्पादन में 45% का योगदान देता है, उसका गलत अनुमान लगाया गया है।

सरकार संगठित क्षेत्र को बढ़ावा दे रही है और असंगठित क्षेत्र की दुर्दशा की अनदेखी कर रही है। संगठित क्षेत्र को कॉर्पोरेट कर दरों में कटौती, पीएलआइ योजना, डिजिटलीकरण और जीएसटी के मद में रियायतें दी जा रही हैं। कृषि उपज के विपणन को कॉर्पोरेट क्षेत्र को सौंपने की मांग की जा रही है। कृषि श्रमिकों, छोटे किसानों और कुटीर उद्योग के श्रमिकों की आय नाकाफी है और वे गरीबी रेखा पर जीवन-यापन करते हैं। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के इन वर्गों को संविधान में वादा किए गए 'जीने योग्य वेतन' से कम मेहनताना मिलता है। उनकी स्थिति दयनीय है। वे किसी संकट को झेलने के काबिल नहीं हैं, जैसा कि लॉकडाउन और महामारी के दौरान देखा गया।

ढहते असंगठित क्षेत्र को नजरअंदाज किया गया है, इसलिए जीडीपी में ऊपर की ओर रुझान दिखता है। अगर सरकार के जीडीपी डेटा को असंगठित क्षेत्र की गिरावट को जोड़कर उसे सुधारा जाए तो अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर सालाना 7% नहीं, बल्कि 1-2% बैठती है। 2016 में नोटबंदी के समय स्थिति बहुत खराब थी और 2017 में जीएसटी लागू होने के बाद स्थिति बदतर हो गई। यहां तक कि महामारी से पहले विकास की सरकारी दर भी 2017-18 में 8% से गिरकर 2019-20 में 4% हो गई थी। तो, इस हिसाब से विकास की वास्तविक दर जरूर नकारात्मक होगी।

सार संक्षेप यह है कि 2016-17 में नोटबंदी के बाद से

अर्थव्यवस्था बमुश्किल ही बढ़ी है। इस प्रकार, देश की वृद्धि दर −2% से +2% के बीच फंसी हुई है, जो दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में सबसे अधिक तो नहीं ही रही है। इसलिए यह 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था नहीं हो सकती और न ही यह जल्द ही तीसरी सबसे बड़ी विश्व अर्थव्यवस्था बन सकेगी।

इससे यह भी पता चलता है कि बेरोजगारी इतनी अधिक क्यों है। यह गरीबी के सबसे निचले स्तर का भी सूचक है। अगर 94% कार्यबल को रोजगार देने वाला असंगठित क्षेत्र बेतरह ढलान पर है तो विशाल बहुमत के लिए रोजगार और आय में गिरावट होगी ही। असंगठित क्षेत्र से ही गरीब जुड़े हुए हैं, इसलिए गरीबी बढ़ ही सकती है, कतई गिर नहीं सकती।

सरकार 2015-16 और 2019-21 के राष्ट्रीय स्वास्थ्य और परिवार सर्वेक्षण (एनएचएफएस) के आंकड़ों के आधार पर दावा करती है कि बहुआयामी गरीबी में गिरावट आई है। यह अजीब-सी बात है। 2020-21 में आय में गिरावट का गवाह हर कोई है। सरकार के गलत आंकड़ों से ही यह पता चलता है कि आजादी के बाद से आय में सबसे बड़ी गिरावट महामारी के कारण 2020-21 में हुई। इसके अलावा, उस वर्ष बड़ी संख्या में मौतें हुईं, जो कहीं दर्ज नहीं हुई। अंत में, इस गरीबी सूचकांक में तीसरा पैरामीटर शिक्षा है। यह पता है कि स्कूल और कॉलेज बंद थे और पढ़ाई न सिर्फ भारत में बल्कि अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी तबाह हो गई थी। इसलिए, 2015-16 के मुकाबले 2020-21 में किसी भी पैमाने से गरीबी भला कैसे कम हो सकती थी।

4. मौजूदा मुद्दे

आधिकारिक आंकड़ों के मुकाबले वास्तविक विकास दर कम है और बेरोजगारी अधिक है, तो गरीबी अधिक होगी। फिर, गैर-बराबरी सरकारी आंकड़ों से निकलने वाले संकेत से अधिक होगी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, असंगठित क्षेत्र में गिरावट की वजह से मांग संगठित क्षेत्र की ओर जाने से यह हुआ है। इसका असर यह हुआ कि कृषि और अर्थव्यवस्था के छोटे क्षेत्र हाशिए पर चले गए।

न केवल जीडीपी आंकड़ों को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है, बल्कि गरीबों के लिए महंगाई को भी कम बताया गया है, क्योंकि गरीबों के उपभोग की वस्तुओं की कीमतों में तेज वृद्धि हुई है। अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआइ) की उपभोक्ता टोकरी में ऐसी कई वस्तुएं हैं जिनका उपभोग गरीब नहीं, बल्कि अमीर करते हैं। इससे महंगाई की दर कम हो जाती है, हालांकि गरीबों को उच्च महंगाई का सामना करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप क्रय शक्ति घट जाती है।

अगर आय भी धीरे-धीरे बढ़ती रहती है तो महंगाई का असर कम होता है। लेकिन, हाशिए पर जीने वाले तबकों की आय ज्यादातर महंगाई के मुकाबले कम बढ़ी है, जिससे उनकी वास्तविक आय और उनके जीवन स्तर पर असर पड़ा है। मध्यम वर्ग के पास बचत है इसलिए वह अपनी बचत में कटौती करके महंगाई को झेल सकता है। इसका वास्तविक फायदा कारोबारी और अमीर लोग हैं। इन लोगों की आमदनी महंगाई से ज्यादा बढ़ती है। इसलिए, महंगाई मजदूरों की आमदनी के हिस्से को कारोबार और पेशेवर लोगों के बीच फिर से बांट देती है।

यह भी गौरतलब है कि जब महंगाई दर गिरती है तो उसका मतलब यह नहीं है कि कीमतें गिर जाती हैं। कुछ कम दर पर बढ़ोतरी जारी रहती है। इस प्रकार, महंगाई दर कम होती है, तब भी गरीबों पर उसका असर जारी रहता है। यहां तक कि मध्यम वर्ग पर भी उसका प्रतिकूल असर पड़ा है। भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआइ) से उम्मीद की जाती है कि वह कीमतों को काबू में रखने के कदम उठाए। लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि वह सिर्फ ब्याज दर में वृद्धि या नकदी पर अंकुश लगाकर मांग घटा सकता है। लेकिन समस्या अक्सर सूखे या बाढ़ या पश्चिम एशिया में अशांति के कारण तेल की कीमतों के झटके जैसी आपूर्ति में अड़चनों से पैदा होती है। इस पर आरबीआइ का काबू नहीं हैं।

बैंकिंग क्षेत्र अर्थव्यवस्था की सेहत के लिए महत्वपूर्ण है। बैंक न केवल बचत को बढ़ावा देता है, बल्कि सबसे बढ़कर निवेश बढ़ाने में मदद करता है जिससे अर्थव्यवस्था के विकास को रफ्तार मिलता है। इस प्रकार, बचत और कर्ज का लेनदेन किसी अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया का हिस्सा होता है। अगर कर्ज लेकर निवेश किया जाता है जिस पर मुनाफा होता है तो इससे कारोबार बढ़ता है।

बजट घाटा के मद्देनजर सरकार भी अपने खर्चों के लिए कर्ज लेती है। अगर कर्ज फायदे के मकसद से लिया गया है, जैसे पूंजी निर्माण के लिए, तो वह उपयोगी है। अगर इसका उपयोग मौजूदा खर्चों की भरपाई में किया जाता है तो उस पर कोई फायदा नहीं मिलता है और उससे कर्ज बढ़ जाता है। अगर इसका उपयोग शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च जैसी अर्थव्यवस्था की ताकत बढ़ाने के लिए किया जाता है तब भी वह उपयोगी है क्योंकि अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा और उत्पादकता बढ़ेगी और भविष्य में अधिक कर इकट्ठा होगा।

इसलिए, बैंकिंग क्षेत्र के लिए दो तरह की समस्याएं हैं। एक, अगर निजी क्षेत्र कर्ज लेता है और कारोबार में घाटे के कारण कर्ज में उठाई गई रकम लौटाने में असमर्थ है। दूसरे, सरकार अगर बजट में घाटे और उसके बढ़ने के कारण अधिक से अधिक कर्ज लेती है।

पहले मामले में, जब भुगतान में चूक होती है तो 'गैर-निष्पादित संपत्ति' (एनपीए) या डूबत खर्च का बोझ बढ़ता है। हुआ यही और 2018 में बैंकिंग में संकट पैदा हो गया। नतीजा यह हुआ कि बैंकों और 'गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों'

से कर्ज उगाही में गिरावट आई। लिहाजा, निवेश घट गया और मंदी का माहौल बन गया, जो पहले ही बढ़ती गैर-बराबरी की वजह मांग में गिरावट से छाया हुआ था। बैंकों को अपनी बैलेंस शीट साफ-सुथरी करने के लिए कर्ज माफ करने पड़े, जिससे घाटा हुआ। यह कर्ज माफी ज्यादातर उन बड़े कारोबारी घरानों को मिली, जो कर्ज लेकर वापस नहीं कर सके। हालांकि एनपीए की स्थिति में अब सुधार हुआ है।

एनपीए क्यों बढ़ा? बैंकों ने कर्ज उचित जांच-परख किए बिना दिए कि कर्ज लेने वाला उसे चुकाने के लिए मुनाफा कमा सकता है या नहीं। इससे बातें पता चलती हैं। एक, सरकार बड़ी बुनियादी ढांचा परियोजनाओं को बढ़ावा दे रही थी, जिनकी निर्माण अवधि लंबी थी और दूसरे, बड़े बुनियादी ढांचे की लागत बहुत अधिक थी, जिसे भारत जैसे गरीब देश में वापस वसूल करना मुश्किल है। फिर, इसमें याराना पूंजीवाद की बड़ी भूमिका थी। बिना उचित जांच-पड़ताल के कर्ज बांटे जा रहे थे, इसलिए याराना पूंजीवाद ने गहरी जड़ें जमा लीं। बैंकों पर उन पसंदीदा कारोबारियों को भी कर्ज देने के लिए राजनैतिक नेताओं और अफसरशाही की ओर से दबाव डाला गया जिनके पास कोई व्यावहारिक परियोजना भी नहीं थी। अपने रसूख के कारण इन कारोबारियों को लगा कि उन्हें बैंक को पैसा लौटाने की जरूरत नहीं है और वे उस पूंजी का लाभ उठाकर कारोबार का और विस्तार कर सकते हैं। याराना पूंजीवाद की जय है।

एक दूसरी समस्या सरकार की मौजूदा खपत के लिए बढ़ती कर्ज उगाही की है। इससे कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों में सरकार का कर्ज सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के लगभग 50% से बढ़कर लगभग 80% हो गया है। इससे अर्थव्यवस्था में मांग पैदा होती है, लेकिन बजट में ब्याज का बोझ बढ़ता जाता है, जो अब बजट की सबसे बड़ी मद बन गया है। इसका असर यह होता है कि सार्वजनिक निवेश और कल्याणकारी योजनाओं के लिए खजाना खाली हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक मंदी आती है और गरीबों को मार झेलनी पड़ती है।

सरकार घरेलू अर्थव्यवस्था से भी कर्ज उठाती है और विदेशों से भी कर्ज लेती है। शेयर बाजारों में विदेशी फंड पैसे लगा रहे हैं। ये तरह के हैं: विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआइ) और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआइ)। एफपीआइ के मुकाबले एफडीआइ कुछ अधिक स्थाई होते हैं और फौरन पैसे नहीं निकाल सकते हैं। अगर अर्थव्यवस्था में भुगतान संतुलन (बीओपी) की समस्या पैदा होती है तो विदेशी निवेशकों का भरोसा डिग जाता है और वे अपना पैसा निकालना शुरू कर देते हैं। इससे हालात और बिगड़ जाते हैं। अर्थव्यवस्था में संकट पैदा हो जाता है जैसा कि 1989-90 और फिर 2012-13 में हुआ था। आज विदेशी कर्ज करीब 630 अरब डॉलर है जबकि विदेशी मुद्रा भंडार करीब 620 अरब डॉलर है।

ये हालात गंभीर हैं। किसी भी मौके पर देश की अर्थव्यवस्था में भरोसे की कमी से संकट पैदा हो सकता है और दूसरे देशों की मुद्राओं की तुलना में रुपये की कीमत गिर सकती है। इससे महंगाई बढ़ेगी क्योंकि आयातित सामान महंगा हो जाएगा। इससे निर्यात सस्ता होना चाहिए लेकिन ऐसी स्थिति में जब विश्व अर्थव्यवस्था में मंदी हो, तो ऐसा नहीं होता है। इसका नतीजा निवेश और खासकर सार्वजनिक निवेश में गिरावट आती है, जो आर्थिक मंदी को बदतर बनाता है।

आर्थिक मंदी बेरोजगारी बढ़ाती है। हर साल 2.4 करोड़ युवा काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन संगठित क्षेत्र में केवल 50 लाख नौकरियां ही पैदा होती हैं। बाकियों को कम आमदनी वाले संकटग्रस्त असंगठित क्षेत्र में जाना होगा। ज्यादातर लोगों को अपने लिए रोजगार पैदा करना पड़ता है, जैसे, रिक्शा चलाना या सिर पर बोझ ढ़ोना या सड़क किनारे मूंगफली बेचना। बहुत-से शिक्षित युवा पुलिस, सेना, प्रशासनिक सेवाओं वगैरह की परीक्षाओं की तैयारी में जिंदगी के कई कीमती वर्ष गुजार देते हैं।

बेरोजगारी पढ़े-लिखे युवाओं और महिलाओं में सबसे अधिक है। इससे युवाओं में निराशा है। सरकार बेरोजगारी की इस बढ़ती समस्या के प्रति संवेदनशील नहीं है, जबकि 2019 में उसी की रिपोर्ट में बताया गया था कि बेरोजगारी 45 साल के उच्चतम स्तर पर पहुंच गई है। फिर बेरोजगारी की गलत परिभाषा के आधार पर यह दावा किया गया है कि सिर्फ 50-80 लाख नौकरियां पैदा करने की जरूरत है। समस्या यह है कि 28 करोड़ रोजगार-नौकरियों की दरकार बनी हुई है और हर साल और 2.4 करोड़ नौकरियां पैदा करने की जरूरत खड़ी हो जाती है। लेकिन सरकार पूंजी प्रधान संगठित क्षेत्र को बढ़ावा दे रही है, न कि श्रम प्रधान असंगठित क्षेत्र को। इसलिए, न केवल रोजगार विहीन वृद्धि हो रही है, बल्कि रोजगार हानि में भी बढ़ोतरी हो रही है।

मौजूदा प्रौद्योगिकी कृषि, बैंकिंग, निर्माण या व्यापार हर क्षेत्र में मेहनत-मजदूरी और कामकाज में लोगों को घटा या हटा रही है। मशीनों का उपयोग कृषि और निर्माण कार्यों में किया जाता है। बैंकिंग और व्यापार क्षेत्रों में ऑटोमेशन बढ़ रहा है। इसलिए, ये क्षेत्र जो ढ़ेरों लोगों को रोजगार दे सकते थे, उनमें निवेश के बावजूद रोजगार-नौकरियां खत्म हो रही हैं।

5. 60 वर्षों के मुकाबले 10 वर्षों में अधिक उपलब्धियां?

दावा किया जाता है कि देश की अधिकांश प्रगति पिछले 10 वर्षों में हुई है और 2014 से पहले कुछ भी नहीं हुआ।

इसके पक्ष में सड़क निर्माण, गांवों में बिजली-शौचालयों का प्रबंध, हवाई अड्डों का निर्माण, दूरसंचार नेटवर्क का विस्तार के उदाहरण दिए जाते हैं।

दरअसल यह अर्थव्यवस्था की चक्रवृद्धि दर का मामला है। अगर 20 वर्षों में हवाई अड्डों की संख्या 10 से बढ़कर 50 हो जाए और फिर अगले 10 वर्षों में दोगुनी होकर 100 हो जाए, तो कोई यह दावा कर सकता है कि 10 वर्षों में जो हुआ है, वह उसके पहले के 20 वर्षों के बराबर है। संख्या के मामले में यह सही है लेकिन विकास दर संदर्भ में पहले की अवधि में संख्या पांच गुनी हो गई थी, जबकि बाद की अवधि में दोगुनी ही हुई। पहले की अवधि में वार्षिक वृद्धि 8.4% थी जबकि बाद की अवधि में यह 7.2% वार्षिक हो गई। इस प्रकार, संख्याएं बड़ी दिखती हैं लेकिन वास्तव में दूसरी अवधि में विकास की रफ्तार धीमी हो गई।

यह चक्रवृद्धि वृद्धि की ताकत है जिससे संख्या ज्यादा बड़ी होती है। इसलिए, उपलब्धि पहले की अवधि की तुलना में प्रभावशाली दिखती है। बेशक, 75 या 20 साल पहले की तुलना में आज देश बेहतर स्थिति में है।

इसके अलावा, जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था बढ़ती है, निवेश के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध होते हैं। इसलिए, विकास भी तेज होना चाहिए। 1950 में जब देश ने अपनी विकास प्रक्रिया शुरू की थी, उसके मुकाबले 2014 में निवेश के लिए 240 गुना अधिक संसाधन थे। इसलिए, विकास में तेजी तो स्वाभाविक है। देश में 240 गुना अधिक घर, स्कूल, औषधालय, सड़कें, शौचालय, विद्युतीकरण वगैरह होने चाहिए।

इस रफ्तार से तो गरीबी मिट जानी चाहिए थी, लेकिन विकास का लाभ संपन्न लोगों ने हड़प लिया है और निचले पायदान के लोगों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। इसलिए, हम बेघर हैं, विशाल बहुसंख्या के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य की स्थितियां बदतर बनी हुई हैं, बिजली अधिक घरों तक पहुंच हो सकती है लेकिन हाशिए पर जीने वालों के लिए उसकी आपूर्ति नियमित नहीं है। इस प्रकार, बहुसंख्यक लोगों के लिए जीवन स्थितियां मुश्किल बनी हुई हैं।

6. गरीबी देश-काल पर आधारित

गरीबी की परिभाषा 'सामाजिक रूप से न्यूनतम जरूरी खपत करने की ताकत' का अभाव है। इस पैमाने पर गरीबी बढ़ गई है क्योंकि बहुसंख्यक आबादी को 'न्यूनतम जरूरी सामाजिक खपत' की जरूरत पूरी नहीं होती है। संविधान में 'जीने योग्य वेतन या मेहनताने' का जिक्र है। अगर ऐसा होता तो गरीबी खत्म हो जाती लेकिन ज्यादातर लोगों को न्यूनतम मजदूरी तक नहीं मिलती है।

आंकड़ों में फेरबदल करके और बहुआयामी गरीबी सूचकांक का इस्तेमाल करके गरीबी में कमी बताई जा रही है। दुर्भाग्य से, यह पैमाना लोगों की दुर्दशा को नहीं दर्शाता है। इसमें सिर्फ वही गिना गया है जो लोगों को कागज पर दिया गया बताया गया है। ऐलान के अनुरूप ये चीजें लोगों तक पहुंची हैं या नहीं, इसमें इसका आकलन नहीं किया गया है। मसलन, स्कूल में दाखिला बढ़ा है लेकिन एएसईआर की रिपोर्ट से पता चलता है कि 14 से 18 वर्ष आयु वर्ग के 50% बच्चे वह गणित हल नहीं कर सकते हैं जो दूसरी कक्षा के बच्चे को करना चाहिए। अगर युवाओं को रोजगार मिल जाए तो गरीबी कम हो जाएगी लेकिन अगर उनके पास हुनर नहीं है तो न तो उन्हें सही काम मिल पाएगा और न ही वे अपने लिए रोजगार पैदा कर पाएंगे। वे कम आमदनी पर केवल छोटा-मोटा काम ही कर सकेंगे और गरीब बने रहेंगे। महामारी के कारण स्कूल बंद हो गए और बड़ी संख्या में लोग मारे गए तो भला गरीबी कैसे कम हुई होगी?

'सामाजिक रूप से न्यूनतम जरूरी उपभोग' देश-काल पर आधारित होता है और हमेशा बदलता रहता है। इस तरह, 1960 के दशक में गरीबी रेखा 1990 के दशक के मुकाबले अलग थी और 2020 में और भी अधिक भिन्न हो गई।

गरीबी रेखा बदलती रहती है, न कि हमेशा एक जैसी होती है। 1960 या 1990 में तय की गई गरीबी रेखा से तुलना करें तो 2020 में देश में गरीबी कम है। लेकिन जो जरूरत है या अन्य देशों ने जो हासिल किया है, उसकी तुलना में भारत की स्थिति बेहतर नहीं है। मसलन, 1990 में चीन और भारत का उत्पादन स्तर समान था, लेकिन आज चीन भारत की तुलना में 5 गुना अधिक उत्पादन करता है और भारत की तुलना में उच्च मूल्य वाले उत्पाद बेचने वाला दुनिया का कारखाना बन गया है। भारत चीन से न केवल उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद, बल्कि गणेश प्रतिमा और होली के रंग जैसे सांस्कृतिक वस्तुओं का भी आयात करता है। इसलिए, तनावपूर्ण संबंधों के बावजूद भारत को चीन के साथ व्यापार में भारी घाटा हुआ है।

7. क्या आज भारत विश्वगुरु है?

यकीनन भारत आज इससे बेहतर स्थिति में हो सकता था, अगर सरकारी नीतियां ही समस्याएं न पैदा कर रही होतीं और लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी हो पातीं। अमीर समर्थक और कारोबारी घराना समर्थक नीतियों के के कारण अमीर तबके का भारी दबदबा बना हुआ है और याराना पूंजीवाद धड़ल्ले से चल रहा है। नतीजा यह है कि भारत अपनी पूरी क्षमता हासिल नहीं कर पा रहा है।

याराना पूंजीवाद, उससे उपजी अनिश्चितता और सामाजिक अशांति की वजह से बहुत-से बड़ी पूंजी वाले लोग देश छोड़ रहे हैं। बड़ी संख्या में युवा और हुनरमंद लोग भी देश छोड़ रहे हैं। अमीर देशों के दूतावासों के बाहर लगी कतारें देखी जा रही हैं। कम हुनरमंद लोग भी पश्चिम एशिया और

पूर्वी एशिया के देशों में नौकरियों की तलाश में देश छोड़ रहे हैं। देश छोड़ने की बेताबी इतनी अधिक है कि कई लोग विदेश जाने के लिए कई तरह की मजदूर ठेका एजेंसियों को लाखों रुपये का भुगतान कर रहे हैं। यह सब इसके बावजूद है कि विदेश भेजने के नाम पर धोखाधड़ी और/या दूसरे देशों में अक्सर जाने वालों को गंभीर मुश्किलों का सामना करने की खबरें लगातार आ रही हैं।

अगर भारत 'विश्वगुरु' होता, तो इतने सारे लोग न सिर्फ विदेशों में काम पाने के लिए, बल्कि बसने के लिए देश क्यों छोड़ रहे होते? ये लोग इसलिए जा रहे हैं क्योंकि देश में परिस्थितियां माकूल नहीं हैं। संसद में बताया गया कि लाखों लोग भारतीय नागरिकता छोड़ रहे हैं। जरा सोचिए, कितने कनाडाई या ऑस्ट्रेलियाई या अमेरिकी काम करने/बसने के लिए भारत में आ रहे हैं? अंत में, 'विश्वगुरु' दूसरों को कहना चाहिए, अपने मुंह से घोषणा करने के क्या मायने हैं। जी20 की अध्यक्षता सदस्य देशों के बीच बारी-बारी से घूमती रहती है, उसका मतलब यह नहीं है कि भारत नंबर एक है। दरअसल, भारत में प्रति व्यक्ति आय सबसे कम है और यह जी20 देशों में सबसे गरीब है।

कोई देश कोई 'विश्वगुरु' बनता है? इसका मोटा पैमाना यह हो सकता है कि वह अपने लोगों को सभ्य जीवन-स्तर मुहैया कराए, अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी में अग्रणी हो, व्यापार अधिशेष और मुद्रा की कीमत स्थिर रहे। दुर्भाग्य से, अधिकांश भारतीय गरीबी में जीते हैं। टेक्नोलॉजी के मामले में भारत दुनिया के बड़े देशों से काफी पीछे है। सभी आधुनिक सामान्य और सैन्य उपकरणों जैसे विमान, राइफल, मोबाइल फोन, दूरसंचार उपकरण और पूंजीगत वस्तुओं के लिए आयात पर निर्भर है। भारत का निर्यात कम मूल्य की वस्तुओं का होता है जबकि आयात अधिक परिष्कृत उत्पादों का होता है। इसके अलावा, भारत के उत्पादन में बहुत सारे आयातित इनपुट हैं, जैसे फार्मास्यूटिकल्स, मोबाइल फोन और ऑटोमोबाइल के मामले में। इसलिए, भारत में लंबे समय से व्यापार घाटा है। भुगतान संतुलन में कमजोरी के कारण डॉलर और अन्य प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले रुपया कमजोर हो रहा है। इसलिए, 'विश्वगुरु' कहलाने की कोई भी शर्त तो पूरी नहीं होती है।

8. काला धन

देश की सबसे बड़ी दिक्कत काले धन की बड़ी अर्थव्यवस्था है। इसके परिणामस्वरूप नीतियों में तीन वजहों से नाकामी होती है। डेटा दोषपूर्ण है इसलिए अपर्याप्त डेटा पर नीति बनाई जाती हैं। दूसरे, सरकारी खर्च के माकूल नतीजे नहीं निकलते। तीसरे, इससे गैर-बराबरी का आलम सफेद अर्थव्यवस्था से भी बदतर हो जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि काला धन सबसे ऊपर के 3% लोगों के हाथों में केंद्रित है। गैर-बराबरी अर्थव्यवस्था में मांग की कमी को बढ़ाती है और इससे अर्थव्यवस्था धीमी हो जाती है, जिससे बेरोजगारी बढ़ती है।

सरकार का दावा है कि उसने जीएसटी, विदेशी धन विधेयक, न्यायालय की निगरानी में एसआइटी, नोटबंदी, सीधे नकदी हस्तांतरण (डीबीटी) और डिजिटलीकरण जैसे कदमों से काली अर्थव्यवस्था के खिलाफ कार्रवाई की है। लेकिन काली आय के सृजन एक चक्र है। सरकार के उपायों से यह चक्र टूटता नहीं है। भ्रष्टाचार और काली कमाई के नित नए मामले सामने आ रहे हैं। जीएसटी ही काली कमाई का एक बड़ा स्रोत बन गया है। फर्जी कंपनियां बनाकर इनपुट टैक्स क्रेडिट (आइटीसी) का दावा किया जाता है। फर्जी चालान, फर्जी ई-वे बिल आदि के जरिए भी काली कमाई होती है।

अगर सरकार के उठाए कदमों से काली अर्थव्यवस्था पर असर पड़ता, तो बेहद कम प्रत्यक्ष कर/जीडीपी अनुपात तेजी से बढ़कर 12-15% हो गया होता, लेकिन यह कमोबेश 5.75% और 6.1% के बीच ही बना हुआ है। काली कमाई की रोकथाम का मतलब है कि उन्हें आयकर के दायरे में लाया गया है और यह तबका ऊंची कमाई वाला है, इसलिए उसे सबसे ऊंची दर पर कर देना चाहिए और लिहाजा, कर-जीडीपी अनुपात में तेजी से वृद्धि हुई होती।

सरकार का तर्क है कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर संग्रह दोनों में वृद्धि हुई है। लेकिन असंगठित क्षेत्र की कीमत पर संगठित क्षेत्र की वृद्धि दिखती है। असंगठित क्षेत्र की कमाई कम है और वह प्रत्यक्ष कर दायरे से बाहर है, इसलिए बढ़ता हुआ संगठित क्षेत्र ही अधिकांश प्रत्यक्ष करों का भुगतान करता है। जीएसटी का भुगतान भी ज्यादातर संगठित क्षेत्र से किया जा रहा है। इस तरह, कर संग्रह में वृद्धि काली अर्थव्यवस्था पर अंकुश लगाने के कारण नहीं है।

सरकार का यह भी दावा है कि टैक्स के दायरे लोगों की तादाद बढ़ी है। करीब 8 करोड़ की संख्या बताई गई है। लेकिन, प्रधानमंत्री ने खुद खुलासा किया है कि लगभग 1.5 करोड़ ही प्रभावी करदाता हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि रिटर्न दाखिल करने वाले आधे लोग शून्य रिटर्न दाखिल करते हैं क्योंकि उनकी आय कर योग्य सीमा (2022-23 तक 5 लाख रुपये और 2023-24 से 7.5 लाख रुपये) से कम है। अन्य 2.5 करोड़ लोग बहुत कम आयकर देते हैं क्योंकि वे कम आय घोषित करते हैं। इसलिए, टैक्स रिटर्न दाखिल करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि बेहतर कर अनुपालन का संकेत नहीं है। अलबत्ता, इससे महंगाई का पता चलता है जिससे आमदनी नाममात्र बढ़ती है और लोगों को उस सीमा में लाता है जहां उन्हें कर योग्य आय न होने पर भी रिटर्न दाखिल करना आवश्यक होता है।

लब्बोलुआब यह कि काली कमाई के पैदा होने पर अंकुश लगाने का सरकार का दावा गलत है।

९. मुद्दों को उलझाना यानी लोकतंत्र को कमजोर करना

अधिक संसाधनों के उपलब्ध होने से अर्थव्यवस्था आकार तो बढ़ रहा है, लेकिन उसके नतीजे प्रमुख पैमानों पर बेहद कमजोर है। मसलन, विकास दर, गरीबी में कमी, काली कमाई सृजन पर अंकुश, 'विश्वगुरु' कहलाने और बेरोजगारी से निपटने जैसे तमाम पैमाने पर न के बराबर प्रगति है। पूर्ववर्ती सरकार के दस वर्षों से मौजूदा दशक की तुलना भी वास्तविक फर्क से की जानी चाहिए, न कि संख्या और वास्तविक डेटा के लिहाज से, न कि हेरफेर किए गए सरकारी डेटा के लिहाज से।

डेटा में फेरबदल के साथ, बड़े पैमाने पर विज्ञापनों, प्रचार-प्रसार और लोगों में विभिन्न मसलों पर ध्रुवीकरण को हवा देकर देश की अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन की शानदार तस्वीर पेश की जा रही है। भावनात्मक, धार्मिक और सांस्कृतिक मुद्दे उठाकर जनता का ध्यान भटकाया जाता है। लोग मोटे तौर पर अपनी जिंदगी की मुश्किलों को भाग्य का सवाल मान बैठते हैं। विपक्ष को चाहिए कि वह लोगों को अपनी दुर्दशा के खिलाफ आवाज उठाने के लिए गोलबंद करे लेकिन वह सरकारी एजेंसियों के उत्पीड़न के डर से चुप हो गया है। विपक्षी नेताओं के खिलाफ पिछले भ्रष्टाचार के मामलों और नए मामलों को करीने से उठाया जा रहा है और उनकी राजनीति खत्म करने के लिए उन्हें सलाखों के पीछे डाला जा रहा है। विधायकों को खरीदकर और बड़े पैमाने पर दलबदल कराकर विपक्षी सरकारों को गिराया जा रहा है।

मुख्यधारा का मीडिया भी काफी हद तक सत्तारूढ़ दल से डरा हुआ है क्योंकि मीडिया घरानों के व्यावसायिक हित हैं जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दबावों से प्रभावित होते हैं। मसलन, विज्ञापन बंद हो सकता है। इसलिए, खुद ही यह 'गोदी' मीडिया बन गया है। गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) और बुद्धिजीवियों के खिलाफ मामले लगाए जा रहे हैं और उनकी धन जुटाने की अनुमति रद्द कर दी गई है। उन्हें तरह-तरह के उत्पीड़न का सामना करना पड़ा है। दरअसल, सत्तारूढ़ दल के खिलाफ हर तरह के विरोध का दमन करीने से किया जा रहा है।

भविष्य में 'अच्छे दिन' के वादे के साथ खुशहाली का नैरेटिव गढ़ा जा रहा है। मसलन, गलत आंकड़ों के आधार पर कहा जा रहा है कि भारत दुनिया में 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है और तीन साल में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। इसके अलावा, असंगठित क्षेत्र, किसानों, मजदूरों, युवाओं और महिलाओं के संकट पर परदा डालने के लिए लोगों को भावनात्मक मुद्दों पर ध्रुवीकरण किया जा रहा है। बहुसंख्यक समुदाय में एक तरह की असुरक्षा की भावना पैदा की गई है और उसके आधार पर उसे जीत का एहसास दिलाकर वोट हासिल करने की कोशिश की जा रही है।

10. निष्कर्षः झूठी खुशहाली का अफसाना

दरअसल, 2016-17 के बाद से अर्थव्यवस्था की बढ़ोतरी दर धीमी होती गई, जो सरकारी दावे से काफी कम है। सारा लाभ अमीरों और याराना पूंजीवादियों की ओर चला गया तो गैर-बराबरी बेपनाह बढ़ी है। कृषि और छोटे तथा लघु उद्यमों के क्षेत्र वाले असंगठित क्षेत्र में ही 94% आबादी को रोजगार मिलता है, लेकिन उसमें गिरावट आ रही है, जिससे बेरोजगारी, गरीबी और भूख बढ़ रही है। बेरोजगारी बढ़ने से मजदूरी कम हो जाती है जिसका फायदा अमीरों और कारोबारियों को होता है। धार्मिक और भावनात्मक मुद्दों में उलझाकर कमजोर तबकों का ध्यान भटकाया जाता है और लोकतंत्र को कमजोर किया जाता है।

खुशहाली और भारत के विश्वगुरु बनने का अफसाना गढ़ने के लिए आंकड़ों में हेरफेर किया जाता है। यह दावा किया गया है कि पिछले 60 वर्षों के मुकाबले पिछले 10 वर्षों में अधिक काम हुआ है। लेकिन संसाधनों की अधिक उपलब्धता की यह महज चक्रवृद्धि वृद्धि दर है। पिछले 50 वर्षों की तुलना में 2000 के दशक के बारे में भी यही कहा जा सकता था। नीतिगत विफलता के कारण काले धन की अर्थव्यवस्था पर अंकुश नहीं लगाया जा सका है। 2000 के दशक में संकट वैश्विक कारणों से आया था, जबकि 2010 के दशक में संकट नीतियों की वजह से आया था, जो सेल्फ गोल की तरह था। इसलिए, पिछले दशकों की तुलना में हाल के दशक में आर्थिक प्रबंधन कमजोर रहा है। संयुक्त राष्ट्र और आइएमएफ जैसी वैश्विक संस्थाओं के आंकड़े बेहतर होने की वजह सरकारी डेटा का उपयोग है, जिससे सरकारी डेटा की त्रुटियों ही इजहार होता है।

कुल मिलाकर यह कि सत्तारूढ़ दल पिछले 10 वर्षों के अपने कामकाज के बारे में झूठी खुशफहमी का नैरेटिव गढ़ रहा है।

'इंडियन इकोनॉमीज ग्रेटेस्ट क्राइसिसः द इंपैक्ट ऑफ कोरोना वायरस ऐंड द रोड अहेड' (पेंगुइन रैंडमहाउस, 2020) के लेखक (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर)

अनुवाद : हरिमोहन

याराना पूँजीवाद

मोदी और अदानीः राम मिलाई जोड़ी

अरविन्द मोहन

2014 का चुनाव जीतने बाद गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के लिए दिल्ली आए तो गुजरात सरकार के सामान्य विमान की जगह गौतम अदानी के शानदार विमान से आए। पर इसमें बहुत कम ही लोगों को हैरानी हुई या कुछ अस्वाभाविक लगा क्योंकि तब तक मोदी और अदानी के रिश्ते तो जगजाहिर हो चुके थे, गौतम अदानी भी भारत में सबसे तेज विकास वाले उद्यमी बन गए थे। दुनिया अपना साढ़े आठ हजार करोड़ वाला विमान खरीदवाने के पहले भी वे ज्यादातर निजी यात्राओं पर अदानी के विमान का उपयोग धड़ल्ले से करते थे। और ज्यादातर विदेश यात्राओं में साथ जाने और विदेशी मेहमानों से मिलवाने वालों की सूची में अदानी होते ही हैं। प्रधानमंत्री को विदेशों में उनके व्यावसायिक हित बढ़ाने में कोई झिझक नहीं होती। और श्रीलंका के आर्थिक संकट में मदद के बदले वहां के बिजली कारोबार को अदानी के हवाले करने की उनकी शर्त जब एक श्रीलंकाई डिप्लोमैट ने जाहिर कर दी तो मोदी जी ने उसे भारत से विदा कराके के ही दम लिया। पर हद तो तब हों गई जब आस्ट्रेलिया के दौरे में अदानी को कोयला खान दिलवाने का दबाव बनाते बनाते उन्होंने भारतीय स्टेट बैंक से एक अरब डालर का ऋण देने की घोषणा भी कर डाली। ऋण की बाकी औपचारिकताऐं बाद में हंगामे के बीच पूरी की गईं।

जी हां, गौतम अदानी कोयला किंग हैं। 1988 में पाँच लाख की पूंजी से कमोडिटी ट्रैडिंग शुरू करने के पहले में हीरे के एक कारोबारी के यहां काम करते थे। अब उनकी दोस्ती मोदी जी से कब से है यह तो वे दोनों ही बताएंगे लेकिन मोदी जी ने उनमें जो हीरा देखा है और उन्होंने मोदी जी रूपी जिस हीरे की पहचान की वह दोनों के लिए जबरदस्त रहा है। आज गौतम अदानी दुनिया के सबसे बड़े पाँच दस लोगों में गिने जाने लगे हैं तो मोदी जी नया युग लाने का दावा ही करते हैं। एक हिन्डेनबर्ग रिपोर्ट से अदानी समूह की कंपनियों की नौ अरब डालर की संपत्ति बिला गई तो खुद वे उससे पहले के तीन सालों में सौ अरब डालर की अमीरी के साथ एलन मास्क, जेफबबेजोस और बर्नार्ड एरनालट जैसों के साथ होड करने लगे थे।

अक्टूबर 2001 में गुजरात का मुख्यमंत्री बनने के बाद उनका सब कुछ बदल देने में बड़ी भूमिका निभाई। वैसे काबिल धंधेबाज अदानी उनके भरोसे नहीं रुके थे और उन्होंने मुँधड़ा पोर्ट निर्यात प्रोमोशन के नाम पर हासिल कर लिया था जो आज विकसित होकर देश का सबसे विशाल बंदरगाह बन गया है। कोयले का धंधा तो इसका आधार है लेकिन की साल पहले यहीं ड्रग्स से भरा जहाज भी पकड़ा गया जिसकी जांच और जिसके माल का अता पता आजतक नहीं चला है। तब तक खाद्य तेल समेत कई तरह के घरेलू सामानों का कारोबार अदानी विलमर ने शुरू किया और जिस अमूल ने वर्षों के श्रम से गुजरात के तेलिया सेठों का एकाधिकार तोड़कर सहकारी 'धारा' ब्रांड को देश भर में जमाया था उसे इस नई कंपनी के 'फारचून' ब्रांड ने ध्वस्त कर दिया। आज यह खाने-पीने के अनेक सामानों का सबसे बिकाऊ ब्रांड है।

और इसी कोयले के आधार पर गौतम अदानी ने बिजली बनाने का काम भी शुरू किया जिसे ऊंची दर पर खरीदने की काउंटर गारंटी देकर नरेंद्र भाई ने उनके व्यापार साम्राज्य को मजबूती दी। बाद में काउंटर गारंटी वाली ऐसी परियोजनाएं की राज्यों में शुरू हुईं। तब ये आरोप भी लगे थे कि बिजलीघर लगाने में 'ओवर-इनव्वायसिंग' अर्थात खर्च से ज्यादा कागज में बताने का गोरखाधंधा चल रहा है। पर बिजली घर लगाने के लिए कर्ज बड़े पैमाने पर लिया गया था जिससे यह वास्तविक खतरा बन गया था कि अगर लगभग छह रुपए यूनिट की काउंटर गारंटी देने में कोई 'दूसरी' सरकार हाथ खड़े कर दे या असमर्थ हों जाए तो पूरे अदानी समूह का क्या होगा। 1.0 रेशियो तक पहुंचकर भी न तो अदानी की किसी कंपनी को नकदी का संकट हुआ न दिवालिया होने का।

लेकिन इससे भी बड़ा वास्तविक खतरा बैटरी की कीमत विश्व स्तर पर गिरने के बाद सोलर बिजली के सस्ती होने से उत्पन्न हुआ। पर जिसके सहायक इतने बड़े हों उसका कौन बाल बांका कर सकता है। काउंटर-गारंटी का दौर भी बीतने को आया और छह रुपए की जगह दो से ढाई रुपए यूनिट पर सोलर बिजली देने वाली कंपनियां आ गई हैं। लेकिन दिलचस्प खेल यह हुआ है कि कई जगह अदानी की कंपनी भी इस रेस में आ गई है, जीतती है। और बिजली बनाने, उधार लेने, काउंटर गारंटी का खेल अकेले मोदी जी का थोड़े ही था। इसलिए कांग्रेसी सरकारों का नाम भी जुडा हो तो हैरान न होइएगा। बल्कि मनमोहन राज में बिजली के इतने सौदों पर एमओयू साइन हो गए थे कि मोदी जी को अपने शासन के पहले पाँच साल सिर्फ उद्घाटन ही करना पड़ा। लेकिन इससे

गुजरात में उन्होंने जो मदद की थी उसका महत्व कम नहीं होता।

मोदी अदानी का संबंध इस दौर में न सिर्फ सामान्य घनिष्ठता का रहा बल्कि उसका रंग और भी गहरा होता गया। तब तक कई मौकों पर आलोचना भी होने लगी और कई बार व्यावसायिक हित साझा होने के चर्चा हुई। अब इसकी सच्चाई जाँचना आज न किसी सरकारी एजेंसी के वश की बात है न दुनिया की सारी डिप्लोमेसी को व्यावसायिक लेन-देन में बदल चुके आज के कथित बड़े देशों के पास। प्रेस और अदालतों पर भरोसा जताने का ज्यादा मतलब नहीं रहता। तब भी द आर्गेनाइज्ड क्राइम ऐंड करप्शन रिपोर्टिंग प्रोजेक्ट नामक पत्रकार और मीडिया समूह ने (पिछले कुछ वर्षों में इस तरह परस्पर सहयोग से मीडिया समूहों और पत्रकारों ने दुनिया में भ्रष्टाचार और अपराध को लेकर कई बड़े खुलासे किये हैं और उन पर किसी तरह का शक-शुबहा नहीं किया गया है) जब अदानी समूह द्वारा की गई फेराफेरी और निवेश के संदेहास्पद सौदों की चर्चा की तब काफी बवाल मचा। उसने भी 2014 में बिजलीघरों के निर्माण में ओवर-इनवयासिंग से ही शुरूआत की और यह आशंका जताई कि यही के पैसों को दूसरी परियोजनाओं की कंपनियों का शेयर खरीदने में लगाया गया।

हिंडनबर्ग नामक अमेरिकी बाजार अनुसंधान और निवेश परामर्श कंपनी की रिपोर्ट ने अदानी समूह के वित्तीय मकड़जाल को उजागर करने और इसमें उनके परिवार के साथ की सारी फर्जी और गुमनाम कंपनियों के सहारे निवेश करने, पूंजी लगाने और निकालने का खेल बताने का दावा किया। स्वाभाविक तौर पर बाजार में हंगामा मचा और कुछ दिनों के अंदर अदानी समूह की कंपनियों के बाजार मूल्य में नौ अरब डालर की गिरावट आ गई। अगर नरेंद्र मोदी सरकार मजबूती से उसे सहयोग न देती तो समूह का संभालना मुश्किल हों जाता। तभी वह एक बड़ा सार्वजनिक निर्गम भी करने वाली थी। लेकिन सरकार ने सेबी की जांच की घोषणा और अपनी तरफ से लगभग क्लीन चिट देकर गौतम अदानी को निर्भय कर दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने भी प्रकट होकर कहा कि यह एक साजिश थी। इस बीच पूरा विपक्ष चिल्लाता रहा और पूरी भाजपा अदानी के रंग में रंगी रही। अब भाजपा पर से यह रंग नहीं उतरा है लेकिन विपक्ष इस मुद्दे को नतीजे तक ले जाने में जरूर असफल रहा है।

हिंडनबर्ग रिपोर्ट में कहा गया था कि मारीशस की कंपनियों और शेल अर्थात फर्जी कंपनियों के मार्फत अदानी समूह की कंपनियों में काफी सारा बेनामी पैसा लगा है। उसका इशारा किस तरफ था इसका अंदाजा सबको है लेकिन कोई बोलता न था। उसने कहा कि ईआईआरएफ और ईएमआरएफ ने 2013 से 2018 के बीच इस समूह की कंपनियों के शेयर में सत्तर अन्य शेल कंपनियों के साथ काफी बड़े पैमाने पर पूंजी लगाई और निकाली है। इन धंधे वाली कंपनियों में गौतम अदानी के भाई विनोद अदानी की 38 कंपनियां भी शामिल रही हैं। विनोद ने संयुक्त अरब अमीरात के अली शाह अहसी और ताइवान के चुँग लंग की भी लगभग 2800 करोड़ रुपए की पूंजी अदानी समूह की कंपनियों में लगवाई और बदले में मोटा फीस भी वसूला। 'शेल कंपनियों' अर्थात सिर्फ कागज पर चलने वाली कंपनियों के सहारे अदानी की कंपनियों में भारी भरकम निवेश होने का शक शुरू से रहा है जैसा उदारीकरण के दौर में बाकी के साथ भी हुआ है, पर इतना ज्यादा नहीं। और उसे अच्छी स्थिति को आधार बनाकर सरकारी बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और बीमा निगम जैसों का भी काफी सारा धन अदानी समूह को उपलब्ध कराया गया है। ऐसा भी निवेश है जो बाजार की कीमत से कई गुना ऊपर रेट पर शेयर खरीदने का है। उसका एक बड़ा हिस्सा तो शेयर बाजार की गिरावट के साथ बिला ही गया। कई बार बाजार से ऊंची दर पर शेयर बेचने के भी मामले हैं। इन शेल कंपनियों में पूंजी आने के स्रोत संदिग्ध हैं। फिर मुनाफे को फर्जी कंपनियों के हवाले करके वास्तविक निवेशकों को लाभ से वंचित रखने जैसे काम हैं। और इन चीजों पर भारतीय रेगुलेटरों और वित्तीय प्रशासकों की नजर क्यों नहीं रही इसे समझना मुश्किल नहीं है क्योंकि जब प्रधानमंत्री समेत पूरी भाजपा और सरकार अडानी पर मेहरबान है तो बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधेगा।

पर जिस एक बड़े प्रकरण की चर्चा बाहर खूब हुई लेकिन अपने यहां सेबी की जांच समेत किसी भी मोर्चे पर कुछ नहीं कहा गया वह अदानी के आस्ट्रेलियायी कारोबार के मार्फत किए जाने वाले घालमेल का है। अदानी को मिले खान से कोयला निकालने और उसके व्यापार में कारमाइकेल रेलवे और पोर्ट सिंगापुर साझीदार है। उन दोनों ने कंपनी से उधार लेकर उसकी जानकारी के बगैर उसके शेयरों में खूब निवेश किया और मुनाफी उठाकर भी मूल कंपनी को सूचित नहीं किया। क्या सचमुच ऐसा ही हुआ यह यह जानबूझकर कंपनी से पूंजी निकालने वाले खेल के लिए दिखावा किया गया। और क्या इसमें आस्ट्रेलिया की सरकार भी चौकीदारी करने से चूक गई। लेकिन यह प्रसंग सेबी की जांच में था नहीं। और जो कुछ उसे करना था वह भी उसने समय काटने और मामले को ठंढा करने भर का किया। किसी भी प्रकरण में उसने शेल कंपनियों के धंधे, उनके निवेश, उनके वित्तीय स्रोतों पर भी सवाल नहीं उठाए।

ऐसा नहीं है कि हिंडनबर्ग रिसर्च ने ही पहली बार अडानी के घोटालों पर उंगली रखी है. अपने यहां भी आर्थिक

मामलों के पत्रकार परंजय गुहा ठकुरता समेत की लोगों ने ऐसी चीजें सामने लाकर हंगामा मचाया था लेकिन सरकार ने न सिर्फ उन्हें 'इपीडब्लू' की संपादकी से हटवाया, दंडित और परेशान किया बल्कि अडानी को ज्यादा जोर-शोर से मदद करनी शुरू की। और यह काम इस ढिठाई से हुआ कि इसमे कायदे कानून ही नहीं लोक-लाज की भी परवाह नहीं की गई। प्रधानमात्री गौतम अडानी को लिए ज्यादातर विदेश यात्राओं में ले गए, उनके निजी विमान का उपयोग करते रहे हैं और उनके व्यवसाय को बढ़ाने का प्रयास किया। उनकी कंपनियों को जमीन, ऋण और सुविधाएं देने में ही नहीं उनकी सेवाएं लेने और उनके उत्पाद खरीद की काउंटर गारंटी देने में भी इसी तरफ की ढिठाई दिखाई गई। अडानी पोर्ट पर सरकारी की जगह निजी सुरक्षा व्यवस्था चलाने दी गई और जब नशीले पदार्थ का सबसे बड़ा खेप पकड़ा गया तो उसका मामला भी कहां बिला गया पता नहीं। अडानी की संपत्ति के बेतहाशा बढ़ाने को भी सरकार अपनी उपलब्धियों की तरह प्रचारित करती रही और हमारे चालाक/स्मार्ट निवेशक उनकी कंपनियों के शेयर की दुम पकड़े पकड़े अमीर होते रहे।

हिंडनबर्ग रिपोर्ट ने जरूर इस गुब्बारे में सूई चुभोई और सचमुच यह फुस्स हों गया. सर्किट ब्रेकर लगा-लगाकर अडानी ग्रुप के शेयरों की गिरावट रोकी गई तब भी हजारों करोड़ का नुकसान हो गया। उनकी रिपोर्ट में देसी-विदेशी का अंतर नहीं है लेकिन असर सब पर पड़ा। बाजार को लुभावे वाले अच्छे बजट प्रावधान भी उसका मूड ठीक नहीं रख पाए। एकाध दिन ऐसा भी हुआ कि बाजार चढ़ा और अडानी के शेयरों को सक्रीट ब्रेकर के सहारे संभालना पड़ा। तब भारतीय जीवन बीमा निगम के लगभग छत्तीस हजार करोड़ और भारतीय स्टेट बैंक के हजारों करोड़ समेत दूसरे बैंकों का भी भारी नुकसान हो चुका था। आम निवेशकों के नुकसान की तो कोई गिनती नहीं हुई। हिंडनबर्ग की 106 पेज की रिपोर्ट का अडानी ने चार सौ से ज्यादा पन्नों में जबाब दिया और घोटालों के आरोप का जबाब देने की जगह इस मामले को 'राष्ट्र पर हमला' बताया दिया। बाजार तब भी नहीं संभला। तब जाकर पहली बार वित्त मंत्री प्रकट हुईं और यह महत्वपूर्ण घोषणा की कि अडानी समूह में पूंजी लगाने वाले बैंकों के कर्ज की रकम सुरक्षित है। इसके वास्तविक वित्तीय आधार की किसी ने पड़ताल नहीं की लेकिन इस बयान से आदानी समूह को लाभ हुआ। और फिर भाजपा के प्रवक्ता और लोग हिंडनबर्ग रिपोर्ट को विदेशी साजिश और बाजार के आपरेटर का खेल बताने में जुट गए। जब खुद प्रधानमंत्री का बयान हो गया तो अडानी के शेयरों का रुख बदलने में ज्यादा व्यक्त नहीं लगा। पर मोदी अदानी की यह राम मिलाई जोड़ी इतने सारे घोटालों को कब तक दबाकर उसे आर्थिक विकास और समृद्धि का नाम देती रहेगी।

यह रिश्ता एकतरफा नहीं है। अकेले चुनावी चंदे में ही अडानी मोदी और भाजपा को इतनी मदद देते हैं जितनी अच्छी भली कंपनियों का टर्नओवर है। बाकी हिसाब क्या है यह कोई हाथ ही नहीं लगाता। क्या यह रिश्ता सिर्फ व्यवसाय करने में मददगार और समझदार होने का है या इसका रिश्ता शेल कंपनियों वाले निवेश और पूंजी के दूसरे स्रोतों से भी है, यह बताना मुश्किल है, अंदाजा लगाना आसान। गौतम अदानी यह क्यों बताएंगे और मोदी जी यह जाहिर करके आत्महत्या क्यों करेंगे। सरकार की तरफ से ऐसा नहीं होगा यह तो ज्ञात हो चुका लेकिन सभी लोग आँख नहीं मूँद लेंगे। खोजी पत्रकार और कानूनी लड़ाके तो लगेंगे ही बाजार पर निगरानी के लिए जो संस्थाएं बनी और काम कर रही हैं उनको भी मन-बेमन से यह काम करना ही होगा। और वे नरेंद्र मोदी की तरह आज उठे सवालों से मुंह नहीं फेर सकती।

गौतम अडानी की संपत्ति का बेतहाशा बढ़ना और बेतहाशा रफ्तार में बढ़ना उनके लिए और उनको हर जायज-नाजायज ढंग से मदद देने वालों के लिए गर्व की बात होगी, देश के तेज आर्थिक विकास का उदाहरण होगा लेकिन आर्थिक कामकाज को जरा भी जानने वाले दुनिया भर के लोगों के लिए यह शर्मनाक प्रकरण है। जिस रफ्तार में उनकी या उससे पहले अंबानी जैसे दूसरे पूंजीपति घरानों की संपत्ति बढ़ी है वह किसी भी तरह के उत्पादक काम करने वाले और ईमानदार करदाता के लिए संभव ही नहीं है। दुनिया और भारत में 'क्रोनी कैपिटलिज्म' के उदाहरण कम नहीं रहे हैं लेकिन इस तरह का नंगापन अभी तक कहीं नहीं दिखा है। संभव है भविष्य में कोई नरेंद्र मोदी और गौतम अडानी से भी आगे निकाल जाए लेकिन अभी तक ऐसा कहीं और नहीं हुआ है। साल में, छह माह में संपत्ति का दस-बीस गुना बढ़ाना सचमुच मजाक का विषय ही हो सकता है लेकिन इस मामले में ऐसा ही हुआ है। हम सभी शेयर बाजार में किसी कंपनी के कामकाज के लिए पेड़-इक्विटी रेशियो को एक पैमाना बनाकर शेयर खरीदते बेचते हैं। जितना ज्यादा अनुपात उतना अच्छा शेयर माना जाता है। निफ्टी में शामिल कंपनियों का अनुपात बीस के करीब है लेकिन गौतम अडानी की एक कंपनी का पी-ई अनुपात 600 है तो दूसरी का 300 से ज्यादा। यह मजाक जैसा ही लगता है।

''फासीवाद को कॉर्पोरेटवाद कहना ज्यादा सही होगा क्योंकि फासीवाद राज्य-सत्ता और कॉर्पोरेट-शक्ति का संगम ही तो है।''

– बेनिटो मुसोलिनी



अघोषित हिंदू राष्ट्र की प्रजा बनते लोकतांत्रिक राष्ट्र के नागरिक !

भंवर मेघवंशी

किसीभी लोकतांत्रिक देश में जो भी दल शासन में आता है, उसका संवैधानिक दायित्वहोता है कि वह सब नागरिकों को समान दृष्टि से देखें और क़ानून का राजस्थापित करें, सबके प्रति न्यायपूर्ण भावना रखे, लेकिन राजस्थान मेंसत्तारूढ़ होने के बादसे भाजपा से जुड़े विधायक और मंत्री सबसे इस बात कीप्रतिस्पर्धा चल रही है कि कौन कितना माहौल बिगाड़ सकता है। कौन ज़्यादाविषाक्त बोल सकता है। इस होड़ में प्रदेश का माहौल निरंतर भयावह होता जा रहाहै, आज़ादी के बाद यह पहला मौक़ा है जबकि दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के प्रति नफ़रत खुले आम महसूस की जा सकती है। हिंदुत्व कीराजनीति में हाशिये के तबकों के लिए क्या स्थान रहेगा, अथवा इस सवाल को इसतरह पूछा जाये कि हिंदूराष्ट्र में दलित आदिवासी व अल्पसंख्यकों की क्याऔक़ात होगी, इसका संकेत अब साफ़ मिलने लगा है।

अपनी बेलगाम और नफ़रती भाषा के लिए वैसे तो बहुत से संघी और भाजपाई कुख्यात हीहै, लेकिन जिस तरह से इस बार सत्ता का नशा उनके सिर चढ़ कर बोल रहा है, बहज़रूर अभूतपूर्व है, तरह तरह की जातीय और धार्मिक नामों वाली सेनाएँ कुछ भी अनर्गल वक्तव्य दे कर अपनी विभाजनकारी राजनीति को अंजाम देने पर आमादा है, इन पर कोई लगाम भी नहीं है, बिका हुआ साम्प्रदायिक मीडिया इन विद्वेष फैलाने वाले लोगों को हवा देने में कोई कसर नहीं छोड़ता है, हाल ही में एकजाति विशेष से ताल्लुक़ रखने वाले संगठन से जुड़े नेताओं ने सुप्रसिद्ध सूफ़ी संत ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की अजमेर स्थित विश्व विख्यात दरगाह पर दावा ठोक दिया कि यह मंदिर को तोड़ कर बनाई गई है इसलिए इसे पुनः हिंदुओं को सौंप दिया जाना चाहिए, इसके बाद दरगाह दीवान व दरगाह का निज़ाम देखने वालों की तरफ़ से इन विभाजक तत्वों के ख़िलाफ़ मुक़दमा दर्ज करवाया गया है, हालाँकि इन समाज कंटकों पर कोई कार्यवाही होगी, इसकी संभावना कम हीहै, पर क्या यह सब कुछ बिना सोचे विचारे है या इनके पीछे साम्प्रदायिक संगठनों की कोई सुविचारित रणनीति है, क्योंकि ख़्वाजा साहब की दरगाह पर आज भी प्रतिदिन हज़ारों हिंदू भी पहुँचते हैं, मुस्लिम श्रद्धालु तो आते ही हैं, बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक भी आते हैं, देश में बिगाड़े जा रहे माहौल तथा धार्मिक ध्रुवीकरण के बावजूद भी आज भी सभी धर्म संप्रदायों के लोगों का एक सूफ़ी मरकज़ पर पहुँचना हिंदुत्व ताक़तों के लिए असहनीय बातहै, इसलिए पहले भी ख़्वाजा साहब की दरगाह परिसर में बम विस्फोट तक करवायागया, जाँच में कौन से संगठनों का हाथ निकला और कौन गिरफ़्तार हुये यह तथ्य सबके सामने हैं, अब भी वे ही ताक़तें सत्ता की शह पा कर फिर से माहौल ख़राबकर रही है ताकि आम भारतीयों के साझे मिलन के स्थलों को नेस्तनाबूद किया जा सके और ध्रुवीकरण के खेल को अंजाम दिया जा सके।

विधायकों के हाल यह है कि वो जब चाहें कहीं भी कुछ भी बोल देते हैं, सहाड़ा क्षेत्र के विधायक लादु लाल पीतलिया ने तो सरकारी अस्पताल के एक दलित डॉक्टर को इसबात के लिए सार्वजनिक रूप से अपमानित किया कि उन्होंने अपने दफ़्तर सेदेवी देवताओं की तस्वीरें क्यों हटाई? भाजपा विधायक ने डॉक्टर को जनता के मध्य यहाँ तक श्राप दे डाला कि उनके प्लास्टिक के कीड़े पड़ेंगे और बच्चे विकलांग पैदा होंगे। माण्डल के विधायक उदय लाल भड़ाना के बोल भी बिगड़ गये और उन्होंने भी कथित अपराधियों का सरेआम एनकाउंटर करवा देने की बात कह डाली, किसी भी मामले में बुलडोज़र चलवा देने की बातें तो भाजपा कार्यकर्ताओं के लिये आम बात है। बुलडोजर न्याय के इस नए चलन से अब अल्पसंख्यक समुदाय के लोग पिसने लगे हैं, अलवर जिले में गौमांस की मंडी होने की खबर के बाद मौक़े पर पहुँचे प्रशासन ने मुस्लिम समुदाय के घरों व खेतों में बुलडोजर चलवा कर पर्याप्त तबाही मचाई है, राज्य शासन का संकेत साफ़ है कि जो भीउनके विरोध में हैं, वो उनका दुश्मन है और ऐसे लोगों को किसी न किसी मामले में फँसना पड़ सकता है और अगर एक बार वो लपेटे में आ गये तो आरोप लगनेमात्र से उनके घर या व्यापारिक प्रतिष्ठान पर बुलडोजर चल सकता है। लोकतंत्र में अगर प्रतिरोध की आवाज़ों को इस तरह बुलडोज़ किया जायेगा तो संविधान की मूल भावना की यह हत्या ही मानी जायेगी।

सबसे बुरा हाल अल्पसंख्यक समुदाय के उन गरीब

लोगों का हो रहा है, जो बड़ी मेहनत के बाद मुश्किल से अपनी रोज़ी रोटी कमा पा रहे हैं। विशेषकर फुटपाथ पर रेहड़ी या खोमचा लगा कर खाने के सामान बेचने वालों की सामत आई हुई है, जयपुर शहर से विधायक बने बाल मुकुंदाचार्य जो कि बाबा जी के भेस में रहते हैं, उन्होंने शपथ बाद में ली, उससे पहले ही उनकी मुस्लिमों के प्रति संचित घृणा हिलोरे मारने लगी, वे सड़क किनारे अंडा मांस बेचने वालों के ख़िलाफ़ सीधी कार्यवाही पर उतर आये और जमकर बवाल काटा, उनका यह अभियान अब भी जारी है, वे नगर निगम और पुलिस प्रशासन के भारी लवाजमे के ज़रिए पथकर विक्रेताओं को भयभीत करके उनकी रोज़ी रोटी छीनने पर तुले हुए हैं। इन विधायक जी ने हाल ही में मुग़लों के ख़िलाफ़ एक बयान जारी किया, शायद उनको लगता है कि यहाँ के सारे मुसलमान मुग़लों की संतान है या उनके साथ बाहर से आये हैं और इनसे लड़ना मतलब मुग़लों को सबक़ सिखाना है। वैसे भी हिंदुत्व की प्रतिगामी विचार धारा बार बार अतीत में झांकती रहती है और सैंकड़ों साल के अनिर्णीत युद्धों का निर्णय अब कर रहे हैं, जैसे हल्दीघाटी के युद्ध का फ़ैसला।

हाल ही में राजस्थान में जानबूझ कर हिजाब का विवाद खड़ा किया गया है, भाजपा विधायक बाल मुकुंद आचार्य ने मुस्लिम बहुल विद्यार्थियों के स्कूल में जाकर जय श्री राम के नारे लगवाये और हिजाब पहने लड़कियों पर आपत्ति उठाई, इससे नाराज़ लड़कियों ने प्रदर्शन किया और उनके परिजन भी विरोध में सड़क पर उतर आये, यह एक तरह से मुस्लिम समाज को उकसाने का प्रयास था, क्योंकि इससे पहले कहीं भी पहनावे को लेकर कोई विवाद की स्थिति नहीं थी, लेकिन यह मुद्दा खड़ा किया गया ताकि अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय इसको लेकर जैसे ही मुख़ालफ़त करे तो हिंदुओं का ध्रुवीकरण किया जा सके, हालाँकि मुस्लिम समाजने यह निर्णय ले कर समझदारी दिखाई कि इस मुद्दे को तूल नहीं दिया जाये, परंतु उकसावे की कार्यवाही जारी है, इस घटनाक्रम के बाद जोधपुर ग्रामीण के पीपाड़ शहर के सरकारी विद्यालय के तीन शिक्षकों को इस बात के लिए अपने नियुक्ति स्थान से मुख्यालय भेज दिया गया क्योंकि उन्होंने हिजाब विवाद में सरकार द्वारा अपेक्षित भूमिका का निर्वहन नहीं किया, यहाँ सरकारी आदेश में कहा गया कि 'कुछ लड़कियाँ चेहरे पर तरह तरह के कपड़े लपेट कर स्कूल आ गई थी', यह हिजाब पहनने वाली लड़कियों के प्रति हिक़ारत व अपमानजनक टिप्पणी मानी जा सकती है, इस सबके ज़रिए मुस्लिम लड़कियों के शिक्षा प्राप्ति के अधिकार को बाधित करना तो है ही उन्होंने कपड़ों के ज़रिए चिन्हित करने कीनफ़रती सोच भी इसमें शामिल है।

अम्बेडकरवादी और वैज्ञानिक सोच रखने वाले दलित शिक्षक शिक्षिकाएं भी हिंदुत्व के इस हमले से बच नहीं पा रहे हैं, उन पर भी कतिपय धार्मिक व साम्प्रदायिक भीड़ द्वारा दबाव बनाया जा रहा है कि वे सरकारी विद्यालयों में धार्मिक गतिविधियों को अंजाम दें। राजस्थान के वर्तमान शिक्षामंत्री मदन दिलावर जोकि स्वयं भी अनुसूचित जाति की खटीक उपजाति से ताल्लुक़ रखते हैं, लेकिन घनघोर कट्टर हिंदुत्व के हितरक्षक है, अपने पूर्व कार्यकालों में भी उन्होंने समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित छात्रावासों में खाना खाने से पहले भोजन मंत्र शुरू करवाया था, अब प्रत्येक विद्यालय में सूर्य नमस्कार और सरस्वती की तस्वीरों का वितरण करवा रहे हैं, पहले भी उनके निशाने पर अल्पसंख्यक समुदाय के लोग रहे हैं, उनका मुस्लिम विरोध तो जगज़ाहिर ही है। उन्होंने कोटा के एक एम्मानुअल बाइबल कालेज को लेकर के भी काफ़ी विरोध किया था, एक किताब हक़ीक़त को लेकर हुए बवाल के बाद कोटा में बैप्टिस्ट मसीहियों का काम करना मुश्किल कर दिया गया था, राज्य भर में उनके विद्यालयों पर हमले किए गए थे और कोटा स्थित उनके मुख्यालय पर तो हथियारों से हमले हुए तथा भीड़ ने कथित रूप से वहाँ सुतली बम फोड़ दिया था। वैसे भी शिक्षा मंत्री अपने विवादित बयानों के लिए कुख्यात ही है। शिक्षामंत्री स्वयं ही राज्य का शैक्षणिक माहौल बिगाड़ने में लगे हुए हैं, वे सार्वजनिक रूप से अकबर को बलात्कारी कह चुके है और अकबर को पाठ्यक्रम में पढ़ाने पर विरोध जता चुके हैं। इस प्रकार की बातें कहना उनका प्रिय शग़ल कहा जा सकता हैं। लेकिन इस बार उनके निशाने पर बाबा साहब अम्बेडकर को मानने वाले, वैज्ञानिक और तार्किक बातें करने वाले, दलित समुदाय से आने वाले शिक्षक-शिक्षिकाएं भी आ चुके हैं। हालाँकि वे खुद दलित वर्ग से हैं और आरक्षित सीट से जीत कर मंत्री बने हैं लेकिन हिंदुत्व की हितरक्षा में हर बार की तरह वे तत्पर नज़र आ रहे हैं। यह कहना समीचीन होगा कि दलितों की बाज़ार की वे जातियाँ जो व्यापार वाणिज्य में संलग्न है, अथवा जो पढ़ लिखकर सक्षम हो गई है, शहर में रहने लगी है, ऐसे तमाम दलित उपजाति समूह बड़े गर्व से अपने पुश्तैनी काम करते हुए हिंदुत्व ताक़तों के हरावल दस्ते बन चुके हैं, हालाँकि अब भी साठ सत्तर फ़ीसदी दलित ब्राह्मणवादी चेतना के विरुद्ध श्रमण निर्गुण की धारा में बने हुए हैं, लेकिन वे कितना संघर्ष कर पाएँगे, यह देखना होगा, क्योंकि अब उनकी लड़ाई दोहरी होती जा रही है, उनकी सवर्ण मनुवादियों से

पहले दलित मनुवादी तत्वों से मोर्चा लेना पड़ रहा है, आरएसएस ने ऐसे दलित आदिवासी लोगों की फ़ौज बना ली है जो दलित व आदिवासी चेतना को पलट देने के प्रयास में रात दिन लगे हुए हैं।

राजस्थान के शिक्षामंत्री मदन दिलावर ने एक दलित शिक्षिका हेमलता बैरवा को एक सार्वजनिक मंच पर भाषण देते हुए सस्पेंड करने की घोषणा करते हुए उनका नियुक्ति स्थान शिक्षा विभाग के मुख्यालय बीकानेर कर दिया है जो शिक्षिका के निवास से क़रीब सात सौ किलोमीटर दूर है, दलित शिक्षिका को यह सजा इसलिये दी गई क्योंकि उसने 26 जनवरी के गणतंत्र दिवस समारोह में सरस्वती की तस्वीर लगाने और उसकी पूजा अर्चना करने से इंकार कर दिया था। हेमलता बैरवा ने उत्सव प्रभारी के नाते यह साफ़ कर दिया कि मंच पर गांधी, अम्बेडकर और सावित्री बाई फुले की तस्वीर लगेगी। जब कुछ अध्यापकों व ग्रामीणों ने इस बात पर बवाल किया और सरस्वती की तस्वीर लगाने हेतु दबाव बनाया तो शिक्षिका बैरवा ने इससे साफ़ इंकार करते हुए यह सवाल पूछ लिया कि सरस्वती माँ का शिक्षा में क्या योगदान रहा है? यह सुनकर ग्रामीण और भी भड़क गए, इस घटनाक्रम का विडियो बनाकर वायरल किया गया और शिक्षिका के विरुद्ध धार्मिक भावनाएँ आहत करने का मुक़दमा दर्ज करवा दिया गया। अम्बेडकरवादी लोगों और समूहों तथा संगठनों ने इसके खिलाफ़ मोर्चे भी निकाले लेकिन हिंदुत्व के मदमें मस्त सरकार अभी दलित अल्पसंख्यक दमन पर तुली हुई है, इसलिए कोई सुनवाई नहीं हो रही है, हेमलता बैरवा पर धर्मांतरण के भी आरोप लगाये गए हैं। कहा गया है कि वो लोगों को हिंदू से बौद्ध बना रही थी। राज्य सरकार ने राज्य में धर्मांतरण विरोधी कड़ा क़ानून लागू करने की घोषणा भी की है। निश्चितरूप से इसके निशाने पर अब नव बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम समुदाय के लोग रहेंगे। ईसाइयों पर तो कार्यवाई शुरू भी कर दी गई है। अजमेर के पास हाथीपुरा गाँव में ईसाई प्रार्थना स्थल को अवैध बता कर बुलडोज़ किया गया है। वहीं भरतपुर जिले में धर्मान्तरण के नाम पर दर्जनों लोगों के ख़िलाफ़ कार्यवाई जारी है। मुसलमान भी इससे अछूते नहीं हैं, गौकशी के नाम पर मॉब लिंचिंग के घटनाक्रम तो जारी है ही अब तो हिजाब, लव जिहाद और धर्मान्तरण के नए नए शगूफ़े छोड़े जा कर अल्पसंख्यक मुस्लिमों को अपमानित व प्रताड़ित करने का काम भी किया जा रहा है।

सामूहिक रूप से सरकारी स्कूलों में करवाए गए सूर्य नमस्कार के दिन मुस्लिम समाज ने अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजने का ऐलान किया था, इस पर प्रतिक्रिया करते हुए शिक्षा मंत्री ने और अधिक उकसावे वाली टिप्पणी करने का कीर्तिमान बना दिया था। इसी तरह से कोटा जिले के सांगोद इलाक़े के खजूरी नामक गाँव की स्कूल से तीन मुस्लिम शिक्षकों के विरुद्ध एकतरफ़ा कार्यवाही करते हुए इन्हें निलम्बित कर दिया गया है और उनके मुख्यालय भी बीकानेर किए गए है, इससे पहले अकलीमा नामक मुस्लिम शिक्षिका के ख़िलाफ़ भी इसी प्रकार की कार्यवाही अमल में लाई गई थी, उन पर आरोप लगाया गया कि वे स्कूल के एक कोने में नमाज़ पढ़ती थी, जिन तीन शिक्षकों के विरुद्ध हाल में निलंबन की कार्यवाई की गई, उन पर कट्टर इस्लामिक संगठनों से सम्बंध होने, लव जिहाद और धर्मान्तरण सम्बंधी आरोप लगाये गए हैं, ये आरोप विद्यालय के छात्र-छात्राओं अथवा स्टाफ़ की तरफ़ से न हो कर कतिपय हिंदुत्ववादी संगठनों के हैं। जबकि स्कूल के विद्यार्थियों ने इन शिक्षकों के समर्थन में कई किलोमीटर लम्बा मार्च निकाला और उनका निलम्बन रद्द करके वापस स्कूल में लगाने की माँग की है, विभागीय जाँच जारी है और प्रशासन ने विद्यार्थियों को आश्वस्त किया है कि शिक्षकों के साथ न्याय होगा, लेकिन ऐसा आश्वासन दलित शिक्षिका हेमलता बैरवा के मामले में नहीं मिल पाया है, बल्कि वहाँ प्रदर्शन कर रहे विद्यार्थियों व उनके अभिभावकों पर पुलिस ने लाठियाँ भांजी है।

कुल मिलाकर राज्य का शैक्षणिक माहौल अत्यंत तनावपूर्ण बना दिया गया है, शैक्षणिक संस्थानों को नफ़रत की राजनीति का अखाड़ा बनाया जा रहा है, सरकारी स्कूलों को सरस्वती शिशु मंदिर अथवा आदर्श विद्या मंदिरों में तब्दील किया जा रहा है। जन प्रतिनिधि बेलगाम हो कर कुछ भी अनर्गल, अवैज्ञानिक और इतिहास विरोधी वक्तव्य दे कर अनिश्चितता का माहौल बना रहे हैं। राज्य का न केवल शैक्षणिक माहौल बल्कि साम्प्रदायिक सौहार्द और आपसी भाईचारा खतरे में हैं। संविधान और वैज्ञानिक सोच, तर्क अथवा विज्ञान की बात करना ईश निंदा की तरह है। 22 जनवरी 2024 के बाद राजकीय विद्यालयों में राष्ट्रीय उत्सव हो अथवा शाला के वार्षिक उत्सव या कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम राम दरबार की वेशभूषाएँ तथा राम घर आयेंगे जैसे गीतों ने राष्ट्रीय गीतों का स्थान लेना शुरू कर दिया है, हम अब भारतीय लोकतंत्र के नागरिक के बजाय अघोषित हिंदूराष्ट्र की प्रजा बनते जा रहे हैं। यह भारत नामक राष्ट्र के विचार की मृत्यु का काल है। इसमें दलित राम राज्य के शम्बूक बनने की तरफ़ अग्रसर है, स्थिति भयानक से भी बदतर होती जा रही है।

(लेखक सामाजिक कार्यकर्ता हैं)

उत्तराखण्ड समान नागरिक संहिता

बहुसंख्यकवादी नैतिकता संवैधानिक अधिकारों की जगह ले रही है

कविता कृष्णन

अम्बेडकर ने चेतावनी दी थी कि 'संवैधानिक नैतिकता कोई प्राकृतिक भावना नहीं है' और 'हमारे लोगों को अभी भी इसे सीखना बाकी है।'

उत्तराखंड विधानसभा द्वारा पारित समान नागरिक संहिता (यूसीसी) विधेयक राज्य को गैर-वैवाहिक यौन या रोमांटिक संबंधों को मंजूरी देने या दंडित करने की शक्ति देता है। विधेयक का यह खंड एक स्क्रीनशॉट है, जो मोशन पिक्चर के उस क्षण को कैप्चर करता है जहां एक संवैधानिक गणराज्य के रूप में भारत एक बहुसंख्यकवादी हिंदू राष्ट्र में बदल रहा है।

यह किसी आश्चर्य के रूप में नहीं आना चाहिए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और उससे जुड़े संगठनों ने पूरे दमखम से लगातार इस स्थिति का प्रचार किया है। उदाहरण के लिए, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी) ने 'लिव-इन रिलेशनशिप के खतरे' के खिलाफ अभियान चलाया। आरएसएस ने घरेलू हिंसा के खिलाफ कानून के लिए यूपीए (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) सरकार की निंदा की, जिसने 'भारत' में लिव-इन रिलेशनशिप की पश्चिमी अवधारणा पेश की और ऐसे रिश्तों को 'मानवता, और भारतीय परंपराओं और संस्कृति के खिलाफ' घोषित किया। मोदी कैबिनेट के एक मंत्री ने मांग की कि लिव-इन रिलेशनशिप के लिए पंजीकरण की आवश्यकता है। बीजेपी सांसद ने लिव-इन रिलेशनशिप को बताया 'खतरनाक बीमारी' और प्रतिबंध लगाने की मांग की। उन्होंने यह भी मांग की कि प्रेम विवाह के लिए माता-पिता की सहमति कानूनी रूप से आवश्यक होनी चाहिए।

इस कानून का बहाना महिला सुरक्षा है। एक बार फिर, हमें उस बासी और मनगढ़ंत 'बहस' में खींचा जा रहा है कि क्या स्वतंत्रता सुरक्षा से बेहतर है?

वास्तव में, जो मुद्दा दांव पर है वह 'बहस' का विषय नहीं है, क्योंकि अधिकार बहस जीतने का पुरस्कार नहीं हैं।

आरएसएस बनाम संविधान

आरएसएस ने हमेशा स्वतंत्रता और समानता पर आधारित संवैधानिक नैतिकता को अभारतीय माना है। संगठन के द्वितीय सरसंघचालक एम एस गोलवलकर ने 'बंच ऑफ थॉट्स (1960)' किताब में लिखा था कि लोकतंत्र के 'अनियंत्रित अवसर की समानता' और 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' के दुखद परिणाम हुए।' प्रश्न यह है कि क्या कानून और शासन तभी भारतीय हैं जब वे बहुमत और खाप पंचायत के विचारों को लागू करते हैं?

कुछ अदालती फैसलों ने इस संवैधानिक सिद्धांत को बखूबी व्यक्त किया है। एक फैसले में लिव-इन संबंधों पर स्थिति को स्पष्ट रूप से संक्षेप में प्रस्तुत किया गया हैः 'दो वयस्कों के बीच सहमति से लिव-इन संबंध' को अपराध नहीं माना जा सकता है, ''अधिक से अधिक इसे अनैतिक कह सकते हैं।'' फैसले में आगे कहा है, ''एक बालिग लड़की अपनी पसंद के किसी भी व्यक्ति से शादी करने या अपनी पसंद के किसी भी व्यक्ति के साथ रहने के लिए स्वतंत्र है।''

आरएसएस ने एक 'सर्वेक्षण' करने का दावा किया है जिससे उसे पता चला है कि विवाहित महिलाएं लिव-इन रिलेशनशिप में रहने वाली महिलाओं की तुलना में अधिक खुश हैं। आश्चर्य होता है कि वे 'खुशी' को कैसे परिभाषित करते हैं जबकि चाहे जोड़े विवाहित हों या नहीं, अंतरंग साथी द्वारा की जा रही हिंसा एक बदसूरत वास्तविकता है। समुदाय के बाहर साथी चुनने के कारण माता-पिता द्वारा अस्वीकार कर दी गई एक युवा महिला अपने अंतरंग साथी द्वारा की जा रही हिंसा के प्रति अधिक अलग-थलग और असुरक्षित होती है, चाहे वह विवाहित हों या नहीं।

आरएसएस का 'सर्वेक्षण' संवैधानिक नैतिकता के विपरीत उसकी बहुसंख्यकवादी नैतिकता का एक उपयोगी उदाहरण है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 में पाया गया है कि सर्वेक्षण में 52 प्रतिशत महिलाओं (और 42 प्रतिशत पुरुषों) ने घरेलू हिंसा को उचित ठहराया। चूंकि अधिकांश विवाहित महिलाएँ इसका समर्थन करती हैं, तो क्या घरेलू हिंसा को कानून सम्मत बनाना चाहिए?

बहुसंख्यकवादी गणना व्यक्ति की स्वायत्तता को नकारती है। एक महिला जो आज शादी करना चाहती है वह भविष्य में अपना मन बदल सकती है; और इसके विपरीत भी हो सकता है। एक महिला जो सोचती है कि घरेलू हिंसा उचित है (आशा है) वह भविष्य में अपना विचार बदल सकती है। जो राय आज बहुमत द्वारा समर्थित है वह कल बदल सकती है।

इस बिंदु को दिल्ली उच्च न्यायालय ने धारा 377 के तहत समलैंगिक संबंधों के अपराधीकरण को पढ़ते हुए अपने फैसले में संबोधित किया थाः '...लोकप्रिय नैतिकता या कुछ कृत्यों की सार्वजनिक अस्वीकृति अनुच्छेद के तहत मौलिक अधिकारों के प्रतिबंध के लिए वैध औचित्य नहीं है। यदि किसी भी प्रकार की 'नैतिकता' राज्य हित की कसौटी पर खरी है तो यह 'संवैधानिक' नैतिकता होनी चाहिए न कि

सार्वजनिक नैतिकता'... संवैधानिक नैतिकता को सार्वजनिक नैतिकता के तर्क पर भारी पड़ना चाहिए, भले ही यह बहुसंख्यकवादी दृष्टिकोण हो।'

लेकिन अशुभ रूप से, अदालतें भी लिव-इन रिलेशनशिप के खिलाफ आरएसएस के नेतृत्व वाले राजनीतिक स्वर में शामिल होने लगी हैं। पिछले साल इलाहाबाद हाइकोर्ट की एक पीठ ने घोषणा की कि 'मध्यम वर्ग की नैतिकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है' क्योंकि यह राष्ट्रों की 'स्थिरता - सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक' के लिए आवश्यक था। यदि मध्यम वर्ग की नैतिकता राष्ट्रवादी है, तो लिव-इन रिलेशनशिप निश्चित रूप से राष्ट्र के खिलाफ एक साजिश है, राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा हैः 'इस देश में विवाह की संस्था को नष्ट करने और समाज को अस्थिर करने और हमारे देश की प्रगति में बाधा डालने के लिए एक व्यवस्थित डिजाइन है।'

मोदी राज की 'उन्मादीभीड़'

आरएसएस विचारक राम माधव लिखते हैं कि मोदी की सरकार पहली सरकार है जो 'भीड़' को खुश करती है क्योंकि यह 'सर्वोत्कृष्ट रूप से भारतीय...राज्य, परिवार, जाति, गुरु और त्योहार जैसी धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं' के अधिकार की पुष्टि करती है। यदि आरएसएस की चली, तो प्रत्येक भारतीय के अधिकार 'राज्य, परिवार, जाति, गुरु' और निश्चित रूप से 'भीड़' की दया पर निर्भर होंगे।

जब कोई भीड़ खुश होती है तो वह कैसी दिखती है? उसे शब्दशः उद्धृत करने के लिए, 'वे इसका आनंद ले रहे हैं'? गोरक्षा के नाम पर मुसलमानों की भीड़ द्वारा हत्या से पहले भी, हमारे यहां 'मां और बेटियों' को 'अनैतिक' प्रभावों से बचाने के नाम पर महिलाओं की भीड़ हत्याएँ होती थी। यहां केवल एक राज्य, असम, के उदाहरण हैं। नवगाओं में भीड़ ने एक जोड़े को पूरी रात पीटा और महिला का सिर मुंडवा दिया. गुवाहाटी में एक पब से बाहर आ रही एक किशोरी महिला के साथ भीड़ ने यौन उत्पीड़न किया। कई मौकों पर जोड़ों पर भीड़ द्वारा हमला किया गया है और टीवी स्टेशनों ने महिलाओं को 'छोटे कपड़ों' के लिए सार्वजनिक रूप से शर्मिंदा किया है। यहां तक कि एक महिला विधायक भी इस तरह की भीड़ हिंसा से अछूती नहीं थी, खासकर तब जब उसे एक मुस्लिम से शादी करने वाली हिंदू महिला और व्यभिचारी माना जाता था। नारीवादियों ने बताया है कि ऐसे लैंगिक दंगों में, 'हमारी सुरक्षा के नाम पर, हम सभी से हमारी गरिमा छीनी जा सकती है।'

उत्तराखंड 'धर्मांतरण विरोधी अध्यादेश' में राज्य द्वारा अंतर-धार्मिक विवाहों को मंजूरी देने की आवश्यकता है, जिससे लव जिहाद (मुस्लिम पुरुषों और हिंदू महिलाओं के बीच संबंध) के खिलाफ राज्य द्वारा प्रेरित हिंसा को बल मिले, यह कई अन्य भाजपा शासित राज्यों में कानून बनाने के लिए आदर्श बन गया। यूसीसी भी ऐसा ही करेगा।

अधिकार अधिकार हैं क्योंकि उनका लोकप्रियहोना जरूरी नहीं है

व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति शत्रुता, विशेष रूप से सेक्स, रिश्तों और विवाह के मामलों में, आरएसएस और भाजपा के लिए नयी बात नहीं है, यह भारतीय समाज के अधिकांश क्षेत्रों में व्याप्त है।

अल्पसंख्यक और कमज़ोर समूह कोई अपवाद नहीं हैं। उदाहरण के लिए, 2013 में जमात-ए-इस्लामी हिंद ने न्यायमूर्ति जे.एस. से सिफारिश की थी। वर्मा समिति ने कहा कि 'केवल पुरुष और महिला की स्वतंत्र इच्छा से किए गए उचित विवाह को ही कानूनी रूप से स्वीकृत कानूनी यौन अंतरंगता के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। लिव-इन-रिलेशनशिप सहित विवाहेतर सभी यौन संबंधों को अवैध और दंडनीय घोषित किया जाना चाहिए।'

लेकिन संवैधानिक नैतिकता सब कुछ है या कुछ भी नहीं; यह केवल तभी किसी की रक्षा कर सकती है जब यह सभी पर लागू हो। 'अधिकारों' की अवधारणा का पूरा सार यह है कि प्रत्येक मनुष्य इनके साथ पैदा होता है, इसलिए उन्हें सिर्फ इसलिए नहीं छीना जा सकता क्योंकि वे बहुसंख्यकों के बीच अलोकप्रिय हैं।

जब मुस्लिम या आदिवासी व्यक्तिगत कानूनों पर यूसीसी के बहुसंख्यकवाद की बात आती है तो संवैधानिक सिद्धांतों की अपील तब कमजोर हो जाती है जब महिलाओं और LGBTQ लोगों के मामले में उन सिद्धांतों का बचाव नहीं किया जाता है। यही बात उत्पीड़ित जातियों के अधिकारों, यानी गरिमा और समानता के अधिकारों पर भी लागू होती है और गरीबों को पुलिस अत्याचार और नरसंहार से मुक्ति के अधिकार पर भी।

1948 में संविधान के जन्म के समय ही, डॉ. अम्बेडकर ने चेतावनी दी थी कि 'संवैधानिक नैतिकता कोई प्राकृतिक भावना नहीं है... हमें यह समझना चाहिए कि हमारे लोगों को अभी भी इसे सीखना बाकी है। भारत में लोकतंत्र केवल भारतीय धरती पर दिखावा मात्र है जो अनिवार्य रूप से अलोकतांत्रिक है।'

नारीवादी, समलैंगिक और जाति-विरोधी आंदोलन लोकतंत्र की जड़ों को सींचते हैं। आरएसएस और भाजपा इन्हें आक्रामक खरपतवार घोषित करते हैं और लोकतांत्रिक पोषक तत्वों की मिट्टी को खत्म कर देते हैं। वे संकीर्ण विचारधारा वाली कट्टरता की फसल बोते हैं जो अलोकतांत्रिक भूमि पर पनपती है और भरपूर राजनीतिक फसल पैदा करती है।

भारत (और दुनिया) को ऐसे नेताओं की ज़रूरत है जो सार्वभौमिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों की रक्षा करें, खासकर तब जब वे सिद्धान्त अलोकप्रिय हों।

(अनुवाद : भारत भूषण चौधरी)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020

शिक्षा से बहुजनों की बेदखली और वैश्विक पूंजी की गुलामगिरी का घोषणापत्र

प्रो. अनिल सद्गोपाल

*ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए सन् 1857 से शुरू हुई आज़ादी की लड़ाई से उपजे इंसानियत के मूल्यों की समृद्ध विरासत की नींव पर खड़े संविधान की प्रस्तावना में बराबरी व सामाजिक न्याय और विचार, अभिव्यक्ति, धर्म व उपासना की स्वतंत्रता व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता व अखंडता को पुख़्ता करने वाली बंधुता पर आधारित **संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य** के निर्माण के लिए हरेक नागरिक को सामाजिक नवजागरण के लिए प्रेरित करने वाली परिवर्तनकामी शिक्षा के जनवादी विकल्प की नई चुनौती।*

1.0 संवैधानिक प्रावधानों और संसदीय परंपराओं का सिरे से उल्लंघन करनेवाली लोकतंत्र-विरोधी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (रा.शि.नी.), 2020

गौरतलब है कि भारत की आज़ादी के बाद 75 साल में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (रा.शि.नी.), 2020 पहली और अकेली शिक्षा नीति है जिसे,

क) जनता के विचार जानने के लिए सार्वजनिक बहस का कोई प्रावधान नहीं रखा गया।

ख) न तो विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति की पड़ताल के लिए और न ही संसद की स्वीकृति के लिए पेश किया गया जो इसलिए भी निहायत ज़रूरी था चूंकि उपरोक्त शिक्षा नीति में कई ऐसे प्रावधान हैं जिनके लिए वर्तमान कानूनों में संशोधन करने होंगे या फिर नये कानून बनाने पड़ेंगे।

ग) राज्यों व यू.टी. (केंद्र-शासित प्रदेशों) की विधानसभाओं में सलाह-मशविरे या अनुमोदन के लिए पेश नहीं किया गया इसके बावजूद कि संविधान के मुताबिक शिक्षा समवर्ती सूची में है यानी यह केंद्र और राज्यों व यू.टी. दोनों का विषय है (देखिएः सातवीं अनुसूची, अनुच्छेद 246, सूची तीन)।

घ) केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ('केब') की राय तक नहीं ली गई जबकि वह शिक्षा नीति की पड़ताल और स्वीकृति के लिए भारत का सर्वोच्च निकाय है जहां सभी राज्यों व यू.टी. के शिक्षा मंत्रियों का लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व होता है।

1.1 संविधान में शामिल आज़ादी की लड़ाई से अंकुरित मूल्यों की समृद्ध विरासत एवं भारत की संप्रभुता व संघीय रचना पर हमला

यह भी गौरतलब है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत की सूचीबद्ध 22 भाषाओं में उपलब्ध नहीं कराया गया और ना ही इसकी कोई ज़रूरत समझी यानी भारत की भाषायी समृद्ध विविधता का अपमान किया गया और उन भाषाओं को बोलने वाले देश के करोड़ों नागरिकों (जिसमें आदिवासी भी शामिल हैं) के सुझावों या समीक्षा को दरकिनार किया गया।

इस पृष्ठभूमि में विडंबना यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के मसौदे पर केवल राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ (आरएसएस) से विस्तृत सलाह-मशविरा किया गया। आरएसएस के नेतृत्व ने एलान किया कि उनके 80% सुझावों व मांगों को उपरोक्त रा.शि.नी. 2020 में शामिल कर लिया गया है। इसके साथ कुलीन धनाढ्य कारपोरेट घरानों के सुझावों और मांगों को भी इस नीति में शामिल किया गया ताकि उनके लिए शिक्षा के ज़रिए मुनाफ़ाखोरी के नए रास्ते खुल जाएं, खासकर डिजिटल धंधे के। संविधान पर आरएसएस के पूर्व-घोषित नकारात्मक विचारों के मद्देनज़र यह एकदम स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 संवैधानिक मूल्यों और प्रावधानों को नकार कर ही बनाई गई है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है कि उपरोक्त शिक्षा नीति संविधान के अनुच्छेद 1(1) यानी 'भारत, अर्थात इंडिया, राज्यों का संघ होगा। ' या 'India, that is Bharat, shall be a Union of States' को और साथ में भारत की संघीय रचना को भी सिरे से खारिज करती है। केवल यही नहीं, उपरोक्त नीति में अनेक प्रावधान किए गए हैं जिनके ज़रिए सभी राज्यों व यू.टी. (केंद्र-शासित प्रदेशों) से आंगनवाड़ी की पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्कूली शिक्षा समेत उच्च व पेशेवर तकनीकी शिक्षा तक के तमाम अधिकार संविधान का उल्लंघन करते हुए बगैर किसी लोकतांत्रिक सलाह-मशविरे के छीनकर केंद्र को सौंप दिए गए जबकि यह सर्वमान्य है कि संविधान के मुताबिक शिक्षा समवर्ती सूची में है यानी यह केंद्र और राज्यों व यू.टी. (केंद्र-शासित प्रदेशों) दोनों का विषय है (देखिएः सातवीं अनुसूची, अनुच्छेद 246, सूची तीन)।

संविधान के इस खुलेआम उल्लंघन के दुष्परिणामों का ब्यौरा इसी आलेख में आगे विस्तार से प्रस्तुत किया जाएगा जिन्हें आज देश के करोड़ों बच्चे, युवा और उनके परिजन भुगत रहे हैं जिसकी सबसे खतरनाक जन-विरोधी मिसाल पूरे देश की मेडिकल शिक्षा के यूजी (एँए) कोर्स में दाखिले के लिए केंद्रीकृत नीट (NEET) परीक्षा और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में भी उसी तर्ज़ पर केंद्रीकृत (CUET) परीक्षा जबरन थोपी गई है – दाखिले के लिए उपरोक्त दोनों परीक्षाएं कोचिंग के अंतर्राष्ट्रीय लूट-मार एड-टेक धंधे की गुलामगिरी और आम जनता, खासकर मजदूरों व किसानों, के पसीने की कमाई की खुली लूट पर आधारित।

यहां यह रेखांकित करना ज़रूरी है कि उपरोक्त केंद्रीकरण वैश्विक पूंजीवाद के एजेंट 'विश्व व्यापार संगठन-गैट्स' (WTO-GATS) को भारत में 'सिंगल विंडो क्लियरेंस' यानी एकल प्रवेश द्वार बतौर प्रधानमंत्री कार्यालय का ज़रिया देने की मांग पर किया गया है ताकि शिक्षा के कॉरपोरेटीकरण व वैश्वीकरण की रफ़्तार तेज़ की जा सके और साथ में धार्मिक कट्टरवाद पर टिके मनुवादी जाति-आधारित एवं पितृसत्तात्मक वर्चस्व की गुलामी का शिकंजा भी शिक्षा पर कसा जा सके। भारत के सभी देशप्रेमी नागरिकों के लिए यह गंभीर चिंता का विषय होगा कि 'आत्मनिर्भर भारत' बनाने का लगातार दावा करने वाली केंद्र सरकार अब वैश्विक पूंजीवाद के एजेंट 'विश्व व्यापार संगठन-गैट्स' (WTO-GATS) के हुक्म पर फैसला लेती है, न कि भारत के संविधान के निर्देशों के आधार पर जिसकी शपथ लेकर ही माननीय प्रधानमंत्री व उनके मंत्रीमंडल के सभी मंत्रियों ने अपने सार्वजनिक पद ग्रहण किए हैं।

संविधान के उपरोक्त अनुच्छेद 1 (1), के मुताबिक ब्रिटिश राज से आज़ादी के बाद पुनर्गठित जिस विविधतामूलक नए भारत की रूपरेखा को आज़ाद भारत ने आत्मसात किया, उसे ही संविधान सभा परिभाषित करती है।

संविधान सभा की ड्राफ़्टिंग यानी मसौदा समिति के अध्यक्ष बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर ने 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा के सामने संविधान पेश करते हुए अपने ऐतिहासिक व्याख्यान में भारत की संघीय रचना (Federal Character) की निम्नांकित ऐतिहासिक व्याख्या की (निम्नांकित उद्धरण इस लेखक द्वारा मूल अंग्रेजी से हिंदी में रूपांतरित) –

'जहां तक केंद्र और राज्यों के आपसी रिश्ते का सवाल है, यह निहायत ज़रूरी है कि हम उस मूलभूत सिद्धांत को ध्यान में रखें जिस पर यह रिश्ता टिका हुआ है। संघवाद यानी फ़ेडरलिज़्म का बुनियादी सिद्धांत है कि केंद्र और राज्यों के बीच विधायी (वैधानिक) व कार्यान्वयन-संबंधी (प्रशासकीय) अधिकार खुद संविधान द्वारा बांटे (विभाजित) गए हैं, न कि किसी केंद्रीय कानून के द्वारा। हमारे संविधान में 'राज्य' किसी भी रूप में अपने विधायी (वैधानिक) व कार्यान्वयन-संबंधी (प्रशासकीय) अधिकारों के लिए केंद्र पर कतई निर्भर नहीं हैं। इस मामले में केंद्र और राज्य एक-दूसरे के बराबर हैं। ..... यही वह सिद्धांत है जिसे संविधान ने मूर्त रूप दिया है। इस बारे में कोई भी गलतफ़हमी नहीं हो सकती। इसलिए यह कहना गलत होगा कि राज्यों को केंद्र के अधीन किया गया है। केंद्र अपनी मनमर्जी से अधिकारों के उक्त विभाजन की सीमाओं को बदल नहीं पाएगा और ना ही न्यायपालिका।'

यह हैरतअंगेज सच्चाई है कि देशभक्ति व हिंदू राष्ट्रवाद की कसमें खाती जो भाजपाई केंद्रीय सरकार कभी अघाती नहीं है उसको वैश्विक पूंजीवाद के एजेंट 'विश्व व्यापार संगठन-गैट्स' (WTO-GATS) की भारत की शिक्षा में 'सिंगल विंडो क्लियरेंस' देने की मांग को स्वीकारने में तनिक भी हिचक नहीं हुई ताकि कोचिंग के अंतर्राष्ट्रीय एड(शिक्षा)-टेक लूट-मार धंधे की गुलामगिरी के लिए रा.शि.नी. 2020 की आड़ में आम जनता के पसीने की कमाई की बेलगाम लूट के दरवाजे खोले जा सकें और भारत की उच्च व पेशेवर शिक्षा में युवाओं की उम्मीदों को चकनाचूर करते हुए उनको कोचिंग की अंतहीन मुनाफ़ाखोरी हेतु आत्महत्या के लिए मजबूर किया जा सके। यानी रा.शि.नी. 2020 के निर्माताओं के लिए भारत की संविधान सभा की मसौदा समिति के अध्यक्ष बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर के भारत की संघीय रचना पर उपरोक्त ऐतिहासिक वक्तव्य के मुकाबले 'विश्व व्यापार संगठन-गैट्स' (WTO-GATS) की मांग कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। क्या यही 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत' की नई पहचान होगी? रा.शि.नी. 2020 के तहत भारत की मेडिकल शिक्षा में MBBS के कोर्स में दाखिले के लिए पूरी तरह केंद्रीकृत 'नीट' (NEET) परीक्षा का कच्चा चिट्ठा इस आलेख के अंतिम हिस्से में विस्तार के साथ पेश किया गया है।

भारत की संवैधानिक अंतरात्मा को झकझोरने वाली यह कहानी यहां खत्म नहीं होती। इसके और पन्ने पलटिए। रा.शि.नी. 2020 में संविधान के खंड–तीन (मौलिक अधिकार) व खंड–चार (नीति निर्देशक सिद्धांत) का जिक्र तक नहीं है और ना ही भारत के नागरिकों को संबोधित करते हुए संविधान की प्रेरणादायक व चुनौतीपूर्ण प्रस्तावना (Preamble) में प्रतिष्ठापित धर्मनिरपेक्षता एवं समाजवाद

जैसे ऐतिहासिक मूल्यों का। इतिहास गवाह है कि इन दोनों मूल्यों की आज़ादी की लड़ाई के दौरान शहीद चंद्रशेखर आज़ाद व उनके सहकर्मी शहीद अश्फ़ाकउल्लाखां, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह और उनके साथी शहीद सुखदेव व राजगुरु, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेंद्र देव, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर, पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि द्वारा तहेदिल पुरजोर पैरवी की गई थी।

1.2 संविधान की प्रस्तावना में प्रतिष्ठापित सामाजिक न्याय की निर्णायक अवधारणा रा.शि.नी. 2020 के एजेंडे से ही खारिज

संविधान में उत्पीड़ित व शोषित समुदायों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, ओबीसी यथा पिछड़ा वर्ग, धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यक, घुमंतु व विमुक्त जातियां, ट्रांस जेंडर और हरेक तबके में खासतौर पर महिलाएं) यानी बहुजनों (भारत की आबादी के 85%) के लिए सामाजिक न्याय बतौर शैक्षिक संस्थाओं में विद्यार्थियों के दाखिले और शिक्षकों व अन्य पदों पर भर्तियां एवं पदोन्नति आदि में आरक्षण हेतु पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं यथा विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति, फ़ेलोशिप, हॉस्टल सुविधा, आर्थिक सहायता आदि। रा.शि.नी. 2020 से सामाजिक न्याय के उपरोक्त समूचे एजेंडे को भ्रांति पर आधारित तथाकथित मेरिट (विशेष प्रतिभा) की मिथ्या धारणा के बहाने सिरे से खारिज कर दिया गया है। दरअसल, जिसे रा.शि.नी. 2020 में मेरिट (विशेष प्रतिभा) कहा गया है उसकी जड़ें पीढ़ी-दर-पीढ़ी कई पीढ़ियों से सुविधाभोगी सत्ताधारी वर्गों/उच्च वर्णों, पितृसत्ता-आधारित उच्च जातियों व नस्लों के साथ विशेषाधिकृत धर्म, जन्म-स्थान व भाषा आदि में पोषित/सिंचित होकर पलती रही हैं। इस नज़रिए से देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि उपरोक्त बहुजनों (भारत की आबादी का 85%) और उच्च जातियों के गरीबों के लिए भी संविधान में किए गए सामाजिक न्याय के प्रावधानों को खारिज करके उनकी जगह पीढ़ी-दर-पीढ़ी कई पीढ़ियों से सुविधाभोगी सत्ताधारी वर्गों/उच्च वर्णों में पोषितों को तथाकथित मेरिट (विशेष प्रतिभा) जैसी भ्रांति की आड़ में विशेषाधिकार देना संविधान-विरोधी होगा।

2.1 रा.शि.नी. 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय ज्ञान प्रणाली यानी IKS (Indian Knowledge System) में निहित भ्रांतियों व विरोधाभासों पर आधारित नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क, 2023/राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 (NCF, 2023) : सवाल, सरोकार व विश्लेषण

रा.शि.नी. 2020 के मुताबिक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 (NCF, 2023) ने प्राचीन भारत में ज्ञानमीमांसा (इपिस्टमॉलॉजी) यानी ज्ञान की खोजबीन, उत्पत्ति व तराशने की विभिन्न पद्धतियों और संदर्भों का विस्तृत ब्यौरा पेश किया है ताकि इनको आज की स्कूली और उच्च शिक्षा का आधार बनाया जा सके। लेकिन इस प्रस्ताव की सार्थकता, उपयोगिता और मकसद के बारे में भारत के विविधतापूर्ण इतिहास के मद्देनज़र गहराई से देशव्यापी चिंतन, खासकर विभिन्न राज्यों व यू.टी. (केंद्र-शासित प्रदेशों) की विधान सभाओं और विभागीय स्थाई संसदीय समिति द्वारा समीक्षा किए बगैर कोई भी कदम उठाना देश के भविष्य और साम्राज्यवाद-विरोधी व जाति-विरोधी आज़ादी की लड़ाई की विचारधारा पर टिके संविधान के साथ धोखा होगा।

ज्ञानमीमांसा के उक्त ब्यौरे पर तीन गंभीर सवाल उठाने और उनकी तार्किक पड़ताल करना निहायत ज़रूरी है और सचेत व देशप्रमी नागरिक होने के नाते हम सब का मूल कर्तव्य भी है।

पहला सवाल: राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 के दस्तावेज में प्राचीन भारत की ज्ञानमीमांसा को केवल हिंदू धर्म के स्रोतों यानी वेदों और उपनिषदों तक ही सीमित कर दिया गया है गोया कि प्राचीन भारत में वेदों और उपनिषदों के अलावा ज्ञान का कोई और सटीक स्रोत, सामाजिक-सांस्कृतिक दर्शन या विमर्श था ही नहीं! इस संकीर्ण व भेदभावपूर्ण सोच के पीछे प्राचीन भारत का आधा-अधूरा ही नहीं बल्कि निहायत भ्रामक, विकृत व विभाजनकारी नज़रिया छिपा हुआ है। भावी युवा पीढ़ी को आधा-अधूरा दिग्भ्रमित करने वाला ज्ञान देने के इस नज़रिए की बुनियाद में भारत के समृद्ध व विविधतापूर्ण इतिहास को महज हिंदू राष्ट्र में समेटने की राष्ट्र-विरोधी व संविधान-विरोधी साजिश छिपी है।

इतिहास गवाह है कि प्राचीन भारत में ज्ञानमीमांसा की विभिन्न पद्धतियों और ज्ञान परंपराओं के मुताबिक वेदों और उपनिषदों के अलावा तीन महत्वपूर्ण समानांतर दार्शनिक धाराएं भी थीं जिनके द्वारा वेदों और उपनिषदों के ज्ञान को पुरजोर चुनौती दी गई यथा,

1. चार्वाक या लोकायत

2. महावीर – जैन धर्म

3. गौतम बुद्ध – बौद्ध धर्म

प्राचीन भारत की उपरोक्त तीनों दार्शनिक व समृद्ध धाराओं ने वेदों और उपनिषदों की ज्ञानमीमांसा से हटकर

वैकल्पिक ज्ञान व ज्ञानमीमांसा का निर्माण किया। चार्वाक/लोकायत एक भौतिकवादी नास्तिक दर्शन था जिसमें हकीकत उसी को माना गया जिसे इंसान की शारीरिक इंद्रिया देख सकें, सुन सकें या महसूस कर सकें जिसके आधार पर समाज व प्रकृति के बारे में सटीक व विश्वसनीय निष्कर्ष निकाले जा सकें। लेकिन इन निष्कर्षों की सच्चाई पर भी संदेह, सवालों व बहस के ज़रिए पुनर्विचार के लिए दिमाग के दरवाजे खुले रहेंगे, यानी वेदों और उपनिषदों की तरह किसी भी निष्कर्ष के लेकर अंतिम या शाश्वत सत्य का दुराग्रह कतई नहीं रहेगा। दरअसल, चार्वाक/लोकायत की यह ज्ञानमीमांसा आधुनिक विज्ञान की तरह तर्कों व तथ्यों पर, न कि मिथकों या भ्रांतियों पर, आधारित ज्ञानमीमांसा हैं। इसके विपरीत वेदों और उपनिषदों की ज्ञानमीमांसा और आख्यान (नेरेटिव) को अंतिम सत्य माना गया जिस पर संदेह करने, सवाल पूछने या बहस करने को हिंदू धर्म के खिलाफ़ माना गया यानी वेदों और उपनिषदों के ज्ञान के ब्राह्मणी वर्चस्व को चुनौती देने के दरवाजे बंद थे। यह अचरज की बात नहीं होगी कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 भी देश की लाखों कक्षाओं में जिस शिक्षा शास्त्र को स्थापित करने जा रही है उसमें भी ॐ की पाठ्यचर्या द्वारा थोपे गए ज्ञान पर संदेह करने, सवाल पूछने या बहस करने को न केवल हिंदू धर्म के बल्कि भारत के भी खिलाफ़ माना जाए!

गौरतलब है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 ने प्राचीन भारत के चार्वाक/लोकायत दर्शन का जिक्र तक नहीं किया चूंकि उसमें पारलौकिक और पुनर्जन्म जैसे गैर-तार्किक, गैर-वैज्ञानिक और भ्रामक मिथकों को खारिज किया गया है। इसी वजह से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 के 628 पृष्ठों के दस्तावेज में जैनधर्म के 24वें तीर्थांकर महावीर (ईसा से 6 सदी पूर्व) और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध (ईसा से 6/5 सदी पूर्व) दोनों की ज्ञानमीमांसा को कोई जगह नहीं दी गई चूंकि दोनों ने वेदों और उपनिषदों की ब्राह्मणी वर्ण-व्यवस्था और पितृसत्ता को चुनौती देते हुए समाज में बराबरी व सामाजिक न्याय की विचारधारा का पाठ पढ़ाया जैसा कि संविधान का भी तकाज़ा है।

दूसरा सवालः राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 ने क्यों वेदों और उपनिषदों में संस्कृत में दर्ज़ ब्राह्मणी ज्ञानमीमांसा व आख्यान को महत्व दिया लेकिन चार्वाक/लोकायत, 24वें तीर्थांकर महावीर व गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित क्रमशः जैन और बौद्ध धर्मों की पाली व प्राकृत जैसी जन-भाषाओं में दर्ज़ अ-ब्राह्मणी ज्ञानमीमांसा व आख्यान को सिरे से नकारा है। निःसंदेह वेदों और उपनिषदों से लेकर चार्वाक/लोकायत, जैन और बौद्ध दर्शनों तक इन सभी का जन्म, सृजन और पनपना प्रचीन भारत की ही समृद्ध और विविधतापूर्ण साझी विरासत है। इसके बावजूद वेदों और उपनिषदों ने केवल ब्राह्मणी ज्ञानमीमांसा व आख्यान को मजबूत किया और वह भी उच्च वर्णों की संस्कृत भाषा में। इसके विपरीत दूसरी ओर चार्वाक/लोकायत, महावीर और गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित क्रमशः जैन और बौद्ध दर्शनों ने वर्ण-व्यवस्था व पितृसत्ता-विरोधी ज्ञानमीमांसा का तार्किक आख्यान स्थापित किया और वह भी पाली व प्राकृत जैसी जन-भाषाओं में। इसीलिए असली सवाल यही है कि प्राचीन भारत की इतनी बुनियादी सामाजिक, भाषाई और दार्शनिक विडंबनाओं और विभिन्न ज्ञान परंपराओं (उदा. चार्वाक, महावीर व बौद्ध) और उनके परस्पर द्वंदों पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 चुप क्यों है?

दरअसल, उपरोक्त चुप्पी का राज़ यह है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 के ज़रिए प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय ज्ञान प्रणाली का समग्र इतिहास नहीं बल्कि समाज के बांटने-तोड़ने वाली भेदभाव-आधारित वर्ण-व्यवस्था व पितृसत्ता का ब्राह्मणी व विभाजनकारी मनुवादी इतिहास ही पढ़ाया जाएगा।

तीसरा सवालः राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 ने विद्यार्थियों से अपेक्षा की है कि 'वे भारत की जड़ों से जुड़ें और भारत की समृद्ध, विविध, प्राचीन व आधुनिक संस्कृति, ज्ञान व्यवस्थाओं व परंपराओं में गर्व का अहसास करें (पृ. 24, खंड 1.2.2)।' बेशक, बहुत ही चुनौतीपूर्ण और प्रेरणादायक अपेक्षा युवाओं से! लेकिन एक सवाल उठता है। एक ओर तो देश के सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व द्वारा बार-बार जनता को और विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों से 'वसुधैव कुटुंबकम' का आह्वान दिया जाता है लेकिन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 विद्यार्थियों को यह बताने से इंकार कर रही है कि जब प्राचीन भारत में ज्ञान का उत्पादन हो रहा था तब दुनिया के कई और मुल्कों या इलाकों में भी यह प्रक्रिया जोर पकड़ रही थी यथा, मेसोपोटामिया (वर्तमान सीरिया, इराक, इरान के कुछ इलाके) और चीन, ग्रीस/यूनान आदि। हकीकत तो यह है कि पृथ्वी पर जहां भी इंसान बसे वहां उन्होंने अपने अस्तित्व के लिए प्रकृति से जूझते हुए ज़रूरत के मुताबिक उपयोगी ज्ञान का उत्पादन किया। गौरतलब है कि झारखंड के आदिवासियों ने भी लोहा पत्थर से खुद ही लोहा बनाना सीखा, वह भी जब इंटरनेट नहीं था। केवल यही नहीं बल्कि दुनिया भर में समुद्री व ज़मीनी कारोबार के चलते विभिन्न प्राचीन सभ्यताओं के बीच ज्ञान-विज्ञान का भी

खुलकर आदान-प्रदान हुआ, जैसे भारत का ज्ञान समुद्री रास्ते से सीरिया होते हुए पूर्वी युरोप के कुछेक इलाकों में पहुंचा और मेसोपोटामिया का ज्ञान उसी तरह भारत पहुंचा। इसलिए अगर हमारा 'वसुधैव कुटुंबकम' में सचमुच विश्वास है (न कि केवल जी-20 के सन् 2023 में दिल्ली में हुए सम्मेलन में विदेशियों को सुनाने के लिए) तो हमें विभिन्न सभ्यताओं व द्वारा उत्पादन और आदान-प्रदान किए गए ज्ञान पर भी गर्व का अहसास होना चाहिए अन्यथा हमारा 'वसुधैव कुटुंबकम' का आह्वान न केवल निरर्थक बल्कि निरा आडंबर भी हो जाएगा।

यह विडंबना है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 खुद ही ज्ञान को दुनिया की पूरी इंसानियत की सामूहिक विरासत घोषित करती है लेकिन गर्व को जोड़ती है केवल भारत में सृजित ज्ञान से। अगर र्न्ड्ढ्रि को इस आग्रह में विश्वास न हो तो हम उम्मीद करें कि स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ टैगोर, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला, महात्मा जोतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले, पंडिता रामाबाई, दादाभाई नौरोजी, शाहुजी महाराज, भीखाजी रुस्तम कामा, पेरियार ई.वी. रामास्वामी, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, और महात्मा गांधी आदि से NCERT ज़रूर कुछ सीखेगी और देश के करोड़ों भावी युवा नागरिकों को 'वसुधैव कुटुंबकम' की बुनियाद यानी इंसानियत का सच्चा पाठ पढ़ाएगी, न कि ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-दलित, पुरुष-स्त्री के नाम पर मनुवादी नफ़रत व घमंड का!

2.2 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 का आधा-अधूरा संकुचित विकृत नज़रियाः चार्वाक, महावीर और गौतम बुद्ध के अ-ब्राह्मणी दर्शनों की अवहेलना के अलावा उपरोक्त पाठ्यचर्या की रूपरेखा द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय ज्ञान प्रणाली के दायरे से निम्नांकित को भी दरकिनार करके भारत के इतिहास को संकुचित व विकृत करके पेश किया गया हैः

- वर्ण-व्यवस्था व पितृसत्ता-विरोधी प्राचीन और परिवर्तनकामी समृद्ध तमिल साहित्य की अवहेलना
- मध्यकालीन युग की ऐतिहासिक प्रासंगिकता जब इस्लामिक व हिंदू परंपराओं के बीच परस्पर आदान-प्रदान के फलस्वरूप समन्वयी सूफ़ी भक्ति व सिख सांस्कृतिक आंदोलन का निर्माण हुआ जिसके ज़रिए भारतीय समाज में नवजागरण की नई लहर शुरू हुई और ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों – यथा प्रशासन, व्यापार, भवन निर्माण, इंजीनियरिंग, सिंचाई, खेती की ज़मीनों का मापन व दस्तावेजीकरण, साहित्य, संगीत व कला – में अभूतपूर्व गतिशीलता आई।
- दक्षिणी, पश्चिमी, पूर्वी व पूर्वोत्तर भारत में आदिवासियों द्वारा कृषि, वन संरक्षण व अन्य प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन जिसे भारत की प्रबुद्ध व समृद्ध ब्राह्मणी विरासत में कोई मान्यता नहीं मिली।
- सामाजिक परिवर्तन (खासकर, उत्पीड़न करनेवाली जाति व्यवस्था व पितृसत्ता का प्रतिरोध) एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत के निम्नांकित कई इलाकों में सामाजिक नवजागरण को परिवर्तनकामी प्रेरणादायक नेतृत्व मिला जिसको सत्ताधारी उच्च वर्गों व उच्च जातियों के मार्गदर्शन में लिखी गई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 में पेश भारतीय इतिहास व ज्ञान परंपरा में कोई जगह नहीं मिली यथा संत कबीर (उत्तर प्रदेश), संत रैदास (मध्य प्रदेश), गुरू नानक (पंजाब), संत तुकाराम, सावित्रीबाई फुले, जोतिबा फुले व फ़ातिमा शेख (महाराष्ट्र), बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर व शाहुजी महराज (महाराष्ट्र), कुंडुकरी वीरसालिंगम व गुराजादा अप्पाराव (आंध्र प्रदेश), आयोथी थास्स, सिंगारावेलर व पेरियार (तमिलनाडु), संत आयनकली व संत नारायण गुरु (केरल), शंकर देव (असम) और 19वीं सदी व 20वीं सदी के शुरूआती वर्षों में इसाई मिशनरियों का स्थानीय भाषाओं और शिक्षा के विकास में योगदान (खासकर पूर्वोत्तर राज्यों में)।

रा.शि.नी. 2020 के निर्माताओं ने अपने वर्ण-व्यवस्था व पितृसत्ता-संबंधी मनुवादी पूर्वाग्रही सोच की वजह से वर्चस्वपूर्ण ब्राह्मणी समाज व पितृसत्तात्मक जेंडर की संस्कृति व चंदेक विशिष्ट इलाके – हिदुत्व, ब्राह्मणी, व संस्कृतनिष्ठ उत्तर भारत – को ही भारत जैसे विशाल विविधतामूलक व परिवर्तनशील उपमहाद्वीप की संस्कृति मान लिया जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 पर हावी है।

2.3 नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क, 2023 (NCF, 2023): विज्ञान शिक्षण में वैज्ञानिक मानस-विरोधी विचारधारा जो संवैधानिक मूल कर्तव्य का भी उल्लंघन करती है डदेखिएः संविधान का खंड 4क, अनुच्छेद 51क(ज).और देश में वैज्ञानिक शोध व प्रगति को कमज़ोर भी करती है। इस मुद्दे पर घ्ध्ऊ, श्र्ल्स्ग् के पूर्व प्रो. राम पुनियानी का हालिया तार्किक विश्लेषण जिसका लिंक निम्नांकित है) –

https://www.navjivanindia.com/opinion/ram-puniyanis-article-such-changes-took-place-in-the-field-of-education-under-modi-regime-which-were-more-based-on-faith-and-less-on-logic

एवं

भारत के 100 वैज्ञानिकों का विज्ञान शिक्षण में गैर-

वैज्ञानिक व रूढ़िवादी सोच पर समीक्षात्मक बयान का निम्नांकित लिंक

https://bnnbreaking.com/politics/over-100-indian-scientists-criticize-governments-anti-science-stance-urge-for-constitutional-values-upholding

3.1 रा.शि.नी. 2020 पर वैश्विक पूंजीवाद द्वारा नियंत्रित शिक्षा व्यवस्था के अंधाधुंध डिजिटलीकरण का भूत सवार

कोरोना महामारी के बीच रा.शि.नी. 2020 को केंद्रीय मंत्रीमंडल की स्वीकृति 29 जुलाई 2020 को मिली लेकिन वह तो महज़ औपचारिक खानापूर्ति साबित हुई। रा.शि.नी. 2020 के मसौदे का निर्णायक रूप तो माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने स्वयं पहले ही तय कर दिया था जिसकी तार्किक समीक्षा नीचे पेश की जा रही है।

अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस (1 मई 2020) पर प्रधानमंत्री ने 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020' की समीक्षा की। तब तक पिछले पांच सालों में इस नीति के पांच प्रारूप या मसौदे पेश किए जा चुके थे। फिर इसकी समीक्षा की ज़रूरत क्यों पड़ी? इस सवाल की पड़ताल नीचे की जा रही है।

प्रधानमंत्री ने तीन-सूत्री एजेंडे का एलान किया कि भारत की शिक्षा को,

(क) वैश्विक स्तर पर सबसे ऊंचे मानकों (Standard) के बराबर पहुंचाना है;

(ख) इसके लिए शैक्षिक क्षेत्र में आधुनिकतम तकनीक, यानी सूचना-संप्रेषण (Information-Communication) तकनीक, का इस्तेमाल करना होगा ताकि ऑनलाईन शिक्षा के ज़रिए शिक्षण के परिणाम बेहतर हो जाएं; और

(ग) सभी के लिए उच्च गुणवत्ता सुनिश्चित करते हुए एक 'जीवंत ज्ञान-समाज' बनेगा जिसके आधार पर भारत को 'वैश्विक ज्ञान की महा-शक्ति (Global Knowledge Superpower) में तब्दील किया जा सकेगा।

'ड्रॉप-आऊट' (Drop-out) बनाम 'पुश-आऊट' (Push-Out) की जन-विरोधी राजनीति

यहां एक बुनियादी सरोकार दर्ज करे बगैर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। आज भी बहुजनों (यानी दलितों-आदिवासियों-ओबीसी या पिछड़ा वर्ग, धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यकों, ट्रांस जेंडरों, एवं घुमंतु-विमुक्त जातियों) के दो-तिहाई बच्चे-बच्चियां 10वीं कक्षा और 90 फ़ीसद से ज़्यादा 12वीं कक्षा के पहले ही सरकारी स्कूलों की बदहाली व गुलामगिरी पर टिके पूंजीवादी व मनुवादी शिक्षाशास्त्र (पैडैगॉजी) के माहौल के चलते शिक्षा से जबरन बेदखल ('पुश-आऊट') कर दिए जाते हैं, न कि वे अपनी मर्जी से तथाकथित ड्रॉप-आऊट होते हैं। बहरहाल, इनको न उच्च शिक्षा में दाखिला मिलता है और ना ही सामाजिक न्याय का कोई फ़ायदा। देश के 85 फ़ीसद नागरिक बहुजन हैं। मूलतः बहुजन-आधारित असंगठित क्षेत्र, देश के उत्पादक वर्ग का 93ऱ् है। अगर प्रधानमंत्री एक मई को मज़दूरों के बच्चों की महा-बेदखली करनेवाली भारत की शिक्षा व्यवस्था को आमूलचूल बदलने का संकल्प लेते या उसका जनवादी देशप्रेमी रास्ता दिखाते तो संविधान के आधे-अधूरे रह गए एजेंडे को 70 साल बाद भी पूरा करने की उम्मीद बनती! लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में यह संकल्प तो दूर, इसकी छवि तक कहीं नहीं दिखती है।

आइए, माननीय प्रधानमंत्री के उपरोक्त तीन-सूत्री एजेंडे पर विधिवत गौर करें। पहले, भारत की शिक्षा को वैश्विक स्तर पर सबसे ऊंचे मानकों के बराबर पहुंचाने के मायनों को समझ लिया जाए। हम अक्सर सुनते रहते हैं कि भारत का एक भी शैक्षिक संस्थान दुनिया के सबसे 'टॉप 100' में नहीं है। आखिरकार, ये ऊंचे मानक व रैंकिंग कौन तय करता है? दरअसल, उच्च व पेशेवर शिक्षा के मानक व रैंकिंग तय करने का काम कोई अकादमिक संस्थान नहीं करता वरन् दुनिया के ताकतवर न्यूयॉर्क, लंदन, बीजिंग व टोक्यो स्टॉक एक्सचेंजों (शेयर बाज़ार) में सक्रिय मार्केटिंग एजेंसियां करती हैं। यानी रैंकिंग भी बाकी धंधों की तरह ही बेरोकटोक मुनाफ़ाखोरी का एक और धंधा है। उच्च शिक्षा संस्थानों की रैंकिंग के वैश्विक पूंजी द्वारा तय कुछ मानदंड देखिए – (क) संस्थान से निकलने वाले कितने फ़ीसद विद्यार्थी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी पाते हैं? (ख) कितने फ़ीसद विद्यार्थी व शिक्षक विदेशी हैं? (ग) कितने फ़ीसद विद्यार्थियों ने पढ़ने के लिए बाज़ार से कर्ज़ लिया है, आदि? इस 'टॉप 100' क्लब में तुरत-फुरत शामिल होने के इरादे से सन् 2016-17 में भारत सरकार ने 'इंस्टीट्यूट ऑफ़ एमिनेंस' (Institutes of Eminence) का अजीबोगरीब एजेंडा लागू किया था जिसमें लगभग इसी तरह की विभिन्न शर्तें शामिल थीं। विडंबना है कि इनमें से एक भी शर्त संविधान के खाके में फ़िट नहीं होती थी, हालांकि संविधान का उल्लंघन ज़रूर करती थीं। यहां तक कि इन संस्थानों में बहुजनों के लिए आरक्षण का भी कोई प्रावधान नहीं रखा गया और ना ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में!

अगर वैश्विक पूंजीवादी बाज़ार-हित में बने उपरोक्त मानदंडों के आधार पर भारत के किसी भी संस्थान को 'टॉप 100' में जगह नहीं मिलती तो जरा दिल से सोचिए कि हमें

शर्म आनी चाहिए या फ़क्र से सिर ऊंचा हो जाना चाहिए? यह तय है कि भारत का वह संस्थान जो समाज के नव-निर्माण व देश को संवैधानिक खाके के मुताबिक ढालने के लिए युवा नागरिकों को तैयार करेगा, उसे 'टॉप 100' में कतई जगह कभी भी नहीं मिल नहीं सकती है, ना ही मिलनी भी चाहिए चूंकि ऐसी जगह के लिए हमें आज़ादी की लड़ाई से अंकुरित परिवर्तनकामी मूल्यों पर आधारित भारत के संविधान की अंतरात्मा के साथ शर्मनाक समझौता करना पड़ेगा। तो फिर माननीय प्रधान मंत्री द्वारा पेश पहले सूत्र की संवैधानिक वैधता और राष्ट्र हित की कसौटी पर ही गंभीर सवाल उठता है।

अब, दूसरे सूत्र पर नज़र डालिए। इसके मुताबिक शैक्षिक क्षेत्र में आधुनिकतम तकनीक का इस्तेमाल करके शिक्षण के परिणाम बेहतर हो जाएंगे, ऐसा माननीय प्रधानमंत्री का कहना है। इस निष्कर्ष का क्या कोई वैज्ञानिक आधार है या यह महज़ वैश्विक पूंजी की बेड़ियों में बंधी चुनींदा एड-टेक (यानी लूट-मार) कॉरपोरेट कंपनियों की एक भटकाऊ मान्यता है या यह सिर्फ़ एक और जुमला है जिसने हमें मंत्र-मुग्ध कर रखा है?

ज़ाहिर है कि शिक्षण के परिणाम बेहतर होने की बात सभी विद्यार्थियों के लिए होनी चाहिए, चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति, नस्ल, धर्म, लिंग व भाषा के हों, वे विकलांग हों या उनका जन्म स्थल नागालैंड, मणिपुर, मेघालय या मीज़ोरम हो, झारखंड व छत्तीसगढ़ के आदिवासी टोले हों या मुबई, दिल्ली, चेन्नई या बंगलूरु जैसे महानगरों की झोपड़पट्टियां हों। बहुजनों की बेदखली के उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट होना चाहिए कि देश की शिक्षा का निर्णायक मुद्दा सूचना-संप्रेषण की आधुनिकतम तकनीक कतई नहीं है वरन् पूरी शिक्षा व्यवस्था की नींव में 'केजी से पीजी' तक आज़ादी के पहले और बाद भी आज तक गहरी जड़ें जमाए हुए जातिगत, पितृसत्तात्मक, उच्च वर्ग-उच्च वर्ण व धर्म-आधारित गैर-बराबरी व भेदभाव है। तो फिर आधुनिकतम तकनीक के इस्तेमाल से शिक्षण के परिणाम बेहतर होने के क्या मायने हैं – मध्यम वर्ग या कुलीन तबकों के केवल वे 15-20 फ़ीसद बच्चे जो सीबीएसई के अमीर निजी स्कूलों की 12वीं कक्षा पार करके उच्च शिक्षा में जा पाते हैं या वे 85-90 फ़ीसद बच्चे (अधिकांश बहुजन) जो 10वीं या 12वीं कक्षा के पहले ही स्कूली व्यवस्था की बदहाली के चलते और गुलामगिरी पर टिके पूंजीवादी शिक्षाशास्त्र (पैडैगॉजी) की वजह से स्कूल से बेदखल (यानी 'पुश-आऊट') कर दिए जाते हैं? यह सवाल डिजिटिलीकरण की तकनीकी परिभाषा का नहीं वरन् भारत के संवैधानिक मूल्यों व सिद्धांतों, खासकर संविधान के खंड तीन (मौलिक अधिकार) व चार (नीतिनिर्देशक सिद्धांत) और समतामूलक खुशहाल समाज से प्रेरित इंसानियत का है!

आगे बढ़ने के पहले एक प्रसंग को दर्ज करके देखिए कि क्या हमें डिजिटलीकरण के भूत से मुक्ति मिल सकती है और क्यों मिलनी चाहिए। कोरोना काल में दुनिया भर में अमीर पश्चमी मुल्कों को भी मजबूरी में ऑनलाईन शिक्षा पर निर्भर होना पड़ा था। उस दौर में अमरीका के सरकारी स्कूली शिक्षकों के सबसे बड़े एक संगठन ने स्कूलों में ऑनलाईन शिक्षा के अनुभवों का सर्वेक्षण करवाया और उसकी रपट इंटरनेट पर डाल दी। उस रपट ने ऑनलाईन शिक्षा के सभी शैक्षिक व सामाजिक आयामों की पड़ताल करके उसे सिरे से खारिज कर दिया। उस रपट में दर्ज अमरीका के टैक्सास (Texas) नामक राज्य के एक प्रायमरी स्कूल की शिक्षिका का बयान आंखे खोलने व झकझोरने वाला है।

उन्होंने कहा, 'किसी भी लालच या हुक्म की वजह से मैं ऑनलाईन शिक्षा को कतई स्वीकार नहीं कर सकती। इसको मैं पूरी तरह खारिज करती हूं चूंकि जब मैं स्पैनिश भाषा पढ़ाती हूं तो बच्चों की आंखों में लगातार झांकती रहती हूं। उनकी आंखों में झांकने भर से ही मुझे पता चल जाता है कि मेरी बात बच्चों को समझ आई या नहीं जो ऑनलाईन शिक्षा में मुमकिन नहीं हो सकता। जब मेरी बात बच्चों को समझ में नहीं आती तो मैं रुककर नए सिरे और नए ढंग से फिर समझाती हूं जब तक कि उनकी आंखों से मुझे सकारात्मक संकेत नहीं मिल जाता है।'

काश, रा.शि.नी. 2020 के भारत में ऑनलाईन शिक्षा के झंडाबरदार उपरोक्त अमरीकी शिक्षक संगठन व शिक्षिका की भावना को आत्मसात करके भारत के करोड़ो बच्चों को वैश्विक पूंजी के शिकंजे में बंधी हुई ताकतवर एड-टेक (यानी लूट-मार) कंपनियों की गुलामगिरी से मुक्त करने के इरादे से हमारे संविधानिक खाके के मुताबित भारत के अवाम के सामने शिक्षा का एक वैकल्पिक आख्यान (नेरेटिव) व सपना प्रस्तुत करें, इसकी इंतज़ार रहेगी।

भारत की राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे रिपोर्ट, National Sample Survey (2017-18) के मुताबिक पूरी आबादी में महज़ 8इ ऐसे परिवार (5 से 24 साल तक की उम्र के सदस्यों वाले) जिनके पास कम्प्यूटर व इंटरनेट कनेक्शन दोनों हैं। इंटरनेट की पहुंच ग्रामीण क्षेत्र में केवल 15% परिवारों तक सीमित है और शहरी इलाकों में 42% परिवारों तक। देश के सबसे गरीब 20% परिवारों में कम्प्यूटर केवल 2.7% के पास है और इंटरनेट सुविधा 8.9% के पास। अनुसूचित जातियों के ऐसे परिवार, जिनका कम-से-कम एक सदस्य उच्च शिक्षा पा रहा हो,

उनमें से 31इ के पास कोई डिजिटल यंत्र (कम्प्यूटर, लैपटॉप या स्मार्टफ़ोन) है; अनुसूचित जनजातियों में यही आंकड़ा 35%, ओबीसी में 41% और उच्च जातियों में 52% है।

उपरोक्त आंकड़ों के मायने हैं कि भारतीय समाज में अंतर्निहित वर्ग-आधारित, जाति-आधारित व जेंडर-आधारित गैर-बराबरी और सामाजिक न्याय की कमी से तथाकथित 'डिजिटल इंडिया' और ऑनलाईन शिक्षा कतई मुक्त नहीं हैं। कल्पना कीजिए कि इन सब ऐतिहासिक विरोधाभासों के बावजूद ऐसा चमत्कार हो जाए कि सभी बच्चों व युवाओं को डिजिटल यंत्र व इंटरनेट आदि की सुविधाएं मिल जाए, बिजली हमेशा मिले और डाटा डाऊनलोड करने की कीमत की भरपाई सरकार कर दे तो क्या हम ऑनलाईन शिक्षा स्वीकार लेंगे? तो क्या ऑनलाईन शिक्षा स्वतः वैश्विक पूंजी की गुलामगिरी व लूट-मार से मुक्त होकर जनहित व देशहित में बदल कर इंसानियत का पाठ पढ़ानेवाली शिक्षा बन जाएगी?

दरअसल, मानवीय संपर्क, संवाद व संवेदना, कल्पनाशीलता व भावनाओं के बगैर होनेवाली ऑनलाईन शिक्षा के बारे में भीर चिंताजनक शिक्षाशास्त्रीय सरोकार हैं। शिक्षक-विद्यार्थी के बीच और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आए विद्यार्थियों में परस्पर जो अंतःक्रिया होती है और उससे चेतन-अर्द्धचेतन में चेतना-आधारित परिवर्तनकामी ज्ञान का जो अंकुर फूटता है, उसकी जगह क्या यंत्रवत तकनीक-आधारित शिक्षण ले सकता है? माननीय प्रधानमंत्री ने 1 मई, 2020 को इसी संदर्भ में सूचना-संप्रेषण तकनीक को समृद्ध करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) का भी ज़िक्र किया – यानी एक तो करेला, वह भी नीम चढ़ा।

बेशक, अंतहीन तकनीक की बुनियाद पर खड़ी ऑनलाईन शिक्षा 'प्ले स्कूल से लेकर पेशेवर संस्थानों' को देश के विशालतम लेकिन खतरनाक व युवाओं द्वारा आत्महत्या से भरपूर धंधे यानी कोचिंग में बदलने का एजेंडा है यानी कुल मिलाकर, गैर-बराबरी व सामाजिक अन्याय के साथ-साथ युवाओं से रोज़गार छीनकर बेरोज़गारी को बढ़ाने व इंसान को रोबोट बनाने का भी! इसीलिए ऑनलाईन शिक्षा का तकाज़ा है कि पूरी दुनिया (या भारत) की समृद्ध भू-सांस्कृतिक विविधता को दरकिनार करके ज्ञान का एकरूपीकरण (होमोजनाइज़ेशन, Homogenisation) किया जाए ताकि वैश्विक पूंजी की न्यूनतम निवेश में दुनिया भर के विशालतम बाज़ार पर पकड़ हो सके और मुनाफ़खोरी की रफ़्तार में दिन दूनी व रात चौगुनी वृद्धि हो पाए। कुल मिलाकर, ज्ञान वही मान्य होगा जिसके पीछे दुनिया की सबसे बड़ी पूंजी का टेका होगा!

3.1.1 अब गांधी जी से पूछिए:

अगर महात्मा गांधी के सामने ऑनलाईन शिक्षा का सवाल आता तो वे क्या कहते? उम्मीद है कि आपने उनका ऐतिहासिक हिंद स्वराज (1909) ज़रूर पढ़ा होगा तो इसका जवाब तुरंत मिल जाएगा। वे तीन सवाल उठाते। पहला, क्या यह शिक्षा इंसानी मूल्यों व इंसानियत को पुख़्ता करेगी? दूसरा, क्या यह शिक्षा, शोषणकारी साम्राज्यवादी पूंजीवाद को कमज़ोर करेगी (जिसके चलते कोरोना-सार्स-इबोला जैसे खौफ़नाक वायरस भी पैदा हुए हैं)? तीसरा, क्या यह मेहनतकश अवाम यानी भारत के कुल कारीगरों व मजदूरों में से 93% को, जो असंगठित क्षेत्र के हैं, शोषण से मुक्ति की राह दिखाएगी? अगर इन तीनों सवालों का जवाब 'नहीं' में है तो वे ऑनलाईन शिक्षा व शिक्षा के डिजिटलीकरण को रोकने के लिए 'साबरमती आश्रम, अहमदाबाद से दांडी' तक पैदल चलने वाले विश्व-विख्यात 'नमक सत्याग्रह' की शैली में देश की सबसे बड़ी एड-टेक (लूट-मार) कंपनी के मुख्यालय तक पैदल चलकर सत्याग्रह करते ताकि 'नमक सत्याग्रह' की तर्ज़ पर ब्रिटिश सरकार की तरह रा.शि.नी. 2020 के पीछे खड़ी भारत सरकार भी उनके और देश के बहुजनों के सामने घुटने टेक देती!

3.2 रा.शि.नी. 2020 में ऑनलाईन शिक्षा की निर्णायक भूमिका वाला प्रधान मंत्री का एलान सुनकर वैश्विक पूंजी की टपकती लार

गौरतलब है कि ऑनलाईन शिक्षा का जन्म व पोषण, पूंजीवाद के गढ़ों, यानी न्यूयॉर्क, लंदन, बीजिंग व टोक्यो स्टॉक एक्सचेंजों, में हुआ है। आखिरकार, कोरोना लॉकडाऊन के दौरान एजुकेशन (एड)-टेक (लूट-मार) कंपनियों की संख्या में इतनी तेज़ी से इजाफ़ा क्यों हुआ? प्रधानमंत्री ने 1 मई 2020 को 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020' की समीक्षा करने के बाद एलान किया था कि ऑनलाईन शिक्षा की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निर्णायक भूमिका रहेगी।

? प्रधानमंत्री की इस घोषणा के 2-3 हफ़्तों के अंदर ही गूगल कंपनी के सीईओ ने भारत में मुनाफ़ाखोरी के खुलते हुए नए शैक्षिक बाज़ार की उम्मीद में मुकेश अंबानी की रिलायंस कंपनी में चंदेक बिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश कर दिया।

? एक अंतर्राष्ट्रीय मार्केटिंग एजेंसी ने तुरत-फुरत घोषित किया कि भारत में अगले 4 सालों में ऑनलाईन शिक्षा के बाज़ार का आकार 15 बिलियन अमरीकी डॉलर (लगभग 1 लाख 5 हज़ार करोड़ रुपए) का हो जाएगा।

? कोविड-19 की महामारी में भी इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपनी लूट का रास्ता खोज लिया, इंसानियत और मानवीय चेतना को कुंद करके।

? उसी दौर में यूजीसी (UGC) के हिटलरी आदेश पर गौर कीजिए कि सभी कॉलेजों व विश्वविद्यालयों को हर हाल अंडर-ग्रेजुएट व पोस्ट-ग्रेजुएट की अंतिम परीक्षा ऑनलाईन करवानी ही होगी। उसके ठीक पहले यूजीसी सभी राज्य व यू.टी. सरकारों को छूट की घोषणा कर चुका था कि वे अपने-अपने राज्यों के हालात के मद्देनज़र परीक्षा लेने या न लेने और कैसे लेनी है, इसका फ़ैसला खुद करें। कोई अचरज नहीं होगा कि इस सही फ़ैसले को बदलने की जड़ में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी की मुनाफ़ाखोरी का दबाव काम कर रहा है, न कि हमारे विद्यार्थियों का या देश का हित।

यह हमें तय करना है कि शिक्षा के इस अंधाधुंध डिजिटलीकरण से असली फ़ायदा देश के बच्चों व युवाओं को होगा या फिर वैश्विक पूंजी व स्टॉक एक्सचेंज द्वारा नियंत्रित विदेशी एड-टेक (लूट-मार) कॉरपोरेट घरानों को?

इसी संदर्भ में उपरोक्त सवाल से भी कई गुना ज़्यादा गंभीर सवाल है कि माननीय प्रधान मंत्री जी ने अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस (1 मई, 2020) को देश के सामने शिक्षा का एजेंडा पेश किया था या वैश्विक पूंजी के हाथों में भारत का और देश के करोड़ों युवाओं का भविष्य सौंपने का? क्या यही 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत' की सटीक परिभाषा है या भारत का अवाम किसी खतरनाक गलतफ़हमी का शिकार है?

3.3 रा.शि.नी. 2020 में 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत' के जुमलों के मायने

इस पृष्ठभूमि में माननीय प्रधानमंत्री के उपरोक्त तीसरे मुद्दे की भी पड़ताल कर लीजिए। उनके मुताबिक ऑनलाईन शिक्षा से एक 'जीवंत ज्ञान-समाज' (Vibrant Knowledge Society) का निर्माण होगा जिसके सहारे भारत को 'वैश्विक ज्ञान की महा-शक्ति' (Global Knowledge Superpower) में तब्दील किया जा सकेगा। जो ऑनलाईन शिक्षा न तो इंसानियत को पुख्ता करती है, ना ही साम्राज्यवादी पूंजीवादी शोषण व लूट से और ना ही धार्मिक कट्टरवाद और जातिगत व पितृसत्तात्मक उत्पीड़न व भेदभाव से मुक्ति की राह दिखाती है, वह किस तरह के 'जीवंत ज्ञान-समाज' का निर्माण करेगी और उसकी तकनीक से पैदा 'वैश्विक ज्ञान' देश को किस प्रकार की 'महा-शक्ति' या किस प्रकार का 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत' बनाएगा या ये भी लोकप्रिय नए जुमले बन जाएंगे?

3.4 रा.शि.नी. 2020 में भारत के बच्चों-बच्चियों का बढ़ता हुआ कुपोषण और शिक्षा के भविष्य को चुनौती

रा.शि.नी., 2020 के दौरान बच्चों में बढ़ते हुए कुपोषण और भेदभाव के चलते कैसा 'विकसित भारत' और भारत को दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था या '5 ट्रिलियन (खरब) डॉलर' की अर्थव्यवस्था बनाने का कैसा सपना?

इसी सवाल के संदर्भ में प्राथमिकता बतौर हम पहले निम्नांकित एक और चुनौती का सामना कर लें: शिक्षा व्यवस्था में बढ़ते हुए कुपोषण की वजह से तथाकथित 'विकसित भारत' और भारत को दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी या '5 ट्रिलियन (खरब) डॉलर' की अर्थव्यवस्था बनाने के सपने पर मंडराता ज्ञान अर्जन का हालिया संकट।

https://planet.outlookindia.com/news/india-ranks-111th-on-global-hunger-index-2023-news-416099

वैश्विक भूख सूचकांक, 2023 के मुताबिक 125 मुल्कों में भारत 111वें पायदान पर है जबकि एक साल पहले सन् 2022 में भारत 121 मुल्कों में 107वें पायदान पर था यानी हम एक वर्ष में बजाए बेहतर होने के 4 पायदान नीचे खिसक गए।

वैश्विक भूख सूचकांक, 2023 के मुताबिक एक और चेतावनी: हमारे चार पड़ोसी मुल्क हमसे बेहतर स्थिति में हैं यथा

श्री लंका 60वें पायदान पर; नेपाल 69वें पायदान पर; बांग्ला देश 81वें पायदान पर; और पाकिस्तान 102 वें पायदान पर!

गौरतलब यह भी रहे कि पोषण का सीधा रिश्ता शिक्षा से है। अगर पोषण का स्तर गिरेगा तो तय है कि इसका नकारात्मक असर बच्चों की ज्ञान हासिल करने की क्षमता पर भी पड़ेगा। क्या तथाकथित 'विकसित भारत' और '5 ट्रिलियन डॉलर' की अर्थव्यवस्था बनने का मापदंड भारत के बच्चों में बढ़ता हुआ कुपोषण होगा?

4.1 रा.शि.नी., 2020 में शिक्षा से बहुजनों के बच्चों यानी (देश की कुल हमउम्र आबादी के 85% बच्चों) को बेदखल ('पुश-आऊट') करने के लिए भेदभाव के नए प्रावधान:

क) रा.शि.नी., 2020 में स्कूल कॉम्पलेक्स (शाला संकुल), बहुपरती (मल्टी-लेयर्ड) स्कूल व्यवस्था और स्कूल बंदी की दुराग्रही योजना

रा.शि.नी., 2020 ने प्रस्तावित किया है कि खासकर ग्रामीण क्षेत्र में जिला व तालुक/तहसील मुख्यालयों या कस्बों में सर्व-सुविधायुक्त स्कूल कॉम्पलेक्स (यानी स्कूलों

का संकुल) खोले जाएंगे जहां हरेक विषय के लिए ऊंची डिग्रीधारी शिक्षकों के अलावा संगीत, कला, नाटक, कम्पयूटर, योग व खेल-कूद आदि के लिए भी उच्च कोटि के शिक्षकों का चयन किया जाएगा। इसके जाहिर मायने हैं कि शेष ग्रामीण क्षेत्र में ऐसे सरकारी स्कूल नहीं होंगे।

इन स्कूल कॉम्पलेक्सों के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्ट कोटि के निजी आवासीय स्कूलों की तर्ज पर पीएम राईज़ स्कूल एवं सीएम राईज़ स्कूलों के साथ प्रायवेट इंग्लिश माध्यम स्कूलों के लिए विशेष प्रावधान रहेंगे। जाहिर है कि ऐसी स्कूल व्यवस्था के ज़रिए रा.शि.नी., 2020 भेदभाव की बुनियाद पर वर्ग-वर्ण व पितृसत्ता के मुताबिक बहुपरती (मल्टी-लेयर्ड) स्कूल व्यवस्था का एजेंडा थोपने का दुःस्वप्न दिखा रही है, न कि कोठारी शिक्षा आयोग, 1966 द्वारा प्रस्तावित क्रांतिकारी 'समान स्कूल व्यवस्था' (कॉमन स्कूल सिस्टम) का जिसको क्रमशः 1968, 1986 व 1986 (1992 में संशोधित) तीन नीतियों में संसद द्वारा बहुमत से स्वीकारा गया लेकिन लागू नहीं किया गया। इस मुद्दे की गहराई में जाने पर भाजपा की रा.शि.नी., 2020 और पिछली कांग्रेस सरकारों की उपरोक्त तीन नीतियों के बीच इरादों का एक महत्वपूर्ण फ़र्क दिखता है।

बहरहाल, कांग्रेस सरकार की तीन नीतियों क्रमशः 1968, 1986 व 1986 (1992 में संशोधित) ने 'समान स्कूल व्यवस्था' (कॉमन स्कूल सिस्टम) को स्वीकारने के अलावा निम्नांकित तीन और फैसले किए और उन्हें पूरे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित भी किया यथा,

1. प्राथमिक/प्रायमरी स्कूल (कक्षा 1 से 5) की उम्र के हरेक बच्चे-बच्ची के घर से 1 (एक) कि.मी. के अंदर प्राथमिक/प्रायमरी स्कूल अवश्य उपलब्ध किया जाएगा।

2. मिडिल स्कूल (कक्षा 6 से 8) की उम्र के हरेक बच्चे-बच्ची के घर से 3 (तीन) कि.मी. के अंदर एक मिडिल स्कूल अवश्य उपलब्ध किया जाएगा।

3. माध्यमिक स्कूल (कक्षा 9 से 10) व उच्च माध्यमिक स्कूल (कक्षा 11 से 12) की उम्र के हरेक बच्चे-बच्ची के घर से 5 (पांच) कि.मी. के अंदर एक माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्कूल अवश्य उपलब्ध किया जाएगा।

गौरतलब है कि भाजपा सरकार की रा.शि.नी., 2020 में पिछली कांग्रेस सरकारों के उपरोक्त तीनों फ़ैसले न केवल सिरे से गायब हैं बल्कि सर्वसुविधायुक्त स्कूल कॉम्पलेक्सों, पीएम राईज़ एवं सीएम राईज़ स्कूलों की आड़ में एक ओर भेदभाव-आधारित बहुपरती (मल्टी-लेयर्ड) स्कूल व्यवस्था को लागू करने के साथ-साथ दूर-दराज के ग्रामीण प्रायमरी (कक्षा 1 से 5) व ग्रामीण मिडिल स्कूलों (कक्षा 6 से 8) को बंद करने के इरादे से स्कूल बंदी की दुराग्रही नीति भी लागू करने का एलान किया गया है। उपरोक्त स्कूल बंदी की दुराग्रही नीति के साथ वहां पढ़ रहे विद्यार्थियों को उपरोक्त स्कूल कॉम्पलेक्स (कक्षा 6 से 8 तक और बाद में कक्षा 9 से 12 तक) में दाखिला देने का प्रावधान रखा जाएगा, ऐसे बायदे की उम्मीद जगाई है। दरअसल यह बायदा नहीं लेकिन लॉलीपॉप है चूंकि रा.शि.नी., 2020 यह कतई नहीं बताती कि जिला व तालुक/तहसील मुख्यालयों या कस्बों में खोले गए स्कूल कॉम्पलेक्सों में दाखिला मिलने के बावजूद दूर-दराज के गांवों में बसे प्राथमिक स्कूल (कक्षा 1 से 5) व मिडिल स्कूल (कक्षा 6 से 8) की कच्ची उम्र के बच्चे-बच्चियां ऊबड़-खाबड़ रास्तों या पगडंडियों पर रोज़ सुबह चलकर उपरोक्त तथाकथित हाई क्लास स्कूलों की दहलीज तक कैसे पहुंचेंगे और बीच में उनकी सुरक्षा के क्या इंतज़ाम होंगे जिसकी ज़रूरत देर शाम को घर लौटते वक्त कई गुना बढ़ जाएगी, खासकर लड़कियों के बलात्कार का जोखिम कोई भी माता-पिता झेलने को तैयार नहीं होंगे। पिछले कुछ सालों में जिस गति से लड़कियों के साथ बलात्कार (महज़ 2-3 साल की बच्चियों का भी) के गंभीर मामले बढ़ते जा रहे हैं उन पर रा.शि.नी., 2020 की चुप्पी समझ के परे है। अगर यह हाल ग्रामीण मैदानी इलाकों के हैं तो कल्पना कीजिए कि आदिवासी इलाकों में घने जंगलों से गुजरने वाले दुर्गम पहाड़ी रास्तों पर (जहां जंगली जानवर भी रहते हैं) रोज़ सुबह-शाम अपने बच्चों, खासकर बच्चियों को, दूर-दराज के उपरोक्त तथाकथित हाई क्लास स्कूलों में भेजने का जोखिम कितने माता-पिता उठाने को तैयार होंगे और आखिर क्यों?

(ख) महाराष्ट्र में रा.शि.नी., 2020 के तहत उपरोक्त स्कूल बंदी की दुराग्रही नीति लागू करने के एलान के खिलाफ़ जन-आक्रोश व जनांदोलनः

सन् 2022-23 में महाराष्ट्र की डबल-इंजन सरकार ने अचानक एलान कर दिया कि रा.शि.नी., 2020 के तहत ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 15, 000 प्राथमिक स्कूल बंद कर दिए जाएंगे। इसके फलस्वरूप 1, 85, 000 बच्चे-बच्चियां न केवल शिक्षा से वंचित कर दिए गए वरन् उनसे मध्याह्न भोजन के ज़रिए मिलने वाला सीमित लेकिन नियमित पोषण भी छीन लिया जाएगा। इसके अलावा लगभग 30 हज़ार शिक्षक व शिक्षिकाएं अब बेरोज़गार होने का इंतज़ार कर रहे हैं।

(ग) ग्रामीण क्षेत्रों के संवैधानिक निकायों यथा ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों, आदिवासी परिषदों और शिक्षा

अधिकार कानून, 2009 के तहत गठित स्कूल प्रबंधन समितियों (जिसके सदस्य मुख्यतः पालक होते हैं) से सलाह-मशविरा करने से इंकार

महाराष्ट्र की डबल-इंजन सरकार का यह संविधान-विरोधी व जन-विरोधी रवैया उपरोक्त दुराग्रही एलान से कहीं अधिक गंभीर मुद्दा है कि राज्य सरकार ने खुद कतई ज़रूरत नहीं समझी कि संवैधानिक ग्रामीण निकायों से स्कूल-बंदी के पहले सलाह-मशविरा किया जाए। यह हैरतअंगेज मुद्दा है कि संविधान में ऐसे मामले में ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों व आदिवासी परिषदों और शिक्षा अधिकार कानून, 2009 के तहत गठित स्कूल प्रबंधन समितियों को संवैधानिक/कानूनी अधिकार दिए गए हैं यानी इनके गांवो में शिक्षा-संबंधी कोई भी फैसला इन लोकतांत्रिक निकायों से सलाह-मशविरे बगैर करना संविधान/कानून का उल्लंघन होगा। लेकिन जब रा.शि.नी., 2020 के तहत केंद्रीय सरकार ने राज्य/यू.टी. सरकारों के शिक्षा-संबंधी तमाम संवैधानिक अधिकार छीन लिए तो फिर राज्य सरकार ने भी उसी से सीखकर खुद को डबल-इंजन सरकार मानते हुए केंद्रीय सरकार की तर्ज़ पर ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों, आदिवासी परिषदों आदि से सलाह-मशविरे की कोई ज़रूरत नहीं समझी।

लेकिन महाराष्ट्र राज्य सरकार के स्कूल बंदी के एलान के खिलाफ़ जन आंदोलन खड़ा हो रहा है। इसके तहत महाराष्ट्र के विभिन्न भू-सांस्कृतिक इलाकों में शिक्षकों व पालकों के सम्मेलन हो रहे हैं और उनके संगठन भी बन रहे हैं। यह उल्लेखनीय है कि यह प्रतिरोध ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों व आदिवासी परिषदों द्वारा भी हो रहा है चूंकि उन्होंने भी आज़ादी के बाद पहली बार समझा है कि स्कूली शिक्षा का मुद्दा संविधान/कानून के मुताबिक उनके अधिकार के दायरे में है और उन्हें राज्य सरकार के उक्त दुराग्रही एलान को रोकने का संवैधानिक/कानूनी अधिकार है, साथ में उनका कर्तव्य भी।

4.2 रा.शि.नी., 2020 में स्कूली शिक्षा (कक्षा 1 से कक्षा 12 तक) में व्यावसायिक (वोकेशनल) शिक्षाः स्कूलों में वर्ग-वर्ण पर आधारित और पितृसत्तात्मक मनुवादी भेदभाव को व्यावसायिक शिक्षा की आड़ में लागू करने की अनोखी साजिश

रा.शि.नी., 2020 में व्यावसायिक शिक्षा का प्रावधान पूर्व-प्राथमिक स्तर से लेकर 12वीं कक्षा तक रखा गया है। इसके साथ यह भी दावा किया गया है कि व्यावसायिक और अकादमिक धाराओं के बीच कोई दीवार नहीं खड़ी की जाएगी लेकिन गहराई में जाने पर पता चलेगा कि यह महज़ एक जुमला भर है। आखिरकार, यह दावा ऐसी शिक्षा नीति के द्वारा किया जा रहा है जिसने कहीं भी ना जाति का और ना ही पितृसत्ता का जिक्र भी किया गया है जबकि यह दोनों धारणायें भारतीय समाज के मनुवादी ढांचे की बुनियाद हैं। इन दोनों धारणाओं का जिक्र जानबूझकर न करके हकीकत से ध्यान भटकाने के लिए व्यावसायिक शिक्षा का नामकरण कक्षा 6 से 8 तक '10 दिन बगैर बस्ते के मौज-मस्ती' के रहेंगे जिसके दौरान बढ़ई, माली, कुम्हार, कलाकार आदि स्थानीय व्यावसायिक विशेषज्ञों के साथ विद्यार्थी इंटर्न बतौर रहेंगे। इस तरह व्यावसायिक शिक्षा को मौज-मस्ती के कोर्स का लेबल देकर असली अकादमिक शिक्षा से सरकारी स्कूलों के शोषित व निम्न जातियों/वर्गों के विद्यार्थियों की बेदखली का एजेंडा छिपा लिया गया।

रा.शि.नी., 2020 यह भी कहती है कि विद्यार्थियों को इस तरह बढ़ईगिरी, बिजली का काम, धातु का काम, माली, कुम्हार आदि कौशलों का व्यावहारिक अनुभव मिल पाएगा। लेकिन इसका फैसला उस इलाके में कौशलों की ज़रूरत के मद्देनज़र स्थानीय समुदाय करेगा। इस पृष्ठभूमि में यह सवाल उठाना मौजू होगा कि ऐसे कौशलों का अभ्यास समाज में कौन करता है? समाज में ऐसे कौशल जाति-आधारित धंधे हैं जिनका अभ्यास दलित, आदिवासी, पिछड़ेवर्ग और धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यक करते हैं जो मुख्यतः मुसलमान होते हैं। अगर स्थानीय समुदायों को यह हक दिया गया कि खासकर ग्रामीण इलाकों में कि वे तय करें कि वहां किन कौशलों का ज़रूरत है तो ज़ाहिर है कि यह समुदाय वर्चस्वपूर्ण ऊंची जातियों/वर्गों के होंगे जो तय करेंगे कि उत्पीड़ित व शोषित जातियों/वर्गों या उच्च जातियों में से किनको तथाकथित 'मौजमस्ती' के कोर्स में शामिल किया जाए यानी उच्च वर्णों/वर्गों के सोच के मुताबिक ही यह फैसला किया जाएगा। उदाहरणार्थ, अगर कक्षा 8 की किसी लड़की ने धातु के धंधे को सीखने के इरादे से 'कार' की मरम्मत करनेवाली दुकान पर अनुभव पाने की इच्छा जाहिर की यानी 'उस्ताद' का इंटर्न बनकर तो यह नामुमकिन है कि उच्चवर्णीय/वर्गीय व पितृसत्तात्मक समुदाय इसकी कभी-भी इजाज़त देगा।

इससे भी अधिक गंभीर मसला यह है कि रा.शि.नी., 2020 के तहत विकसित की जा रही गैर-बराबरी व भेदभाव की नींव पर खड़ी की गई बहु-परती (मल्टी-लेयर्ड) स्कूल व्यवस्था में अत्याधिक महत्व व्यावसायिक शिक्षा पर देने का शैक्षिक एजेंडे से भटकाने का क्या असर होगा। रा.शि.नी., 2020 में बार-बार व्यावसायिक और अकादमिक कोर्सों को बराबरी का दर्जा देने और विद्यार्थियों को तथाकथित 'चयन' का अधिकार देने के असली मायने हैं कि उनको स्कूली शिक्षा से चतुराईपूर्वक बेदखल किया जाए।

ज़ाहिर है कि सरकारी स्कूलों में पढ़नेवाले उत्पीड़ित व शोषित वर्णों/वर्गों के विद्यार्थियों को उकसाया जाएगा कि वे व्यावसायिक विकल्पों का चयन करें और स्थानीय कारीगरों का इंटर्न बनें। इसके विपरीत निजी स्कूलों में उच्च/वर्णों/वर्गों के विद्यार्थियों को प्रेरित किया जाएगा कि वे अकादमिक कोर्सों पर ध्यान फ़ोकस करें ताकि वे दसवीं और बारहवीं कक्षा की परीक्षाओं में उच्च व पेशेवर (प्रोफ़ेशनल) शिक्षण संस्थानों में उच्च वर्णों/वर्गों के अपने माता/पिता की उम्मीदों को पूरा कर सकें।

यह स्पष्ट है कि सरकारी स्कूलों के विद्यार्थियों को धीरे-धीरे अकादमिक कोर्सों से दूर किया जाएगा ताकि उनके पास जाति-आधारित पारिवारिक धंधों में शामिल होने या बाज़ार में निम्न-दिहाड़ी वाले मजदूर बनने के अलावा कोई और विकल्प न बचे। इस संदर्भ में गौरतलब है कि रा.शि.नी., 2020 में 'चयन' (choice) व 'लोच' (flexibility) जैसे नवउदारवादी विचारों का बार-बार ज़िक्र करके उनको अत्याधिक महत्व दिया गया है। लेकिन दरअसल, ऐसे सभी विचार केवल उन विद्यार्थियों के लिए हैं जो अंग्रेजी माध्यम के कुलीन महंगे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं और जिनका जन्म उच्च वर्ग/वर्ण के परिवारों में हुआ है।

बहरहाल, रा.शि.नी., 2020 में व्यावसायिक शिक्षा को इतना महत्व एक साजिश बतौर ही दिया गया है जिसकी रणनीति कक्षा 3 से ही बेदखली शुरू करने की है ताकि 'कुशल भारत मिशन' के तहत अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी निवेश हेतु सस्ते मजदूर उपलब्ध किए जा सकें। क्या भारत में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी निवेश हेतु सस्ते मजदूर उपलब्ध करना भी 'विकसित भारत' का एजेंडा होगा?

4.2.1 पिछले 75 सालों में लागू क्रमशः तीन शिक्षा नीतियों यथा 1968, 1986 व 1986 (1992 में संशोधित) की तुलना में रा.शि.नी., 2020 द्वारा सभी विद्यार्थियों को, चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति या जेंडर के हों, कक्षा 6 से कक्षा 10 तक चार बुनियादी विषयों में 5 साल की संपूर्ण औपचारिक शिक्षा की गारंटी देने से इंकार।

आज़ादी के बाद 75 सालों में रा.शि.नी., 2020 भारत की पहली शिक्षा नीति होगी जो सभी विद्यार्थियों को, चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति या जेंडर के हों, व्यावसायिक शिक्षा के बहाने स्कूली स्तर पर कक्षा 6 से कक्षा 10 तक की चार बुनियादी विषयों यथा भाषा (साहित्य सहित), गणित, विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान में पांच साल की संपूर्ण औपचारिक शिक्षा देने से इंकार करती है। इस तरह रा.शि.नी., 2020 में बहुजन विद्यार्थियों (देश के 85% विद्यार्थी) को 12वीं की परीक्षा के पहले ही न्यूनतम समतामूलक पांच साल की संपूर्ण औपचारिक शिक्षा से वंचित करने यानी उच्च माध्यमिक शिक्षा से बेदखल करने का संविधान-विरोधी मजबूत एजेंडा है।

4.2.2 रा.शि.नी., 2020 द्वारा स्कूली शिक्षा में भेदभाव बढ़ाने की नायाब चालः कक्षा 6 से 12वीं तक कोर्स के विषयों व उनके मूल्यांकन का दो स्तरों में विभाजन – मानक स्तर (Standard Level) और उच्च स्तर (Higher Level) में चयन का प्रावधान।

जाहिर है कि उत्पीड़ित व शोषित जातियों के बहुजन विद्यार्थियों (देश के 85% विद्यार्थी) को मानसिक व सामाजिक रूप से तैयार किया जाएगा कि वे कोर्स के विषयों व उनकी परीक्षाओं दोनों में मानक स्तर (Standard Level) मात्र ही चुनें, न कि उच्च स्तर (Higher Level)। इस वजह से बहुजन विद्यार्थियों और उच्च जातियों में निम्न आय वाले विद्यार्थियों के लिए उच्च (Higher) व पेशेवर (Professional) शिक्षा के दरवाजे हमेशा के लिए बंद हो जाएंगे चूंकि उन्हें केंद्र-नियंत्रित नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (NTA) की अपेक्षाओं व नियमावली से परिचित होने का उपयुक्त मौका ही नहीं मिलेगा। इस तरह रा.शि.नी., 2020 ने बहुजन विद्यार्थियों और उच्च जातियों में निम्न आय वाले विद्यार्थियों के लिए तय कर दिया कि उनके पास बाल मजदूर बनने या जाति-आधारित पारिवारिक पेशों में शामिल होने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचा है।

रा.शि.नी., 2020 में व्यावसायिक शिक्षा का मुख्य संदेश यह है कि सरकारी स्कूलों में बहुजन बच्चों को 14 साल की उम्र पूरा होने के पहले ही किसी खास व्यवसाय में प्रशिक्षित करके शिक्षा से बेदखल कर दिया जाएगा ताकि वे शासक वर्गों/वर्णों के गुलाम जाति/वर्ग बने रहें। इसके विपरीत अंग्रेजी माध्यम के निजी स्कूलों के विद्यार्थी उच्च व पेशेवर शिक्षा में आगे बढ़ेंगे और भारत में ऊंची आमदनीवाले पदों पर नियुक्त किए जाएंगे या फिर वैश्विक पूंजी की सेवा में ऊंची आमदनी कमानेवाले लेकिन गुलामगिरी के मजदूर बतौर अमरीका की सिलिकॉन वैली (Silicon Valley) या अमरीकी सरकार की नासा (NASA) में पदस्थ होंगे।

4.3 रा.शि.नी., 2020 का बहुजन-विरोधी सारतत्व

गुरु द्रोणाचार्य, आदिवासी युवा 'एकलव्य' को जीविका कमाने के लिए तीर-कमान इस्तेमाल करने में ज़रूर माहिर बना देंगे लेकिन उसे अपने इस कौशल का इस्तेमाल राजकुंवर अर्जुन से प्रतियोगिता करने या राजनीतिक सत्ता

पाने के लिए युद्ध करने की अनुमति कतई नहीं मिलेगी! लेकिन अगर 'एकलव्य' ने गुरु द्रोणाचार्य के द्वारा तय अनुमति की सीमाओं को तोड़ने का संकेत भर दिया तो दक्षिणा बतौर उसके दाएं हाथ का अंगूठा मांग लिया जाएगा!

5.1 रा.शि.नी., 2020 में संविधान की संघीय रचना को सिर पर उल्टा खड़ा करके बहुजन युवाओं (देश के 85%) के खिलाफ़ 'नीट' व 'सीयूईटी' के बहाने खतरनाक साजिश

रा.शि.नी., 2020 में केंद्र द्वारा संविधान की संघीय रचना को दरकिनार करने के बुनियादी मुद्दे पर एक बार फिर अगला अहम सवाल उठाया जा है। अगर आप इस नीति को ध्यान से पढ़ेंगे तो आप हैरान हो जाएंगे कि इस नीति ने संविधान की संघीय रचना को सिरे से खारिज करते हुए संविधान को ही उसके सिर पर उलटा खड़ा कर दिया है। रा.शि.नी., 2020 द्वारा राज्यों व केंद्र-शासित प्रदेशों (यूनियन टेरिटेरियों) के संवैधानिक अधिकारों को छीनने के भरपूर उदाहरण हैं। यहां पर इसके चंदेक उदाहरण देना काफ़ी होगा –

5.1.1 पहली कक्षा से लेकर 12वीं कक्षा तक लाखों स्कूलों में शिक्षकों/शिक्षिकाओं द्वारा पढ़ाने व विद्यार्थियों का आकलन या मूल्यांकन करने पर 100 फ़ीसदी नियंत्रण नेशनल असेसमेंट सेंटर (NAS) के पास रहेगा जो इसे 'परख' (PARAKH) नाम के एक अति-केंद्रित मूल्यांकन खाके की जंजीरों में पूरी स्कूल व्यवस्था व उसके 30 करोड़ विद्यार्थियों को बांधकर उनकी सृजनात्मकता को मटियामेट करेगा। भारत जैसे विविधतामूलक विशाल देश में शिक्षकों/शिक्षिकाओं की बात तो छोड़िए – स्कूली शिक्षण प्रक्रिया में न प्रधान अध्यापक या प्राचार्य की कोई भूमिका बचेगी और ना ही राज्य या यू.टी. स्तर के शिक्षा विभाग या निदेशक की या SCERT (State Council of Educational Research & Training) की – सब फ़िजूल हो जाएंगे या केंद्र की उपरोक्त एजेंसी यानी NAS की गुलाम मौन मशीनें बना दिए जाएंगे।

5.1.2 राष्ट्रीय शोध प्रतिष्ठान (NRF): भारत के सैंकड़ों विश्वविद्यालयों, हज़ारों कॉलेजों और भारत के विभिन्न इलाकों में एएँ के तहत दर्जनों शोध संस्थानों में ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं यथा, प्रौद्योगिकी, गणित, भौतिकी, रसायन, बायोकेमिस्ट्री, मॉलीक्यूलर बायोलॉजी, कंप्यूटर साईंस, कृषि, गणित, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र व मानविकी आदि के विविध क्षेत्रों मे आज़ादी के बाद 75 साल से जो अनुसंधान या शोध हो रहा है उस पर राज्य/यूटी सरकारों की भूमिका को नगण्य करते हुए सारा नियंत्रण दिल्ली-स्थित अति-केंद्रित राष्ट्रीय शोध प्रतिष्ठान (NRF) के हाथ में रहेगा। इस अजीबोगरीब नौकरशाही व तकनीकशाही के चलते शोध की बुनियाद यानी 'स्वप्रेरणा, सृजनात्मकता, कल्पनाशीलता और अपने लक्ष्यों के प्रति उत्साह व समर्पण' सब मटियामेट कर दिया जाएगा। शोध का ऐसा असीमित, गैर-तार्किक व शोध-विरोधी तानाशाही केंद्रीकरण शायद ही किसी मुल्क में हुआ हो।

शोध-संबंधी इस निहायत भ्रामक व भटकाऊ नीति के फलस्वरूप भावी भारत की युवा-शक्ति और ज्ञान-उत्पादन क्षमता पर लंबा ग्रहण लगने की संभावना को नज़रअंदाज़ करना किसी भी देशप्रेमी नागरिक के लिए नामुमकिन होगा। कल्पना कीजिए कि क्या महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइनस्टाईन इस तानाशाही नियंत्रण के माहौल में दुनिया का नज़रिया बदलने वाला अपना ऐतिहासिक स्वप्रेरित अनुसंधान कर पाते? हम भारत के विकास के नज़रिए से उम्मीद करते हैं कि ज्ञान-उत्पादन पर इस हद तक का तानाशाही व नकारात्मक हिटलरी नियंत्रण कभी भी प्रस्तावित 'विकसित भारत' का एजेंडा नहीं बनेगा, ना ही यह राष्ट्र-हित में होगा!

मेडिकल शिक्षा के यूजी कोर्स MBBS और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में दाखिले

के लिए क्रमशः 'नीट' (NEET) व सीयूईटी (CUET) की केंद्रीकृत प्रवेश परीक्षाएं

नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (NTA) के 100 फ़ीसद नियंत्रण में

शिक्षा के संवैधानिक नज़रिए और उच्च व पेशेवर शिक्षा में दाखिले के लिए आज़ादी के बाद से ही उपलब्ध 'समतामूलक धरातल' (Level-Playing Field) पर मनुवादी हमला और साथ में कॉरपोरेटीकरण, बेदखली व वैश्विक पूंजी की गुलामगिरी का एजेंडा

6.1 रा.शि.नी., 2020 के तहत दिल्ली स्थित 'नेशनल टेस्टिंग एजेंसी' (NTA) 'लद्दाख से लेकर लक्षद्वीप, कन्याकुमारी से कश्मीर तक और कच्छ से लेकर कोहिमा तक' हरेक स्तर की सभी प्रतियोगी व प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं का नियोजन, संचालन व नियंत्रण करेगी गोया कि हमारे विविधतापूर्ण देश की सारी बुद्धिमत्ता इस एजेंसी के अलावा कहीं और नहीं है। इसी आधारहीन मान्यता के तहत MBBS में दाखिले के लिए 'नीट' (NEET) परीक्षण भी सभी राज्यों/यू.टी. पर बगैर किसी सलाह-मशविरे के जबरन थोपा जा चुका है। इसका तमिलनाडु की जनता द्वारा सन् 2016 से लगातार जमकर विरोध हुआ है चूंकि इसके चलते एड-टेक (लूट-मार) कोचिंग कंपनियों

द्वारा बेरोकटोक लूट की बुनियाद पर खड़ा कॉरपोरेट धंधा आसमान छूने लगा है और बहुजनों (देश की 85% आबादी) और साथ में ऊंची जातियों के निम्न आय वर्ग के युवाओं के लिए भी डॉक्टर बनने के दरवाजे हमेशा के लिए बंद हो गए हैं।

6.2 रा.शि.नी., 2020 में 'नीट' यानी (NEET i.e National Eligibility-cum-Entrance Test) जिसके मेडिकल शिक्षा और ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था पर हो रहे नकारात्मक परिणामों के मद्देनज़र उसे (National Exit-cum-Enslavement Test) कहना ज़्यादा सटीक होगा। 'नीट' भारत की संवैधानिक संघीय रचना पर हमला है और ठीक इसी तर्ज़ पर रा.शि.नी., 2020 में CUET (Central University Entrance Test) का प्रावधान किया गया है। 'नीट' व 'सीयूईटी' दोनों परीक्षणों का 100 फीसद नियंत्रण दिल्ली स्थित 'नेशनल टेस्टिंग एजेंसी' (NTA) के पास केंद्रीकृत है। रा.शि.नी., 2020 और NTA दोनों का आधारहीन दावा है कि 'नीट' व 'सीयूईटी' को लागू करने से क्रमशः MBBS व केंद्रीय विश्वविद्यालयों में दाखिले के लिए सभी उम्मीदवारों को बगैर किसी भेदभाव के समतामूलक धरातल (Level Playing Field) मिलेगा।

6.3 'नीट': आज़ादी के बाद 75 साल तक मौजूद समतामूलक धरातल (Level Playing Field) के खिलाफ़ मनुवादी साजिश

गौरतलब है कि MBBS के कोर्स में दाखिले के लिए 'नीट' को पूरे देश में सन् 2017-18 में जबरन लागू किया गया था जबकि तमिलनाडु में सन् 2016 से ही युवाओं द्वारा इसका जमकर विरोध हो रहा था। रा.शि.नी., 2020 और NTA दोनों द्वारा दाखिले में सभी उम्मीदवारों को समतामूलक धरातल देने के निराधार दावे की पोल खोलने के लिए समझना ज़रूरी है कि सन् 2017-18 के पहले देश के मेडिकल कॉलेजों के MBBS में दाखिले की प्रक्रिया क्या थी। अधिकांश राज्यों की तरह तमिलनाडु में भी सन् 2017-18 में 'नीट' लागू करने के पहले सरकारी मेडिकल कॉलेजों और निजी मेडिकल क़ालेजों की सरकारी सीटों में दाखिला उच्च माध्यमिक शिक्षा के राज्य बोर्ड द्वारा ली गई 12वीं की परीक्षा में प्राप्त अंकों पर आधारित प्रतिभा सूची (Merit List) के मुताबिक किया जाता था। तमिलनाडु में उच्च माध्यमिक शिक्षा यानी 11वीं-12वीं की पाठ्यचर्या और सिलेबस सभी सरकारी एवं सरकारी–सहायता प्राप्त स्कूलों में एक समान रहा है। इसके साथ-साथ शिक्षण की भाषा सभी विद्यार्थियों के लिए उनकी अपनी-अपनी मातृभाषाएं रही हैं और बोर्ड की परीक्षा भी इसी आधार पर होती हैं।

जाहिर है कि उपरोक्त व्यवस्था के चलते प्रदेश के सभी विद्यार्थियों को – चाहे वे किसी भी धर्म, वर्ग या जाति के हों (ओबीसी, अति पिछड़ा वर्ग, दलित, आदिवासी, घुमंतु या विमुक्त जातियां, भाषाई व धार्मिक अल्प-संख्यक, ट्रांस जेंडर समेत), हरेक श्रेणी के लड़कों व लड़कियों दोनों के लिए – 12वीं की परीक्षा तक MBBS कोर्स में दाखिले के लिए 'समतामूलक धरातल' (Level Playing Field) पहले से ही उपलब्ध है। इसके अलावा तमिलनाडु के सरकारी स्कूलों में शाम की छुट्टी के बाद शिक्षक विद्यार्थियों के सवालों या शकों का व्यक्तिगत स्तर पर निराकरण करते हैं। ऐसा समतामूलक धरातल शहरी और ग्रामीण दोनों तरह के सरकारी स्कूलों में उपल्ब्ध है और दूरदराज के आदिवासी स्कूलों में भी। निजी स्कूलों में भी मध्यम वर्ग और अमीर विद्यार्थियों के बीच भेदभाव करनेवाली कॉरपोरेट शैली की मंहगी कोचिंग व्यवस्था का प्रवधान नहीं है।

लेकिन 'नीट' लागू होने के बाद उपरोक्त समतामूलक धरातल को कोचिंग के ज़रिए तेजी से साजिश बतौर खत्म किया गया ताकि MBBS कोर्स से गरीब – खासकर बहुजनों एवं लड़कियों – को मेडिकल कोर्स से बेदखल किया जा सके। जून 2021 में तमिलनाडु सरकार के द्वारा मद्रास हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति (अवकाश प्राप्त) डॉ. ए. के. राजन की अध्यक्षता में गठित उच्च-स्तरीय समिति की रिपोर्ट ने दर्ज कियाः . . .' 'नीट' की वजह से निजी कोचिंग की उभरती हुई नई संस्कृति बन गई है, न कि सीखने-समझने की संस्कृति। 'नीट' की तैयारी के लिए निजी कोचिंग हेतु विद्यार्थियों को भारी-भरकम फीस देनी पड़ती है जो केवल धनाढ्य लोग ही दे सकते हैं। इस नकारात्मक हालात के चलते कमजोर तबकों यथा सामाजिक रूप से उत्पीड़ित एवं पिछड़े, शैक्षिक व भौगोलिक दोनों नज़रियों से, और जिन्होंने तमिल माध्यम से 12वीं कक्षा तक सरकारी स्कूलों में पढ़ाई की, जिनको 'नीट' के पहले कम-से-कम अभी तक दाखिला तो मिल रहा था चाहे कुछ कम संख्या में ही (पृ.7-8)। '

मद्रास हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति (अवकाश प्राप्त) डॉ. ए. के. राजन की अध्यक्षता में गठित उपरोक्त उच्च-स्तरीय समिति की रिपोर्ट ने आगे दर्ज कियाः '. . . 'नीट' ने मेडिकल शिक्षा पाने की उम्मीद लगाए विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं जनसाख्यिकीय समूहों के विद्यार्थियों के जीवन को इतना तहस-नहस कर दिया और पीछे ढकेल दिया है कि उसका कोई सानी नहीं है (पृ.11-12) . . .यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत में , खासकर मेडिकल शिक्षा में, 'नीट', मेडिकल शिक्षा को दिशा दिखा रही है, न कि

मेडिकल शिक्षा के मुताबिक अपनी दिशा तय कर रही है (पृ.12-13)।'

तमिलनाडु की डीएमके के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार ने सितंबर 2021 में 'नीट' को रोकने और उसका राज्य-स्तरीय विकल्प लागू करने के लिए विधान सभा में संविधान की सातवीं अनुसूची (अनुच्छेद 246) के संवैधानिक खाके में डॉ. ए. के. राजन उच्च-स्तरीय समिति के निर्देशों के मुताबिक एक नया विधेयक विधान सभा में सर्व-सम्मति से पारित करवाया और उसे राष्ट्रपति की सहमति के लिए राज्यपाल को भेज दिया। लेकिन राज्यपाल ने उसे 3 फरवरी 2022 तक संविधान का खुलकर उल्लंघन करते हुए अपने पास बिना किसी कार्रवाई के रखा। फिर उभरते हुए जन-विरोध को देखकर अपनी टिप्पणी के साथ वही विधेयक पुनर्विचार के लिए मुख्यमंत्री को वापस कर दिया। विधान सभा अध्यक्ष ने तुरत-फुरत संवैधानिक प्रावधान के मुताबिक विधान सभा का विशेष सत्र बुलाया जिसमें राज्यपाल की टिप्पणी से संविधान के अनुसार मुख्यमंत्री ने अपनी असहमति दर्ज़ की। इसके बाद 'नीट'-विरोधी विधेयक दोबारा सर्व-सम्मति से पारित करके राज्यपाल को भेज दिया गया लेकिन राज्यपाल ने फिर भी उसे सभी संवैधानिक प्रावधानों को ताक पर रखकर राष्ट्रपति की सहमति के लिए लंबे अरसे तक नहीं भेजा। अंततः जब राज्यपाल ने उक्त विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति के लिए नियमानुसार गृह मंत्रालय को भेजा तो वह वहां की नौकरशाही में अटक गया। तमिलनाडु की जनता उस विधेयक पर माननीया राष्ट्रपति की सहमति की सितंबर, 2021 से आज तक इंतज़ार कर रही है ताकि बहुजन और ऊंची जाति के निम्न आय वर्ग के युवाओं को भी डॉक्टर बनने का मौका मिले!

6.3.1 कहां हैं रा.शि.नी., 2020 द्वारा इतने हो-हल्ले के साथ किए गए 'नीट' के ज़रिए मेडिकल शिक्षा और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में दाखिले के लिए समतामूलक धरातल (Level playing Field) बनाने के दावे? इस सवाल का जवाब नीति निर्माताओं और उनके द्वारा स्थापित ऊंचे दर्जे वाली राजसत्ता-प्राप्त NTA से सार्वजनिक रूप से मिलने का आज तक इंतज़ार है और आगे भी रहेगा! भारत के विख्यात विश्वविद्यालयों से उनको पिछले 75 साल से मिली स्वायत्तता बेवजह छीन ली गई है। इस तरह विश्वविद्यालयों की ज्ञान-आधारित समृद्ध विविधता को सिरे से खारिज करके उनको केंद्रीय नियंत्रण के संकीर्ण नौकरशाही दायरे में उलझा दिया है।

6.3.2 CUET के दुष्परिणामों पर एक नज़रः तमिलनाडु में 'नीट' के खिलाफ़ लड़ाई का आज तक कोई समाधान नहीं निकला है। लेकिन इस लंबी इंतज़ार के बीच रा.शि.नी., 2020 का हवाला देते हुए केंद्र ने विभिन्न राज्यों में स्थापित सभी 45 केंद्रीय विश्वविद्यालयों और उनसे संबद्ध कॉलेजों में प्रवेश परीक्षा (CUET) उपरोक्त नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (NTA) को सौंप दी है। इस मनमानी तर्कहीन केंद्रीकरण के फैसले के फलस्वरूप भारत के विख्यात विश्वविद्यालयों से उनको पिछले 75 साल से मिली स्वायत्तता बेवजह छीन ली गई है। इस तरह विश्वविद्यालयों की ज्ञान-आधारित समृद्ध विविधता को सिरे से खारिज करके उनको केंद्रीय नियंत्रण के संकीर्ण नौकरशाही दायरे में उलझा दिया है। इस केंद्रीकरण का दुष्परिणाम है कि विख्यात बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 2023-24 के सत्र में लगभग 5, 000 सीटें खाली पड़ी हैं जबकि CUET से पहले इस विश्वविद्यालय में सभी कोर्सों की सब सीटें भरी रहती थीं!

दुनिया का इतिहास गवाह है कि ज्ञान-निर्माण की उर्वर ज़मीन के लिए ज्ञान की विविधता और ज्ञान के विविध स्रोतों के बीच व्यापक लोकतांत्रिक खुला अकादमिक संवाद एवं समृद्ध टिकाऊ विमर्श निहायत ज़रूरी है जिसके बगैर ज्ञान-निर्माण की उर्वर ज़मीन बंजर हो जाएगी और दुनिया में भारत ज्ञान-उत्पादन की दौड़ में पिछड़ जाएगा। तमिलनाडु के उच्च शिक्षा मंत्री ने विधान सभा में CUET के इस नए निज़ाम में अनेक ठोस खामियां बताकर इसको खारिज करते हुए कहा कि अभी 'नीट' जबरन थोपने के जख़्म भरे भी नहीं थे कि केंद्र ने CUET की प्रवेश परीक्षा नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (NTA) को सौंपकर हमारे जख़्मों पर बेइजज्ती का नमक छिड़क दिया है!

6.4 'नीट' के बहाने उच्च शिक्षा-विरोधी कॉरपोरेट-समर्थित कोचिंग धंधे की पहलकदमी पर बहुजन युवाओं के पूरे देश में 85% ज्ञान-समृद्ध युवा जनेटिक कोष (ज्ञान-समृद्ध युवा 'जीन पूल') को बेदखल करने से राष्ट्रीय नुकसानः

देश के सभी राज्यों/यूटी में MBBS में दाखिले के लिए बहुजनों व उच्च जातियों के निम्न आय वर्ग के विद्यार्थियों को पिछले 75 साल से उपलब्ध 'समतामूलक धरातल' ('लेवल प्लेयिंग फ़ील्ड') को मटियामेट करने के इरादे से विदेशी पूंजी द्वारा नियंत्रित डिजिटल कारोबार के पक्ष में केंद्र द्वारा षड़यंत्र और बहुजन युवाओं व उच्च जातियों के निम्न आय वर्ग के विद्यार्थियों को मेडिकल शिक्षा से बेदखल करके भारत के कम-से-कम 85% युवा जनेटिक कोष ('जीन पूल') का राष्ट्रीय नुकसान किया जा रहा है।

क्या यही तथाकथित 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत' की पहचान होगी?

गौरतलब है कि उपलब्ध ज्ञान के अनुसार बुद्धिमत्ता (intellect) और सृजनात्मकता (creativity) से संबंधित 'जिनोम' किसी खास जाति, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा या जेंडर की मिल्कियत नहीं हैं बल्कि प्राकृतिक रूप से इनका वितरण सभी जातियों, वर्गों, नस्लों, क्षेत्रों, भाषाओं व जेंडरों में समतामूलक होता है। केवल फर्क यह पड़ता है कि जन्म के बाद किसको बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं, पोषण, शैक्षणिक माहौल आदि मिलता है और किसको इन सुविधाओं से वंचित किया जाता है।

6.5 इस सिलसिले में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले का निम्नांकित अंश शिक्षा नीति बनाने वाले भाजपाई व आरएसएस के नेतृत्व के लिए एक अमूल्य सबक हैः . . . . 'प्रतिभा (Merit) का माप महज़ अंक नहीं हो सकते . . . . 'प्रतिभा' के मायने मेडिकल पेशे में किसी व्यक्ति की सामाजिक उपयोगिता के संदर्भ में तय करने होंगे . . . . इसलिए 'प्रतिभा' की अवधारणा पर नए सिरे से पुनर्विचार करना ज़रूरी है। उदाहरणतः अगर उच्च अंक पाने वाले उम्मीदवार अपनी योग्यता का इस्तेमाल अच्छे कामों के लिए नहीं करते हैं तो उनको, सिर्फ़ इसलिए कि उनको उच्च अंक मिले हैं, 'प्रतिभाशाली' कहना सटीक नहीं होगा। उनके काम का औचित्य और जनसेवा के लिए समर्पण को भी 'प्रतिभा' के मानदंडों के रूप में देखना चाहिए जिसका आकलन प्रतियोगी परीक्षा में नहीं किया जा सकता है। ठीक इसी तरह, जब कोई अपने धीरज और लचीलेपन के सहारे अभावग्रस्त हालात से निकल कर उभरता है तो इसमें उसकी मानसिक क्षमता झलकती है। ' – उद्धरणः सुप्रीम कोर्ट का फैसला दिनांक 20 जनवरी, 2020

6.6 मेडिकल शिक्षा और अन्य विषयों में उच्च शिक्षा का मुद्दा अब महज़ 'नीट' या 'CUET' का नहीं रह गया है, वरन् भारत की आज़ादी की लड़ाई के गर्भ से उभरे संविधान में निहित अनुच्छेद 1(1) के तहत देश की संघीय रचना का है, देश के भविष्य, दिशा व उसकी नियति का है!

6.7 'नीट' व 'CUET' से फ़ायदा किसको और किसको नहीं? अखिरकार, 'नीट' व 'CUET' थोपने से फ़ायदा किसे हुआ है? ज़ाहिर है कि देश के 85% युवाओं यानी बहुजनों को तो कतई फ़ायदा नहीं हुआ, न निकट भविष्य में होगा चूंकि विदेशी पूंजी से नियंत्रित और बेलगाम महंगी हो रही दिशाहीन कोचिंग की वजह से उनके लिए मेडिकल कॉलेजों व विख्यात विश्वविद्यालयों के दरवाजे बंद हो गए हैं। दरअसल, 'नीट' व 'CUET' थोपने का फ़ायदा कुल मिलाकर वैश्विक पूंजी पर आधारित लूट-मार एड-टेक (शिक्षा-तकनॉलॉजी) कारपोरेट घरानों को ही हुआ है। 'नीट' व 'CUET' में सारा काम ऑनलाईन होने से उनके धंधे में तेजी से कई गुना बढ़ोतरी हुई है। इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय मार्कटिंग कंपनियों ने हिसाब लगाया कि रा.शि.नी., 2020 लागू होने के चार साल के अंदर भारत में शिक्षा का बाज़ार 15 बिलियन (खरब) डॉलर का हो जाएगा।

इन अंतर्राष्ट्रीय एड-टेक (शिक्षा-तकनॉलॉजी) कारपोरेट घरानों की नकेल भारत सरकार के हाथ में नहीं है वरन् न्यूयॉर्क, लंदन, टोक्यो व बीजिंग के स्टॉक एक्सचेंजों (शेयर बाज़ारों) के हाथ में है यानी भारत की मेडिकल शिक्षा और साथ में स्वास्थ्य व्यवस्था भी इन वैश्विक स्टॉक एक्सचेंजों (वैश्विक पूंजी-आधारित शेयर बाज़ारों) द्वारा नियंत्रित रहेगी यानी काफ़ी हद तक हमारे देश की नियति भी यही स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा तय की जाएगी। इस हालात के मायने हैं कि भारत की जिस संप्रभुता के लिए पूर्ण स्वराज की 100 साल लंबी लड़ाई लड़ी गई और अनगिनत युवाओं ने बलिदान दिया उस संप्रभुता का भविष्य ही खतरे में है।

संविधान की प्रस्तावना में निहित संवैधानिक मूल्यों और मौलिक अधिकारों से लेकर भारतीय गणराज्य के राजनीतिक चरित्र व उसकी विविधतामूलक संघीय रचना तक की बृहद तस्वीर अब आपके सामने है। लेकिन विडंबना यह है कि रा.शि.नी., 2020 की राजनीति इनमें से किसी भी संवैधानिक प्रावधान को नहीं स्वीकारती।

7.1 'नीट' व 'ण्ळऊं' और एकलव्य का अंगूठाः उपरोक्त पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट हो गया होगा कि इन दोनों केंद्रीकृत अखिल भारत प्रवेश परीक्षाओं को नेशनल टेस्टिंग एजेंसी के हवाले करने के फलस्वरूप बहुजन युवाओं (देश के 85% युवा) के लिए मेडिकल शिक्षा और विख्यात विश्वविद्यालयों के दरवाजे बंद हो गए हैं। ज़ाहिर है कि यह नीतिगत फैसला मनुवादी खाके (न कि भारत के संविधान के खाके) में अभिजात वर्ग व उच्च जातियों की साजिश है। इसलिए ऐसी प्रवेश परीक्षाओं और परीक्षण एजेंसियों का नियमन करना निहायत ज़रूरी हो गया है अन्यथा अभिजात उच्च वर्णीय शासक वर्ग को देश के युवाओं के 85% बहुजनों यानी 'एकलव्यों' का अंगूठा काटने की खुली छूट मिल जाएगी।

8.1 विदेशी विश्वविद्यालयों द्वारा भारत में लूट का धंधाः रा.शि.नी. 2020 में विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में आने और उन्हें मनमानी फ़ीस लेने, शिक्षकों व कर्मचारियों के बेतन घटाने, उनके व विद्यार्थियों का भी आरक्षण या छात्रवृत्ति, हॉस्टल रद्द करने आदि मनमानी फैसलों की खुली छूट दी गई है बशर्ते कि वे इसकी जानकारी केंद्रीय सरकार की तयशुदा वेबसाईट पर डालते

जाएं।

इसके अलावा उनको विद्यार्थियों की फ़ीस से जो भी मुनाफ़ा हो उसका मनमानी इस्तेमाल करने की छूट – चाहे मुनाफ़े से भारत में एक और कैंपस खोले या फिर विदेश में खोलें, बस, इसकी जानकारी सरकारी वेबसाईट पर डालते जाएं!

गौरतलब है कि विश्व बैंक और यूनेस्को (द टास्क फ़ोर्स, 2000) की रिपोर्ट के अनुसारः 'विकसित मुल्कों के ऐसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय हैं जो गरीब व विकासशील देशों में, अपनी प्रतिष्ठा का इस्तेमाल करते हुए और समतामूलक गुणवत्ता का आश्वासन दिए बगैर, घटिया कोर्स चलाते हैं। '

8.1.1 रा.शि.नी. 2020 में भारत सरकार द्वारा विदेशी विश्वविद्यालयों को राष्ट्र-विरोधी संदेश का सारतत्व

लूटो, मन भर के लूटो लेकिन एलान करके लूटो!

9.1 राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ (आरएसएस) और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020

(संदर्भः इस दस्तावेज का खंड 1.0 पृ.2 व खंड 1.1, पृ.2)

इस दस्तावेज की शुरूआत में ही दर्ज किया गया है कि ब्रिटिश राज से भारत की आज़ादी के बाद पिछले 75 साल में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (रा.शि.नी.), 2020 देश की पहली और अकेली शिक्षा नीति है जिसमें या जिसे,

क) जनता के विचार जानने के लिए कोई प्रावधान नहीं रखा गया।

ख) न तो विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति की पड़ताल के लिए और ना ही संसद की स्वीकृति के लिए पेश किया गया।

ग) राज्यों व यू.टी. (केंद्र-शासित प्रदेशों) की विधानसभाओं में सलाह-मशविरे या अनुमोदन के लिए पेश नहीं किया गया इसके बावजूद कि संविधान के मुताबिक शिक्षा समवर्ती सूची में है यानी यह केंद्र और राज्यों व यू.टी. दोनों का विषय है (देखिएः सातवीं अनुसूची, अनुच्छेद 246, सूची तीन)।

घ) केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ('केब') की राय तक नहीं ली गई जबकि वह शिक्षा नीति की पड़ताल और स्वीकृति के लिए भारत का सर्वोच्च निकाय है जहां सभी राज्यों व यू.टी. के शिक्षा मंत्रियों का लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व होता है।

हकीकत तो यह है कि रा.शि.नी. 2020 के मसौदे पर नीति-निर्माताओं द्वारा केवल राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ (आरएसएस) से विस्तृत सलाह-मशविरा किया गया। आरएसएस के नेतृत्व ने एलान किया कि उनके 80% सुझावों व मांगों को उपरोक्त रा.शि.नी. 2020 में शामिल कर लिया गया है (संदर्भः इस दस्तावेज का खंड 1.1, पृ.2)।

लेकिन रा.शि.नी. 2020 में आरएसएस के हस्तक्षेप की बात यहां खत्म नहीं होती बल्कि इसकी शुरुआत होती है।

गौरतलब है कि रा.शि.नी. 2020 में आरएसएस के हस्तक्षेप के लिए विभिन्न स्तरों पर अकल्पनीय प्रावधान किए गए हैं जिसके चंदेक विस्मयजनक उदाहरण यहां सूचिबद्ध किए जा रहे हैं –

रा.शि.नी. 2020 में पूर्व-प्राथमिक स्तर पर – 'प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ECCE)' से लेकर कक्षा 12 तक शिक्षा व्यवस्था में सत्ताधारी राजनीतिक दल के स्थानीय कैडर यथा, – 'स्वयंसेवक (Volunteers), सामाजिक कार्यकर्ता (Social Workers), सलाहकार (Counselors), स्कूलों के पूर्व छात्र (alumni), स्थानीय समुदाय के लोक-कल्याण भावनायुक्त कार्यकर्ता (Public-spirited members) एवं स्वस्थ व सक्रिय अवकाश-प्राप्त (Retired) सरकारी कर्मियों' को – 'विभिन्न अपरिभाषित अनौपचारिक कामों के लिए नियुक्त करने के प्रावधानों का प्रस्ताव बार-बार दिया गया है' जिनका वेतन-समेत यात्रा आदि का सारा खर्च सरकारी कोष से दिया जाएगा यानी हम सब नागरिकों द्वारा दिए गए आयकर समेत अन्य विभिन्न करों में से . . . . जो संविधान में विशेष प्रावधान किए बगैर मुमकिन नहीं होगा।

? इसी तरह रा.शि.नी. 2020 में स्कूली शिक्षकों के चयन एवं नियुक्तियों के लिए प्रस्तावित 'class demo system' का विशेष प्रावधान किया गया है ताकि सत्ताधारी राजनीतिक दल के लिए अपनी विचारधारा के अनुकूल लोगों को नियुक्त करना आसान हो जाए। स्कूली एवं उच्च शिक्षा दोनों में प्रस्तावित 'tenure track' system के मुताबिक प्रस्तावित 'Probation' के प्रावधान से संभव हो जाएगा कि शिक्षकों की नौकरी को पक्का करने के लिए 'प्रोबेशन' पर रक्खे गए शिक्षकों को सत्ताधारियों की विचारधारा के अनुसार बाध्य किया जा सके।

? इसके अलावा शिक्षकों की चयन व नियुक्ति की सोची-समझी प्रक्रिया में आरक्षण, वरिष्ठता, पात्रता और उपाधि संबंधित नियमावली ना रखने का फ़ायदा सत्ताधारी पार्टी के कैडर को प्रोन्नोति देने के लिए उठाया जाएगा और इसी तर्ज़ में विश्वविद्यालयों को नियंत्रित करने के लिए प्रस्तावित 'बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स' के सदस्यों की नियुक्तियों के

लिए भी।

कुल मिलाकर रा.शि.नी. 2020 का खाका महज़ प्रशासकीय नियंत्रण एवं केंद्रीकरण के लिए ही नहीं वरन् शिक्षा व्यवस्था के हर पहलू में विचारधारात्मक घुसपैठ के लिए भी बनाया गया है।

उपरोक्त प्रावधानों से संघ परिवार द्वारा संपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया को विकृत करके अपने हरेक विचार को अनुशासित करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। कोई अचरज नहीं होना चाहिए कि आरएसएस का नेतृत्व यह दावा कर रहा है कि रा.शि.नी. 2020 में उनकी 80% मांगों को शामिल किया गया है।

ब्रिटिश राज के खिलाफ़ आज़ादी की लड़ाई के दौरान अंकुरित मूल्यों से प्रेरित संवैधानिक खाके में जनवादी शिक्षा का देशप्रेमी विकल्प

10.1 शिक्षा का जनवादी वैकल्पिक नज़रिया

शिक्षा का मूल उद्देश्य विविधता, अनेकत्व व बराबरी पर आधारित लोकतांत्रिक, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायपूर्ण, प्रबुद्ध एवं मानवीय समाज का निर्माण करना है। इस संदर्भ में शिक्षा की समाज में भूमिका परिवर्तनकामी है, न कि यथा-स्थिति को बरकरार रखने की और ना ही देशी/विदेशी कारपोरेट बाज़ार में गुलामगिरी करवाने की।

इस संदर्भ में 'विकसित भारत' के निर्माण के लिए ज़रूरी वैकल्पिक जनवादी शिक्षा नीति का एक 20-सूत्री खाका नीचे प्रस्तावित है जिस पर देश भर में चिंतन व विमर्श आगे बढ़ाना हम सब सचेत व देशप्रेमी नागरिकों की सामूहिक ज़िम्मेदारी हैः

1) राज्य सरकार की संवैधानिक ज़िम्मेदारी है कि हरेक बच्चे, किशोर एवं युवा (लड़कियों समेत) को शिक्षा मिले जिसमें वर्ग, जाति, नस्ल, जेंडर, धर्म, भाषा, जन्म स्थान या विकलांगता पर आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव के लिए कोई जगह नहीं है।

2) जैसा कि संविधान की प्रस्तावना में प्रतिष्ठापित है, उत्पीड़ितों, शोषितों, वंचितों और विकलांगों यानी बहुजनों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना शिक्षा व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा हो।

3) हरेक राज्य/यू.टी. सरकार की संवैधानिक ज़िम्मेदारी है कि वह पूरी तौर पर मुफ़्त, अनिवार्य व समतामूलक सरकारी स्कूली शिक्षा व्यवस्था और साथ में सार्वजनिक उच्च व पेशेवर शैक्षिक संस्थानों के लिए यथोचित बजट यानी भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) का न्यूनतम 6% उपलब्ध करे। यह भी ज़रूरी है कि उपरोक्त सार्वजनिक कोष का 100% इस्तेमाल सार्वजनिक शिक्षा (के. जी. से पी. जी तक) के बेहतरीकरण के लिए किया जाए, न कि निजी/कारपोरेट या तथाकथित निजी परोपकारी शैक्षिक संस्थानों के लिए। यह शिक्षा व्यवस्था हर हाल पूर्व-प्राथमिक से लेकर उच्च व पेशेवर (Professional) शिक्षा तक (यानी के.जी. से पी.जी. तक) एवं शोध समेत भारत के बहुभाषीय संदर्भ में मातृभाषा पर आधारित हो।

4) राज्य सरकार की इस संवैधानिक ज़िम्मेदारी बतौर 'प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ECCE)' एवं कक्षा 1 से कक्षा 12 तक कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा प्रस्तावित पड़ोसी स्कूल पर आधारित 'समान स्कूल व्यवस्था' (Common School System) स्थापित की जाए जिसका प्रशासन लोकतांत्रिक, संघीय व सहभागिता की शैली में हो ताकि विषमताओं को समाज से बेदखल और विविधताओं का लोकतांत्रीकरण किया जा सके।

5) शिक्षा में सांप्रदायिकता यानी धार्मिक कट्टरवाद, बहुसंख्यकवाद या वर्ग, जाति, नस्ल, जेंडर, धर्म, भाषा, जन्म-स्थान व अन्य किसी भी भेदभाव के वर्चस्व के लिए कतई जगह न हो।

6) शिक्षा में भारत की समृद्ध विविधता को नकारने या विकृत करने की रत्तीभर भी गुंजाइश न हो।

7) संप्रभु 'आत्मनिर्भर भारत' का तकाज़ा है कि भारत की पूरी शिक्षा व्यवस्था को विश्व बैंक/WTO-GATS आदि अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के शिकंजे से मुक्त किया जाए। भारत की शिक्षा में व्यापार, मुनाफ़ाखोरी, विदेशी निवेश (Foreign Investment) या दिग्भ्रमित करनेवाली सार्वजनिक-परोपकारी-साझेदारी (PPP i.e. Public Philantropy Partnership) आदि की धोखाधड़ी के लिए शिक्षा के दरवाजे बंद किए जाएं।

8) निजी शैक्षिक संस्थाओं का वित्तीय प्रबंधन एवं अन्य सभी कामकाज का नियमन पालकों, विद्यार्थियों, शिक्षकों, स्थानीय समाजकर्मियों या उनका प्रतिनिधित्व करनेवाले संगठनों के हाथ में हो।

9) निजी शैक्षिक संस्थाओं को सार्वजनिक कोष से वित्तीय समर्थन देने के बजाए के.जी. से पी.जी. तक भारत की शिक्षा व्यवस्था के लिए ज़रूरत के अनुसार सार्वजनिक खर्च (Public Expenditure) बढ़ाया जाए।

10) शिक्षा व्यवस्था में राजसत्ता के केंद्रीकरण को खत्म करके संविधान के अनुसार राज्यों एवं यूटी सरकारों के शैक्षिक अधिकारों को संवैधानिक संघवाद (Constitutional Federalism) के मुताबिक स्थापित किया जाए।

11) शिक्षा को समवर्ती सूची से स्थानांतरित करके वापिस 'राज्य सूची' में स्थापित किया जाए (देखिए सातवीं अनुसूची, अनुच्छेद 246, सूची क्र. 2), जैसा कि डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के दार्शनिक नेतृत्व में मूल संविधान में प्रतिष्ठापित किया गया था।

12) विश्वविद्यालयों में शिक्षक/विद्यार्थी/गैर-शिक्षकीय कर्मचारी संगठनों द्वारा नियमानुसार निर्वाचित अकादमिक व कार्यकारी परिषदों के ज़रिए लोकतांत्रिक कामकाज की शैली को संरक्षण दिया जाए ताकि नौकरशाही-आधारित प्रशासन का लोकतांत्रीकरण किया जा सके।

13) रा.शि.नी., 2020 के मुताबिक स्कूली शिक्षा में त्रि-स्तरीय भेदभाव (Three-tier Discrimination) के संविधान-विरोधी नए प्रावधान को खत्म करके भेदभाव-मुक्त समतामूलक समान स्कूल व्यवस्था (Common School System) स्थापित की जाए।

14) व्यावसायिक शिक्षा की आड़ में बहुजन बच्चों-बच्चियों को जाति-आधारित पारिवारिक पेशों में लौटने के लिए बाध्य न किया जाए बल्कि उनके लिए कक्षा 6 से कक्षा 12 तक ज़रूरी चार विषयों का संपूर्ण अकादमिक कोर्स पूरा करने की सभी सुविधाएं उपलब्ध की जाएं।

15) स्कूली शिक्षा में तय सभी विषयों एवं उनकी परीक्षाओं या मूल्यांकन के स्तरों का 'मानक स्तर' (Standard Level) बनाम 'उच्च स्तर' (Higher Level) में शिक्षा-विरोधी विभाजन खारिज करके सभी विद्यार्थियों के लिए समतामूलक स्तरों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था कायम की जाए ताकि सभी विद्यार्थियों के लिए बगैर किसी भेदभाव के उच्च शिक्षा के दरवाजे खुले रहें।

16) स्कूली शिक्षा एवं उच्च शिक्षा यानी दोनों के दाखिले एवं शिक्षक-नियुक्ति में संविधान के अनुसार आरक्षण की व्यवस्था को संरक्षण दिया जाए चाहे वे संस्थान सार्वजनिक, निजी या विदेशी हों।

17) दाखिले की प्रतियोगिता में तथाकथित प्रतिभा (Merit) चाहे आरक्षित या खुली श्रेणी में रहे लेकिन किसी भी हालात में पहले से तयशुदा आरक्षण, छात्रवृत्ति व आर्थिक सहायता आदि को खत्म करके ना हो।

18) हर हाल यह सुनिश्चित किया जाए कि स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च व पेशेवर शिक्षा तक सभी संस्थानों के संवैधानिक मूल्यों को मनुवादी एवं नवउदारवादी हमलों से सुरक्षित किया जाए।

19) रा.शि.नी., 2020 में विभिन्न स्तरों पर सत्ताधारी राजनीतिक दल द्वारा विचारधारात्मक घुसपैठ करने के इरादे से उनके कैडर को स्कूली एवं उच्च शिक्षा में नियुक्तियां देने के जो हालिया प्रावधान जोड़े गए उन्हें हमेशा के लिए खारिज किया जाए ताकि भविष्य में कोई भी सत्ताधारी राजनीतिक दल इन प्रावधानों का नकारात्मक इस्तेमाल करके अपने कैडर के ज़रिए विचारधारात्मक घुसपैठ न कर सके।

20) यह सुनिश्चित किया जाए कि शिक्षा के हरेक स्तर पर 'आज़ादी की लड़ाई से उपजे परिवर्तनकामी मूल्यों' पर आधारित भारत के संविधान को गहराई से आत्मसात किया जाए ताकि सच्चे मायने में सन् 2047 तक 'विकसित भारत' महज़ एक जुमला नहीं वरन् भारत की हकीकत व सच्ची पहचान बन पाए!

उपसंहार

माननीय पाठकों : रा.शि.नी. 2020 के उपरोक्त विस्तृत बहुआयामी विश्लेषण के संदर्भ में भारत के भविष्य व नियति के प्रति आपकी ज़िम्मेदारी आपको खुद तय करनी है। आप रा.शि.नी., 2020 की संविधान-विरोधी, राष्ट्र-विरोधी व जन-विरोधी एवं कारपोरेट देशी/विदेशी पूंजी-समर्थित राजनीति के साथ खड़े होंगे या ब्रिटिश राज से ऐतिहासिक आज़ादी की लड़ाई के दौरान दो समानंतर शैक्षिक विमर्शों – जाति-विरोधी विमर्श एवं साम्राज्यवाद-विरोधी विमर्श – की बुनियाद पर। बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर के विलक्षण नेतृत्व में भारत की संविधान सभा द्वारा बनाए गए सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय – विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतंत्रता – व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता व अखंडता – समता, स्वतंत्रता और बंधुता की त्रिमूर्ती – की मार्गदर्शक नींव पर खड़े 'संप्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य' के ऐतिहासिक संविधान के साथ?

आइए, हम सब मिलकर उम्मीद करते हैं कि देश के भावी युवा नागरिक संविधान की प्रस्तावना में दर्ज़ उपरोक्त परिवर्तनकामी मूल्यों से प्रेरित होकर सच्चे मायने में 'विकसित भारत' के पुनर्निर्माण के लिए नव-जागरण आंदोलन के प्रतिबद्ध प्रहरी बनकर देश के लिए शहादत देनेवाले महात्मा गांधी, चंद्रशेखर आज़ाद व उनके साथी अश्फ़ाकउल्लाह खान, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह और उनके साथी राजगुरु व सुखदेव, नेताजी सुभाष चंद्र बोस व 'आज़ाद हिंद फौज़' में उनके साथी मेज़र-जनरल शाहनवाज़ खां के सपनों को हकीकत में बदलकर भारत की ज़मीन पर उतारेंगे!

सत्यमेव जयते! जय हिंद!

पूर्व डीन, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय
पूर्व सदस्य, केंद्रीय शिक्षा सलाहकार मंडल ('केब')
23 मार्च, 2024 (शहादत दिवस)

वन संरक्षण संशोधन अधिनियम 2023 आदिवासियों के वन अधिकारों को नकारता है

स्मिता और शिउली वनजा

वन संरक्षण संशोधन नियम को पहले जून 2022 में एक नियम के रूप में भारत सरकार द्वारा लाया गया और फिर बाद में इसे एक अधिनियम में बदल दिया गया और जुलाई 2023 में संसद द्वारा पारित किया गया। वन संरक्षण नियम 2022 के अनुसार केंद्र सरकार विभिन्न कंपनियों को उनके निजी उपयोग के लिए वन भूमि दे सकती है और उसके बाद यह राज्य सरकार की जिम्मेदारी है कि वह स्थानीय ग्रामीणों से सहमति/ अनुमोदन ले। यह स्थानीय ग्रामीण लोग वो ही होंगेजो निजी कंपनियों के आने के बाद इस जंगल क्षेत्र में आने जाने का अधिकार खो देंगे। यह प्रक्रिया पहले की प्रणाली से बिल्कुल उल्टी है; जिसमें पांचवीं अनुसूची वाले क्षेत्रों में किसी भी निजी कंपनी या निजी संस्थान को वन भूमि देने से पहले ग्राम सभाओं से अनुमति लेना अनिवार्य था। वन संरक्षण संशोधन अधिनियम 2023 में कहा गया है कि केवल वह भूमि जिसे वन के रूप में घोषित या अधिसूचित किया गया है, उसे ही वनोन्मूलन (वनों की कटाई) के लिए अनुमति की जरूरत होगी है। शेष वन भूमि जिसे इस प्रकार से घोषित नहीं किया गया है, उसका उपयोग विभिन्न बुनियादी ढांचे और अन्य परियोजनाओं लिए निजी कम्पनियों द्वारा किया जा सकता है। इसके अलावा, राष्ट्रीय सीमा के 100 किमी की परिधि के अंतर्गत आने वाले किसी भी जंगल भूमि का उपयोग सड़कों और राजमार्गों के निर्माण सहित विभिन्न परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है और उस क्षेत्र में रहने वाले ग्राम सभाओं और स्थानीय आदिवासियों से अनुमति या अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। इसमें पर्यटन उद्देश्यों के लिए चिड़ियाघरों और सफारी यात्राओं के लिए जंगल और ऐसे अन्य क्षेत्रों का उपयोग करने की भी बात कही गई है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 24 फरवरी 2024 को एक फैसले में सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को सभी भूमि और वृक्ष आवरणों, जिन्हें वनों के रूप में अधिसूचित किया गया है की एक सूची संकलित करने के लिए कहा है। और सुप्रीम कोर्ट के अंतिम फैसले के आने तक इस अधिनियम के देश में लागू होने पर रोक लगा दी है।

वन संरक्षण संशोधन अधिनियम 2023, वन अधिकार अधिनियम (एफआरए) 2006 के तहत आदिवासियों और अन्य वनवासियों को जो चंद अधिकार प्राप्त हुए थे उनको नकारता है। सुप्रीम कोर्ट ने दो साल पहले वन भूमि को 'अतिक्रमणकारियों' से मुक्त करने के लिए कहा था। यह वह भाषा है जिसका प्रयोग अंग्रेजों के समय से ही आदिवासियों और वनवासियों को संबोधित करने के लिए किया जाता रहा है। 1927, 1980 आदि के विभिन्न वन कानूनों ने आदिवासियों को अपनी ही भूमि पर चोर और अतिक्रमणकारी बना दिया है। अंग्रेज लकड़ी काटने और शिपिंग के लिए आदिवासियों को जंगल से हटाना चाहते थे। वहीं भाजपा पैसे के लिए वन भूमि को अपनी करीबी कंपनियों को बेचना/पट्टे पर देना चाहती है - खनन के लिए और व्यावसायिक वृक्षारोपण के लिए। उनका दावा है कि वन भूमि का इस तरह का इस्तेमाल करने से जंगलों को फायदा होगा। यहां तक किवन भूमि / वन क्षेत्रों में अधिक से अधिक सफ़ारी और पर्यटन की भी वकालत की जा रही है। एक और बाघ वन अभ्यारण्य (टाइगर फॉरेस्ट रिजर्व) स्थापित करने के लिए गाँवों को जंगलों से विस्थापित किया गया है और दूसरी तरफ यह कुतर्क दिया जाता है कि पर्यटकों के लिए वाहनों का उपयोग इन क्षेत्रों में बाघों को फायदा पहुँचाएगा। मामूली आर्थिक लाभ के लिए आदिवासियों को विस्थापित करने की भाजपा सरकार की यह एक और चाल है।

आजादी के बाद बड़े बांधों, राजमार्गों, रेलवे जैसी विभिन्न परियोजनाओं के लिए आदिवासियों को मामूली मुआवजे देकर बार-बार विस्थापित किया गया है। प्रतिपूरक वनरोपण (compensatory afforestation) के बहाने भी आदिवासियों को बड़ी संख्या में विस्थापित किया गया है। एक बार विभिन्न विकास परियोजनाओं के लिए आदिवासियों को विस्थापित किया गया और जंगलों को नष्ट किया गया। दूसरी बार जब आदिवासियों और अन्य वनवासियों को पुनर्वासित किया गया तो उन्हें पुनर्स्थापित करने के लिए दुबारा जंगलों को काटा गया। जंगल में और उसके पास रहने वाली अन्य जातियों के लोगोंके बारे में अक्सर शहरी और तथाकथित सभ्य लोगों के मन में एक गलतधारणा रहती है कि यह लोग जंगलों को नष्ट कर रहे हैं। मीडिया भी इस झूठ को और फैलाता है। जबकि भारत के जंगलों में हमेशा से आदिवासियों का निवास रहा है और यह ही वे लोग हैं जिन्हें जंगलों के उपयोग और प्रबंधन के उचित और स्थायी तरीकों के बारे में जानकारी है। यदि आप आज भारत के मानचित्र को

देखें तो जंगल केवल वहीं बचे हैं जहां आदिवासी रह रहे हैं। यह बात जंगलों और आदिवासियों के बीच गहरे रिश्ते को दर्शाता है। हमें तथाकथित सभी समाज से यह सवाल करना चाहिए कि जहां आदिवासी नहीं रहते या उन्हें विस्थापित कर दिया गया, वहां जंगल क्यों गायब हो गए हैं?

वन संरक्षण अधिनियम 2023 के लागू होने से पहले, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के अध्यक्ष श्री हर्ष चौहान ने वन संरक्षण नियम 2022 को तत्काल प्रभाव से निलंबित करने के लिए कई ठोस कारण बताए थे। उन्होंने यह भी कहा कि था कि वन संरक्षण नियम 2014 और 2017 को और मजबूत बनाया जाना चाहिए और उनके प्रावधानों को लागू किया जाना चाहिए। उनकी अनुशंसा के अनुसार, जिला स्तरीय समितियों को वन अधिकार अधिनियम 2006 को लागू करना चाहिए, विशेष रूप से वन भूमि, प्रतिपूरक वनीकरण के संबंध में और अन्य प्रयोजनों के लिए ऐसी भूमि के डायवर्जन को रोका जाना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि वन भूमि, जिसका डायवर्जन किया जाना है, ग्राम सभा के अंतर्गत आती है, तो उनसे अनुमति ली जानी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर ग्राम सभा को ऐसे डायवर्जन की पूरी जानकारी दी जानी चाहिए। ये सिफारिशें 26 सितंबर 2022 को पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्री भूपेन्द्र यादव से की गईं। अपने जवाब में, श्री यादव ने आयुक्त द्वारा उठाए गए किसी भी बिंदु को संबोधित नहीं किया। श्री चौहान ने बाद में इस्तीफा दे दिया। यह स्पष्ट दिखता है कि भाजपा सरकार ने उनके पत्र या उनकी सिफारिशों को गंभीरता से नहीं लिया और उन्हें पद पर बने रहने के लिए भी नहीं कहा, ।

एक गौरतलब बात यह है कि वन संरक्षण अधिनियम 2022 में 'संरक्षण' शब्द तो है, पर यह एक ऐसी सरकार द्वारा लागू किया गया है जो दिखावी उपभोग के माध्यम से जंगलों को नुकसान पहुंचा रही है और वास्तव में इसका संरक्षण नहीं कर रही है। संरक्षण का असली अर्थ होगा उन लोगों को इसकी सुरक्षा के लिए विभिन्न पदों पर नियुक्त करना जो जंगल में रह चुके हैं और जो इसके मूल्य को पहचानते हैं। इसका मतलब क्षेत्र की मूल प्रजातियों के पेड़ पौधों का रोपण करना, न कि सागौन (teak), बांस आदि की एकल (monoculture)रोपाई करना। अक्सर जो लोग वन अधिकारियों और अन्य पदों में नियुक्त होते हैं, उन्हें स्थानीय पारिस्थितिक (एकोलॉजीकल) संरचना और प्रणाली के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है और वे ऐसी नीतियां और नियम लाते हैं जो जंगल की सुरक्षा और संरक्षण के बजाय पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती हैं। इसका एक उदाहरण तवा नदी पर बांध बनाना है जिसने इस क्षेत्र की नदी से मछली की एक प्रजाति 'महासीर' को खत्म कर दिया है। कोई नहीं जानता कि मध्य प्रदेश के नर्मदापुरम जिले में तवा नदी पर बांध के निर्माण के बाद और मुक्त बहने वाले पानी को जलाशय के रूप में परिवर्तित करने से कितनेसूक्ष्म जीव, पौधों की प्रजातियां या अन्य नदी में रहने वाले जीवों की प्रजातियां मर गईं होंगी।

इस नए क़ानून के लागू होने के बाद केंद्र द्वारा जंगलों को सीधे निजी कंपनियों या निजी निगमों/ट्रस्टों को सौंपना संभव हो जाएगा। स्थानीय लोगों और आदिवासियों को इसके बारे में तभी पता चलेगा जब कंपनी उन्हें उनकी ज़मीन से विस्थापित कर देगी और उन्हें जंगल में जाने से रोक देगी। सच तो यह है कि विभिन्न विकासात्मक परियोजनाओं, बाघ वन अभ्यारण्यों और वन अभ्यारण्यों के निर्माण के कारण वन क्षेत्रों में पहले की तुलना में बहुत कम भूमि उपलब्ध है। यह अधिनियम वन क्षेत्र को कम कर देगा और साथ ही चरागाह, गैर-लकड़ी वन उपज के संग्रह आदि के लिए गाँव वालों को उपलब्धसामुदायिक भूमि कोऔर कम कर देगा।

हाल के वर्षों में वन विभाग आदिवासियों को विस्थापित करने के बाद मुआवजे में जमीन के बदले नकद राशि देता रहा है। लोगों के लालच को साधने की इस कोशिश का मध्य प्रदेश के नर्मदापुरम जिले के पंचमढ़ी इलाकों में विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। जिन गांवों में किसी समय आत्मनिर्भर सिंचाई व्यवस्था थी, वे विस्थापित होने के बाद कहीं और बसने की कोशिश करते हुए भिखारी बन गए हैं। वे मुआवजे का पैसा शराब और मोटरसाइकिल पर खर्च कर देते हैं। एक बार जब पैसा खत्म हो जाता है और वे कहीं और बसने की कोशिश करते हैं या विस्थापन का विरोध करते हैं तो असंवेदनशील जिला प्रशासन द्वारा उन्हें जबरन उखाड़ दिया जाता है और कहा जाता है कि वे मुआवजे के पैसे सेजमीन खरीद सकते थे उसे मोटरसाइकिल, शराब आदि पर खर्च करने के बजाय। उन्हें नई जगह पर जहां वे बसने की कोशिश करते हैं वहाँ वन विभाग के अधिकारियों और स्थानीय लोगों के साथ तारतम्य बिठाना पड़ता है। कमोबेश यही स्थिति देश के अन्य हिस्सों में भी है। वन विभाग भ्रष्ट है और लकड़ी की तस्करी और अवैध शिकार में लिप्त है। स्थानीय लोगों के साथ इसका रिश्ता हमेशा शोषण का रहा है। अब इस नये अधिनियम से भाजपा सरकार फिर से आदिवासियों और अन्य जातियों को विस्थापित कर वन जैसे प्राकृतिक संसाधन को धन में बदलने का प्रयास कर रही है। इससे आदिवासियों और अन्य वनवासियों का राज्य सत्ता के साथ टकराव, गरीबी और शोषण और बढ़ेगा।

मध्य प्रदेश के नर्मदापुरम (पुराना नाम होशंगाबाद) जिले में, बोरी वन अभयारण्य के अंदर सदियों से 17 गाँव

बसे हुए थे। लेकिन जब इसे सतपुड़ा और पचमढ़ी वन अभ्यारण्य में मिला कर सतपुड़ा बाघ अभ्यारण्य में बदल दिया गया, तब बाघ संरक्षण और बाघों के अवैध शिकार को रोकने के दावे के साथ 17 गाँव के लोगों को उस क्षेत्र से हटा दिया गया। सतपुड़ा टाइगर रिजर्व बनने के बाद स्थानीय लोगों का दावा है कि उस इलाके से सभी बाघ गायब हो गये थे। पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए अब वन विभाग ने सतपुड़ा टाइगर रिजर्व में बाहर से बाघ लाए हैं। आदिवासी और जंगल के करीब रहने वाली और जातियाँ आम तौर पर शिकारियों और लकड़ी तस्करों के खिलाफ सबसे बड़े सुरक्षाकवचहोते हैं। लेकिन नए कानून के साथ भाजपा सरकार का दृष्टिकोण जंगल को एक बाजार में बिकने वाली वस्तु और हजारों सालों से जंगल मे रहने वाली जातियों को चोरों के रूप में दर्शाने का है। बोरी अभयारण्य काफी हद तक एक बंजर जंगल है और इसमें सावधानीपूर्वक वनीकरण की आवश्यकता है, न कि खनन, पर्यटन और ऐसे पेड़-पौधों के रोपण की, जो केवल व्यावसायिक मूल्य के हैं।

हालाँकि यह लेख मध्य प्रदेश में नर्मदापुरम (पुराना नाम होशंगाबाद) और बैतूल जिलों (विशेष रूप से होशंगाबाद में केसला, सोहागपुर, बाबई और सिवनी मालवा ब्लॉक और बैतूल जिलों में शाहपुर और घोड़ाडोंगरी ब्लॉक) के विशेष संदर्भ में लिखा गया है, लेकिन इस नये अधिनियम से देश के सभी जंगल क्षेत्रों में आदिवासियों को इसी प्रकार के विस्थापनों का सामना करना पड़ेगा। इसी संदर्भ में एक और मुद्दा, भाजपा सरकार द्वारा ग्रेट निकोबार द्वीप में एक नया बंदरगाह बनाना है जो सेंटिनल्स आदिवासियों की आखिरी शरणस्थली है। अत्यधिक शोषण और संसाधनों के दोहन की प्रतिस्पर्धा बाहरी लोगों द्वारा, समुद्री और वन्यजीवों के अवैध शिकार और जंगलों के विनाश के कारण अंडमान और निकोबार की जनजातियाँ धीरे-धीरे विलुप्त हो रही हैं। इसके बावजूद हाल ही में भारतीय राजदूत ने थाईलैंड के बैंकॉक शहर में निवेशकों की बैठक आयोजित की जहां अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के नजदीक गहरे समुद्र क्षेत्र में मछली पकड़ने के लिए विदेशी पूंजी निवेश को आमंत्रित किया।

वन अधिकार अधिनियम (एफआरए 2006) में जंगल में चराई, मछली पकड़ना, जंगल के अंदर स्थित जल निकायों को इस्तेमाल करना, पीवीटीजी (विशेष रूप से कमजोर आदिवासी समूहों) के लिए आवास अधिकार, खानाबदोश और चरवाहे समुदाय को उनके पारंपरिक मौसमी संसाधनों को इस्तेमाल करना जैसे 'सामुदायिक अधिकारों' को शामिल किया गया है। पर असल व्यवहार में राज्य और वन विभाग द्वारा लोगों को ईंधन के लिए जलाऊ लकड़ी के संग्रह, वन उपज का संग्रह , वन में घरेलू जानवरों की चराई जैसे सामुदायिक अधिकारों को भी मान्यता नहीं दी गई हैसभी विस्तारित सामुदायिक अधिकारों को तो भूल ही जाइए। अनुसूचित जनजातियों के एक पूर्व आयोग के एक आदेश में सीसीएफ (मुख्य वन संरक्षक) और राज्य सरकार से जंगल से संबधित सामुदायिक अधिकारों के मुद्दे को विशेष रूप से नामित ग्राम सभाओं में उठाने के लिए कहा गया था, न कि आमतौर पर होने वाली दिखावटी सभाओं में जो 15 अगस्त और 2 अक्टूबर को औपचारिकता के तौर पर आयोजित की जाती हैं। मध्य प्रदेश के नर्मदापुरम जिले के केसला ब्लॉक में लगभग 25-30 गांवों के सामुदायिक वन अधिकारों के लिए दस्तावेज भरने के बावजूद इन्हें राज्य द्वारा वापस कर दिया गया, हालांकि अधिनियम के तहत इन्हें स्वीकार करना होता है। 2015 में एफआरए अधिनियम में बदलावों की घोषणा के बाद 2006 में दिए गए अधिकांश अधिकारों को निरस्त कर दिया गया है। नए वन संरक्षण संशोधन अधिनियम 2023 के तहत इस प्रक्रिया का केंद्रीकरण कर पेसा और अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा की शक्तियों को खत्म कर दिया है।

स्थानीय आदिवासी और अन्य जातियों के लोग नई क्रांति के अगुआ हो सकते थे यदि उन्हें जंगलों की सुरक्षा और प्रबंधन के लिए नियुक्त किया जाता। सालों से जंगलों में रहने और कई पुश्तें वहाँ बीत जाने के के कारण यह जिम्मेदारी उनको मिलनी चाहिए थी। ऐसा करने से उन्हें उनके पुश्तैनी अधिकार वापस मिल सकते थे (या उनके अधिकारों का नवीनीकरण हो सकता था)। एफआरए 2006 द्वारा न्यूनतम रूप से उनके वन अधिकारों को उन्हें वापस देने का एक प्रयास किया गया था। लेकिन इस नए अधिनियम के तहत संरक्षण के नाम पर आदिवासियों को फिर से विस्थापित किया जाएगा। 'वनवासी' नाम देकर भाजपा आदिवासियों को हिंदू जाति व्यवस्था के दूसरे पायदान, जाहिर तौर पर सबसे निचले पायदान पर लाना चाहती है। यदि दुखी और एकाकी जीवन जी रहे आदिवासियों को उनके जंगलों, उनके देवताओं, उनके नृत्य, उनके गीतों और उनकी संस्कृति से वंचित कर दिया जाएगातो वे मर जाएंगे या विलुप्त हो जाएंगे। यह सब मौजूदा शासन की एक राष्ट्र, एक धर्म और एक भाषा नीति का हिस्सा है। एक खतरनाक मानव विरोधी और आदिवासी विरोधी विस्थापन और अधिकारों के विनाश की प्रक्रिया इस वन संरक्षण संशोधन अधिनियम 2023 जैसेकानूनों सेलाई जा रही है। और जिसे जल्द ही वन विभाग और पुलिस द्वारा उनकी बंदूकों की नोक परइस देश में लागू किया जाएगा।

पारंपरिक मीडिया महत्वहीन हो गया है टूटी तलवार की मूठ की तरह

सेवंती निनान

अगर आने वाले चुनाव हमें समाचार मीडिया के बारे में कुछ भी बताते हैं, तो वह यह कि चुनावों के दौरान यह काफी हद तक अप्रासंगिक हो गया है। चौथा स्तंभ होने का मुगालता इसके मनोबल को बनाए रख सकता है, लेकिन चारों ओर संकेत यही हैं कि मीडिया जो एजेंडा तय करना चाहता है, उसका प्रभाव सीमित होगा। राजनीतिक वर्ग विज्ञापन की बाढ़ से मीडिया को भर देता है और मीडिया-मालिक इस वजह से इतने अहसानमंद हो गए हैं कि समाचार अक्सर कम अहमियत पाते हैं। नरेंद्र मोदी सरकार मुख्यधारा के मीडिया के लिए केवल एक ही उपयोग प्रदर्शित करती है, वह है विज्ञापन हासिल करने के एक मंच के रूप में।

प्रवर्तन निदेशालय और केंद्रीय जांच ब्यूरो जैसी एजेंसियों को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने और आतंकवाद कानूनों के दुरुपयोग ने इस सरकार को जवाबदेह ठहराने की कोशिश करने के लिए मुख्यधारा के मीडिया के उत्साह को खत्म कर दिया है। मीडिया के सबसे बहादुर लोग भी हमलावर होने से डरते हैं।

धार्मिक बहुसंख्यकवाद के हित में काम करने के लिए राष्ट्रीय प्रसारक की भूमिका को फिर से परिभाषित किया गया है। अब यह पहले से कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण एजेंडा सेट करता है, जिसका मुख्य आकर्षण अयोध्या में राम मंदिर के अभिषेक के समय प्रधानमंत्री द्वारा पुजारी के रूप में कर्तव्यों का पालन करना है। अयोध्या में राम मंदिर सुबह की आरती का प्रतिदिन सुबह प्रसारण 6.30 बजे करने के लिए दूरदर्शन को सेवा में लगाया गया था।

राजनीतिक छवि निर्माण पर जो खर्च किया जाता है, उसका ठीक ठीक हिसाब नहीं लगाया जा सकता है। चुनावी बॉन्ड के खुलासे से पता चलता है कि केंद्र और राज्य सरकारें चुनाव जीतने के लिए कॉरपोरेटों से जबरन वसूली करने से पीछे नहीं हटी हैं। यहाँ तक कि सीटों के मामले में जनता के दिमाग मे स्वीकार्यता रखने वाली सत्तारूढ़ पार्टी भी जीत जारी रखने के लिए अगले कुछ महीनों में अभूतपूर्व धनराशि खर्च करती दिख रही है।

विज्ञापन और अन्य प्रकार के प्रचार पर खर्च की मात्रा टेलीविजन पर उन्माद की हद तक 'मोदी की गारंटी'को लगातार दिखाना, मतदाताओं तक सोशल मीडिया पहुँच के लिए तैनात मीडिया सेल की फौज और चलाए जा रहे दुष्प्रचार अभियानों के पैमाने से स्पष्ट है। चूँकि राज्य सरकारें भी विज्ञापन पर बहुत सारा खर्च करती हैं जो प्रधानमंत्री की छवि बनाता है, इसलिए कुल लागत की गणना करना मुश्किल है। चुनाव प्रचार का कोई वास्तविक अनुमान संभव या उपलब्ध नहीं है; सोशल मीडिया पर कुछ खर्च को छोड़कर, जो काफी कम है।

इस महीने की शुरुआत में, द न्यूज प्रिंट ने बताया कि गूगल के विज्ञापन पारदर्शिता केंद्र के आंकड़ों ने दिखाया कि भारतीय जनता पार्टी ने 1 मार्च से पहले के 30 दिनों में स्ट्रीमिंग विज्ञापनों पर 29.7 करोड़ रुपये खर्च किए थे, जिनमें से ज़्यादातर वीडियो थे, ताकि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की छवि और केंद्र सरकार की योजनाओं का कई भाषाओं में प्रचार हो सके। इसकी तुलना में, पार्टी ने 2019 में आम चुनावों से पहले चार र द्वारा सेंसरशिप और धमकियों का हमला भी चलता है। इसी दौरान, एक्स के ग्लोबल गवर्नमेंट अफेयर्स पेज ने घोषणा की कि मोदी सरकार ने कुछ निर्दिष्ट खातों और पोस्ट को प्रतिबंधित करने के लिए शासकीय आदेश जारी किए हैं कि ऐसा न करने पर अधिकारियों पर जुर्माना लगाया जाएगा और जेल भी भेजा जा सकता है। इस बीच, बूम लाइव रिपोर्ट करता है कि उल्टा चश्मा नामक एक फेसबुक पेज और उसके पेजों के नेटवर्क ने नवंबर 2023 से 'मेटा (फेसबुक की कम्पनी का नाम अब मेटा है) के स्वामित्व वाले मंचों (फेसबुक, व्हाट्सएप और इंस्टाग्राम की मालिक मेटा है) पर एक हजार से अधिक विज्ञापनों (गलत सूचना और नफरत की अतिरिक्त खुराक वाले विज्ञापन) को बढ़ावा देने के लिए 2 करोड़ रुपये से अधिक खर्च किए हैं। बूम गलत सूचना शब्द का उपयोग करता है, लेकिन जिस ऑपरेशन का वर्णन करता है वह स्पष्ट रूप से 'जानबूझकर प्रसारित गलत सूचना' है। इस अभियान में चार वेब पेज हैं जो गैर भाजपा शासित राज्यों को लक्षित करते हैं: सोनार बांग्ला पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस को लक्षित करता है, तमिलकम द्रविड़ मुनेत्र कड़गम शासित तमिलनाडु को लक्षित करता है, कन्नड़ संगमम कांग्रेस शासित कर्नाटक को लक्षित करता है, और मालाबार सेंट्रल केरल में वाम लोकतांत्रिक मोर्चे को लक्षित करता है।

ये मेटा पेज किसानों के आंदोलन को लक्षित करने वाली गलत सूचनाएँ, मुसलमानों को लक्षित करने वाली अभद्र भाषा और विपक्षी नेताओं को लक्षित करने वाले छद्म विज्ञापन

भी चलाते हैं। यह अभियान पिछले साल राज्य चुनावों से पहले शुरू हुआ था। सोशल मीडिया के प्रसार और पहुंच की लागत बहुत कम होती है।

अन्य गतिविधियों की तुलना में ये गतिविधियाँ जनता में अधिक मात्रा में धीमा जहर घोल सकती हैं।

हिंदुस्तान टाइम्स ने मतदाताओं के बीच सर्वेक्षण द्वारा 2022 के उत्तर प्रदेश चुनावों में कैसा प्रचार कारगर रहा, इस पर एक शोध अध्ययन प्रकाशित किया। इसमें पाया गया कि रैलियों और घर-घर संपर्क दोनों के द्वारा व्यक्ति तक पार्टी की पहुँच सबसे कारगर थी। छोटे, क्षेत्रीय दलों के 73% मतदाता तथा बड़े, राष्ट्रीय स्तर के दलों को वोट देने वाले 54% उत्तरदाताओं ने यह राय रखी। जमीनी रैलियों पर पार्टी-वार खर्च का अनुमान लगाना आसान नहीं है, लेकिन इन रैलियों से मिलने वाले वीडियो फुटेज ही पार्टी कार्यकर्ताओं की फौज द्वारा सोशल मीडिया के प्रसार साधनों के लिए उपयोगी होते हैं।

संपर्क के लिए व्हाट्सएप का उपयोग बूथ-स्तरीय औजार बन गया है। आपको मतदाताओं के फोन नंबर एकत्र करने होते हैं। मान लीजिए, एक बूथ या उससे अधिक के लिए 10, 000 नंबर और फिर उन्हें गहनता से संदेश भेजना होता है। हिंदुस्तान टाइम्स के अध्ययन से पता चलता है कि चुनाव प्रचार के दौरान औसतन यह दिन में लगभग 40 से 50 बार हो सकता है। चुनावों के बाद के महीनों में यह घटकर लगभग 15 बार प्रतिदिन हो गया।

लेकिन बीच का समय उस काम के लिए महत्वपूर्ण है जिसे पूर्व पत्रकार आशुतोष मतदाता का 'ब्रेनवॉश' कहते हैं। उनका कहना है कि अमित मालवीय और भाजपा का आईटी सेल ऐसी सामग्री प्रसारित करता है जो मोदी की प्रशंसा करेगी और विपक्ष को बदनाम करेगी। वे वीडियो और गाने भेजते हैं जिसमें उनके सभी एजेंडे शामिल होते हैं। इस तरह के गहन मतदाता संपर्क पर पार्टी की मानवीय लागत का, एक बार फिर, आर्थिक रूप से अनुमान लगाना मुश्किल है, लेकिन ये ऐसी लागतें हैं जो राजनीतिक फंडिंग की अतृप्त भूख को पूरा करती हैं। 2014 और 2019 के बीच, नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने मुख्यधारा की समाचार मीडिया को प्रभावी रूप से हाशिए पर धकेल दिया था। सरकारी कर्मियों को प्रेस को ब्रीफ करने से हतोत्साहित किया गया, पत्रकारों को प्रधानमंत्री के विदेश दौरे के दौरान विमान में साथ यात्रा की प्रथा बन्द कर दी गई, तो सरकार ने प्रचार की जरूरतों को पूरा करने के लिए इन-हाउस ब्रॉडकास्टर दूरदर्शन का सहारा लिया और मोदी तथा उनके मंत्रियों ने घोषणाएं करने के लिए ट्विटर का सहारा लिया। हाल ही में, उन्होंने वीडियो आउटरीच के लिए सोशल मीडिया को प्रभावित कर सकने वाले-इंफ्लुएंसर्स की शक्ति और लचीलेपन की खोज की है। साक्षात्कार तेजी से उन्हें दिए जा रहे हैं, जबकि पहले ये लचीले पत्रकारों को दिए जाते थे। इस महीने, सरकार ने घोषणा की कि उसने सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स के लिए 'क्रिएटर्स अवॉर्ड्स' की स्थापना की है और प्रधानमंत्री ने राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान के लिए इन्फ्लुएंसर्स को 'पहला राष्ट्रीय क्रिएटर्स अवॉर्ड्स' प्रदान किया। फिर, सरकार के अनुकूल फिल्म निर्माता भी सिनेमाई प्रचार में शामिल हो रहे हैं। इस अखबार और अल जजीरा दोनों ने रिलीज हुई या रिलीज होने की प्रतीक्षा कर रही फिल्मों की संख्या का दस्तावेजीकरण किया है और उन फिल्मों को फिर से बुलाया है जो 2019 में सत्तारूढ़ पार्टी के लिए पिच को खराब करने के लिए काम आईं। कुछ नई फिल्में या तो पहले से ही सिनेमाघरों में हैं या जल्द ही रिलीज होंगी। इनमें से दो फ़िल्में 2002 में गोधरा ट्रेन में आगजनी की घटना के बारे में तथ्य उजागर करने का दावा करती हैं। दुर्घटना या साजिशः गोधरा और साबरमती रिपोर्ट। एक अन्य फ़िल्म, आख़िर पलायन कब तक? (हमें कब तक भागना पड़ेगा?), मुस्लिम बहुल क्षेत्रों से हिंदुओं के 'पलायन' को दिखाती है, जबकि तीसरी फ़िल्म, रजाकार, 1947 से पहले और बाद में हैदराबाद में रजाकारों द्वारा हिंदुओं के 'मूक नरसंहार' पर एक बहुभाषी फिल्म रिलीज़ होगी। फिल्म को इस साल की शुरुआत में रिलीज़ किया गया था और खुद प्रधानमंत्री ने इसकी प्रशंसा की थी। 2019 में, चुनावों से ठीक पहले की अवधि में द एक्सीडेंटल प्राइम मिनिस्टर रिलीज़ हुई, जिसने मोदी के पूर्ववर्ती मनमोहन सिंह को बेइज्जत करने तथा कट्टरपंथी तेवर वाली उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक को जारी किया था।

समाचार मीडिया है, चाहे वह दोस्ताना हो या अपना सही दायित्व निभा रहा हो, कितना प्रासंगिक रह जाता है? और मतदाता प्रचार के चौतरफा हमले से बचने के बाद, कैसे वोट देंगे? हमारे पास अभी तक यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त शोध नहीं है कि प्रचार विभिन्न वर्गों के लिए कैसे काम करता है। लेकिन पिरामिड के निचले और सबसे निचले छोर यानी निचले तबकों के मतदाताओं के लिए, क्या यह वास्तव में मायने रखता है कि संसद और विधान सभाओं के सदस्यों को खरीदा जा रहा है, या दलबदल की योजना बनाई जा रही है, या टीवी और सोशल मीडिया दुष्प्रचार कर रहे हैं, या सत्तारूढ़ पार्टी व्यापारी वर्ग के साथ जबरन वसूली कर रही है? जब लोग रोजगार और नौकरियों के लिए बेताब हैं और वेतन का स्तर बहुत कम है, तो वे इस बार अपना वोट बदल सकते हैं, लेकिन अगले चुनाव में, यह नतीजे फिर से बदल सकते हैं।

(सेवंती निनान वरिष्ठ मीडिया टिप्पणीकार हैं। वे द हूट.ओआरजी की संस्थापक संपादक थीं। मूल अंग्रेजी लेख को अनुवाद कर सामयिक वार्ता में प्रकाशित करने की उन्होंने इजाजत दी है।)

भारत के लिए हम भारतीयों का संघर्ष

तीस्ता सीतलवाड़

आज हम लेखक, पत्रकार एवं जन-आन्दोलनों के कार्यकर्ता एक ऐसे भारत के बारे में चिंतित हैं जहां पुलिस शासन का रौब है, आतंक एवं भय का माहौल है, सत्ता की क्रूरता है, राजनीतिक सत्ता और कॉरपोरेट की आर्थिक सत्ता का गठजोड़ है और इन सब वजहों से संघीय ढांचे का निरंतर क्षरण हो रहा है, लोकतांत्रिक मूल्यों को खत्म किया जा रहा है। हम विकासशील देशों के नेता के रूप में जिस लोकतंत्र पर गर्व करते थे इसे आज आंशिक स्वतंत्र (फ्रीडम हाउस 2021) और आंशिक रूप से स्वतंत्र चुनावी एकतंत्र (वैराइटी ऑफ़ डेमोक्रेसी इंस्टीट्यूट 2021) कहा जा रहा है। वी.डेम की 2023 की रिपोर्ट में भारत को पिछले 10 वर्षों का सबसे खराब एकतंत्र कहा गया है (पेज 10 का ब्लर्ब)और भारत को लिबरल डेमोक्रेसी इंडेक्स के 97वें रैंक पर रखा गया है जो 40 से 50 प्रतिशत नीचे है। भारत इलेक्टोरल डेमोक्रेसी इंडेक्स में 108वें स्थान पर है और समतावादी घटक सूचकांक (इग्लैटेरियन कम्पोनेंट इनडेक्स)में 123 स्थान पर है।

भारत में स्वतंत्रता और लोकतंत्र के बारे में तीन संस्थाओं के विचार एक जैसे हैं (2020 का रिकार्ड)। ये संस्थाएं हैं- स्विडन स्थित वैराइटी ऑफ़ डेमोक्रेसी (वी डेम) संस्था, अमेरिका स्थित गैर लाभकारी संगठन फ्रीडम हाउस और द इकोनॉमिस्ट यूनिट की इंटेलिजेंस यूनिट। विशेष रुप से भारत की स्थिति के बारे में बताते हुए वी डेम संस्थान के अध्ययन में भारत को चुनावी एकतंत्र कहा गया है, जबकि फ्रीडम हाउस ने भारत को 'स्वतंत्र लोकतंत्र' से अवनत करके 'आंशिक रुप से स्वतंत्र लोकतंत्र' का दर्जा दिया है। द इकनौमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट द्वारा प्रकाशित लोकतंत्र सूचकांक में भारत को दोषपूर्ण लोकतंत्र कहा गया है।

इन सभी अध्ययनों में भारतीय जनता पार्टी नीत मौजूदा केन्द्र सरकार को लोकतंत्र के क्षरण के लिए जिम्मेदार माना गया है। इन अध्ययनों में इन बातों की ओर ध्यान दिलाया गया है कि मौजूदा शासन में मानवाधिकार समूहों पर व्यापक आक्रमण किया गया, पत्रकारों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं का उत्पीड़न हुआ, अल्पसंख्यक समुदायों, विशेषकर मुसलमानों पर हमले बढ़े।

धर्मतंत्र या आदिम तानाशाही का खतरा?

हम लोगों ने 1975-77 का आपातकाल देखा है, लेकिन आज की स्थिति वैचारिक रुप से अलग है। संस्थाओं को खत्म किया जा रहा है जो हमारे संविधान को बचाती हैं। हमारी संस्थाओं में चेक एण्ड बैलेंस की जो परम्परा थी उसको भी क्षति पहुँचाई जा रही है। संसदीय लोकतंत्र में प्रक्रियाओं का पालन करना विशेष महत्व रखता है लेकिन आज इसका उल्लघंन होता हुआ दिख रहा है।

उदाहरण के तौर पर हमनें देखा कि किस तरह संसद सदस्यों को संसद से निष्कासित किया गया (2023), कैसे बिल पास कराया गया (2014-2023) और उन्हें कानून का रुप दिया गया, किस प्रकार राष्ट्रपति ने मनमुताबिक सहमति दी गई और किस तरह विपक्ष के विधेयकों को (तमिलनाडू, केरल, पंजाब) अस्वीकार किया गया, किस प्रकार राहुल गांधी ओर महुआ मोइत्रा को अयोग्य घोषित किया गया, किस प्रकार कोलेजियम द्वारा संस्तुत कुछ उच्च न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया और कई को अभी तक नहीं नियुक्त किया गया है। उनके योग्य होने के बावजूद विलम्ब किया जा रहा है। इस तरह मनमाने काम किए जा रहे हैं। इस तरह के विनाशकारी कार्य एक विचारधारा के तहत किए जा रहे हैं और यही विचारधारा भारतीय राज्य एवं भारतीय समाज को आकार दे रही है। इन अनर्थकारी कार्यों को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 'समाज का निर्माण' और 'देश का निर्माण' कहता है। कहने की जरुरत नहीं कि उनके दिमाग में समाज के निर्माण का अर्थ एक श्रेष्ठतावादी समाज बनाना है (जिसमें बहुत से लोग बाहर होंगे) और एक ऐसे धार्मिक एकाधिकारवादी राज्य का निर्माण करना है जिसमें नागरिकों को समान अधिकार नहीं होगें।

यह शासन साधारण तौर पर समता, समानता, बंधुत्व और भेदभाव विरोधी है जिसके लिए करोड़ों भारतीयों ने शताब्दियों संघर्ष किया। श्रेष्ठतावादी, बहुसंख्यकवादी विचारधारा धड़ल्ले से जनता के संसाधनों को निजी पूंजी को हस्तांतरित करती जा रही है। हम जानते हैं कि आर्थिक अधिकार और सामाजिक – धार्मिक एवं राजनीतिक अधिकार एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यही सबसे बड़ा जोखिम है।

यह भी कहना जरुरी है कि पूर्व की सरकारें नव-उदारवाद की बुराइयों से प्रभावित रही हैं। उन्होंने भी जन-संसाधनों को निजी पूंजी को हस्तांतरित किया और अल्पसंख्यक – बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता को बढ़ाया, मौजूदा आर्थिक विकास के लिए देश के दरवाजे खोले। लेकिन आज भी उनके विचार तुलनात्मक रुप से इस मामले में अलग हैं कि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक मामलों में उनके पास एक अलग वैचारिक सोच है. अभी भी वे राज्य को कल्याणकारी राज्य के रुप में बनाए रखने की आशा जगाते हैं। यदि हम मनरेगा, सूचना का अधिकार कानून इत्यादि को देखें तो ऐसा लगता है कि संसाधनों के समान वितरण को बढ़ाने के लिए प्रयास किया गया था। यह इस लिए भी हुआ कि उस सरकार में वामदलों की उपस्थिति थी, इसके साथ ही वनकर्मियों एवं वनाधिकार आंदोलनों के लोग भी शामिल थे जिसके चलते जनहितैषी कानून पास किए जा सके। वनाधिकार अधिनियम 2006 इसी समय पास हुआ।

जबकि 2014 के बाद मौजूदा सरकार के शासनकाल में इन आवाजों को विभिन्न स्तरों पर जबरदस्ती कुचला गया। केन्द्र में भाजपा सरकार के होने का यह दूसरा खतरा है। नीतिगत तौर पर और व्यवहार में इस सरकार ने ग्रामीण, खेतीहर, दलित, गरीब, बच्चों, स्त्रीयों, पत्रकारों, शिक्षाविदों, कामगारों, प्रवासी श्रमिकों, आदिवासियों, बनवासियों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया है-मुख्य रुप से धार्मिक अल्पसंख्यक इस आक्रमण के केन्द्र में हैं।

सरकार ने अपने ही लोगों के खिलाफ युद्ध घोषित किया है-

आदिवासी, कामगार , किसान और विशेष रुप से अल्पसंख्यक, इनमें भी मुस्लिम एवं दलित इसके केन्द्र में हैं। ऐसी रणनीति बनाई गई है जिसमें लोकतांत्रिक अधिकारों का क्षरण हो रहा है और राज्य के अपराधिक न्यायप्रणाली को इस तरह तैयार किया जा रहा है कि संविधान विरोधी नीतियों और सरकार के विरुद्ध बोलने वालों, प्रदर्शन करने का साहस करने वालों को सजा देकर उनका मनोबल तोड़ा जा सके। लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए लड़नेवालों को गिरफ्तार करने का ऐसा प्रयास पहले कभी नहीं किया गया। मैनें पन्द्रह- सोलह साल की अवस्था में 1970 के दशक में एकतंत्रीय प्रवृत्तियों को बढ़ते हुए देखा है, ऐतिहासिक रेल हड़ताल और उसके बाद लोकतांत्रिक स्वतंत्रता को खत्म करने के प्रयासों को भी देखा है -जब भारत के मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति में हस्तक्षेप किया गया और आपातकाल घोषित किया गया, मीडिया घरानों पर हमला बोला गया और बड़ी संख्या में लोगों को गिरफ्तार किया गया.

उस समय और इस समय कि कार्यवाही में एक बड़ा फर्क यह है कि आज की सरकार बहुत ही बेशर्मी से (हिन्दु राष्ट्) के प्रति अपनी निष्ठा के अंतर्गत एक धार्मिक राज्य के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध दिखाई पड़ती है। जाहिर है कि इससे भारतीय संविधान और इसके आदर्श मूल्यों , समता और गैर भेदभाव तथा समान नागरिकता के मूल्यों को ठेस पहुँच रही है। हम राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के वेबसाइट और गोलवरकर (बंच ऑफ़ थॉट) में जो देखते हैं उसी की पूरी गूंज मौजूदा सरकार में दिखाई और सुनाई पड़ रही है, जबकि इन्होनें भारतीय संविधान की शपथ लेकर सत्ता संभाली है। अब यह कहने की बात नहीं रह गई है बल्कि सीधे-सीधे अनुभव हो रहा है कि एक बहुसंख्यक शासन ने पिछले आठ वर्षों में किस तरह भेदभाव से भरा शासन किया है, नफरती अपराधों को बढ़ावा दिया है और नफरती भाषणों पर कोई कार्यवाही नहीं की है।

सामान्य तौर पर कहा जाए तो आज एक ऐसे बहुमत की सरकार है जिसके प्रतिनिधियों का व्यापक हिस्सा सरकार में, संसद में और राज्य के विधान सभाओं में समानता एवं गैर-भेदभाव के प्रति सचेत नहीं है और न ही उसे भारतीय संविधान में निहित अधिकारों की कोई चिन्ता है। हालांकि तानाशाही ने अभी पूरी तरह से हमें अपनी गिरफ्त में नहीं लिया है लेकिन हमारे लोकतांत्रिक संस्थाओं, जो लोकतंत्र कि नाड़ी के रुप में हैं, की कड़ी परीक्षा ली जा रही है और इसका प्रतिरोध करने वालों को कड़वे अनुभव हो रहे हैं। हालांकि तानाशाही हमारे भारतीय लोकतांत्रिक राज्य को पूरी तरह से उखाड़ नहीं सकती है लेकिन आज फासीवाद सत्ता के महत्वपूर्ण केन्द्रों पर काबिज हैं।

2014 से हम एक (चुनी हुई) ताकतवर पुर्ण बहुमत वाली सरकार को देख रहे हैं, जो संसदीय व्यवहारों, बहसों, चेक एण्ड बैलेंस प्रणाली को धत्ता बताते हुए बिना पर्याप्त विचार-विमर्श और बहस के कानून बना रही है अथवा इसे संशोधित कर रही है। यह अघोषित रुप से आपातकाल जैसी स्थिति है। एक बहुसंख्यक सरकार ने संस्थाओं को नष्ट करते हुए 'लोकतांत्रिक सरकार' सुनिश्चित किया है। विशेष रुप से संसद, चुनाव आयोग, मीडिया एवं न्यायलय को बुरी तरह प्रभावित किया गया है।

कानून इस समय (चुने हुए) लोगों को सजा देने का माध्यम बन गया है, कुछ व्यक्तियों एवं संगठनों के साथ शत्रु जैसा व्यवहार किया जा रहा है। एक स्वतंत्र संस्था के रुप में

न्यायालय मूलभूत स्वतंत्रता की गारंटी नहीं रह गया है।

125 करोड़ से अधिक आबादी वाले देश में न्याय की पहुँच –कानूनी सहायता तक पहुँचने के लिए मात्र 75 पैसे प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति व्यय किया जा रहा है(इंडियन जस्टिस रिपोर्ट 2019)। जबकि लोकतांत्रिक कार्य-व्यवहारों की गति तेजी से अवरुद्ध हो रही है, भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा राज्यों के चुनाव सही तरीके से नहीं घोषित किए जा रहे हैं , लोक-विमर्श में हिंसक बयानबाजी की जा रही है और स्त्री-पुरुष दोनों ही नफरती भाषण दे कर संघर्ष को जन्म दे रहे हैं। ऐसे लोग सत्ता और सरकार के महत्वपूर्ण पदों पर बैठे हैं।

यदि हम पिछले पांच वर्षो का मूल्यांकन करें, यानि 2019 के बाद के दूसरे कार्यकाल का, और अनुच्छेद 370 को हटाने के तौर-तरीकों को छोड़ भी दें, तब भी हम यह देखते हैं की कैसे लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों पर क्रूर हमले किये गये हैं और चुने हुए विपक्ष (चाहे वह छोटा हो या बड़ा) के महत्व को किनारे लगाया गया है। राज्य सरकारों को अपदस्त करने के कितने बुरे तरीके अपनाए गये हैं और विपक्षी पार्टीयों के साथ कैसा बुरा व्यवहार किया जा रहा है। सत्ता पुलिस राज के माध्यम से आक्रामक रुप से एजेंसियों का प्रयोग करते हुए एक डरे हुए समाज का निर्माण कर रही है।

इसके पहले वाले टर्म में रातोंरात नोटबंदी के माध्यम से अनौपचारिक अर्थतंत्र और छोटे व्यवसायों को चौपट किया गया। नोटबंदी के पीछे काले धन की वापसी का दावा किया गया था और हुआ यह कि भारतीय रिजर्व बैंक के अपने आंकड़े के अनुसार 90 प्रतिशत मुद्रा राज्य के खजाने में वापस आ गई। कामगारों के अधिकार, आदिवासियों एंव छोटे किसानों के भूमि के दामों पर पहले ही टर्म में हमले शुरु हो गये थे। इसके लिए भूमि अधिग्रहण केन्द्रीय कानून (जिसे जनता के लंबे प्रतिरोध के बाद संशोधित किया गया था) को सामाजिक आडिट एवं जन-उत्तरदायित्व सिद्धान्त से एक महीने के भीतर ही निष्क्रिय कर दिया गया। इसका मजबूत विरोध विपक्ष के द्वारा किया गया लेकिन अगले कुछ वर्षों में भाजपा शासित सरकारों ने कम से कम छः राज्यों में लघु भूमि धारकों के विरोध में संशोधन सुनिश्चित कर लिया।

इस सरकार द्वारा हमारे विद्यार्थियों, उनके अध्येतावृत्ति और विश्वविद्यालयों को भी निशाना बनाया गया है। अध्येतावृत्ति में कटौती की गई है। उत्तर प्रदेश के दादरी में पहली भीड़ हिंसा का शिकार मोहम्मद अखलाक हुआ, जिससे राष्ट्रीय – अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आक्रोश पैदा हुआ। लिंचिंग रुकी नहीं है बल्कि विरोध की आवाजें ही थककर दब गई हैं। 2016 में पूना में और अहमदाबाद के नजदीक खेड़ा में मुसलमानों के विरुद्ध जिस तरह की कार्यवाही की गई और इन घटनाओं के बाद जिस तरह 'राष्ट्रीय चुप्पी' छाई रही उस पर आत्मपरीक्षण करने की जरुरत है। उस समय जो विरोध हुए या जो अभी हो रहे हैं उन्हें दबाने का नया और क्रूर तरीका सामने आ रहा है।

विरोध का नारा था 'आजादी'। जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के छात्रों ने इसे एक सकारात्मक नारा बना दिया। सब कुछ इन नारों के भीतर आ जाता है –

हम लड़कर लेंगें आजादी
नफरत – हिंसा से आजादी
जातिवाद से आजादी
मनुवाद से आजादी
पूँजीवाद से आजादी
मोदीराज से आजादी

हालांकि 2019 के बाद क्रूर हमले और बढ़ गए।

2019 के अंत में बिना सोचे समझे एकतरफा लॉकडॉन घोषित किया। उस समय नागरिक अधिनियम 1955 में संशोधन के खिलाफ व्यापक लोकतांत्रिक प्रतिरोध चल रहा था। दिल्ली की सड़कों पर जामिया – मिलिया के पास आन्दोलनकारियों द्वारा हबीब-जलीब (दस्तूर) और फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की गजल (हम देखेगें) को एक साथ गाया जा रहा था। संभवतः यह प्रतिरोध की सबसे सुंदर आवाज थी। भारतीय संविधान की भावना को संसद के भीतर से जिस प्रकार आहत किया था उसकी भरपाई के लिए लोग सड़कों पर आ गए थे।

सी.ए.ए.- एन.आर.सी.-एन.पी.आर. का प्रतिरोध बहुत तेजी से धर्मनिरपेक्ष स्वरुप में आगे बढ़ा था और इसके नेतृत्व में सभी भारतीय शामिल थे। इस मुद्दे ने मुस्लिम समुदाय को आंदोलित कर दिया था और आज भी

नागरिकता अधिनियम (सी. ए.ए.), प्रस्तावित राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एन.पी.आर.), और राष्ट्रीय नागरिक पंजीकरण (एन. आर.सी.) का खतरा बना हुआ है। नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 बिना विचार किए एवं बिना बहस के आधी रात में पारित किया गया जिसमें असंवैधानिक संशोधन किये गये हैं। सरकार ने देश व्यापी सुदृढ़ प्रतिरोध के बाद इसे वापस लिया। मुम्बई (जिसे सामान्यतः कम प्रतिक्रिया देनेवाला क्षेत्र माना जाता है) में 19 दिसम्बर को अगस्त क्रान्ति मैदान में तीस हजार लोंगों ने मौन विरोध किया, जो एक एतिहासिक घटना थी। आसाम में राष्ट्रीय नागरिक पंजीकरण की कार्यवाई के

दौरान ऐसी तमाम घटनाऐं घटी जिसके चलते गृहमंत्री एंव प्रधानमंत्री को असंगत, अंतर्विरोधि रक्षात्मक बयान देने पड़े। सी.ए.ए- एन.पी.आर.-एन.आर.सी. को दक्षिणपंथी शासन के त्रिशूल के रुप में देखा गया।

आज राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर को अखिल भारतीय स्तर पर तैयार किया जा रहा है और इसके लिए नागरिकता अधिनियम 1955 (2003 में संशोधित) की धारा 14ए में की गयी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए कोई कार्य नहीं किया जा रहा है।

लॉकडाउन की त्रासदी, जिसमें 63 करोड़ भारतीय कामगार विस्थापित हुए, उड़ीसा में हजारों प्रवासी कामगार विस्थापित हुए, ने सभी भारतीयों को हिला दिया। इसके बाद दिल्ली की बंदी ने केन्द्रीय सरकार की पोल खोल दी। इस दौरान तमाम नफरती भाषण दिये गए और उन पर कोई कार्यवायी नहीं की गयी बल्कि पीड़ितों को ही निशाना बनाया गया। आंदोलनकर्ताओं को विशेष रुप से लक्षित किया गया और उन्हें जेल में डालने की कार्यवाई की गई।

भीमा कोरेगाँव जैसे मामलों में आज भी लोग सलाखों के पीछे हैं। 2004 में यू.ए.पी.ए. अनलॉफुल एक्टिविटीज प्रीवेंशन अमेंडमेंट ऐक्ट पास किया गया। इसमें 2008 में संशोधन किया गया जिसका विरोध संसद में सिर्फ कमयुनिस्ट पार्टी ने किया। पुनः इसमें 2019 में संशोधन किया गया। यहाँ तक कि यू.ए.पी.ए. लागु न होने कि स्थिति में भी बहुसंख्यक भाजपा राज्यों एवं दूसरे राज्यों में पुलिस राज्य एक सच्चाई है।

भारतीयों के एक बड़े हिस्से को सामाजिक, सांस्कृतिक, एंव आर्थिक दृष्टि से हासिए पर डालते हुए देखा जा रहा है। आक्सफैम इण्डिया डिसक्रिमिनेशन रिपोर्ट असमानता की कहानी को बताती है। संक्षेप में कहा जाए तो, 'भारत के मामले में विशेष रुप से चिन्ताजनक बात यह है कि आर्थिक असमानता एक ऐसे समाज में गहराता जा रहा है जो पहले से ही जाति, धर्म, क्षेत्र और लिंग के आधार पर बटा हुआ है। '(प्रो. हिमांशु, जे.एन.यू.)

भारत एक ओर विश्व की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था है तो दूसरी ओर यहाँ सबसे ज्यादा असमानता भी है।

पिछले तीन दशकों में असमानता सबसे तेजी से बढ़ी है। सबसे धनी लोगों ने संपत्ति के बड़े हिस्से पर घोर पूँजीवाद और उत्तराधिकार के माध्यम से कब्जा किया है।

वे बहुत तेजी से धनी हो रहे हैं जबकि गरीब अभी भी न्यूनतम वेतन तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एंव स्वास्थ्य सेवाओं के लिये संघर्ष कर रहा है क्योंकि इसपर सरकार बहुत कम खर्च कर रही है। इस बढ़ती खाई और असमानता ने सबसे ज्यादा महिलाओं और बच्चों को प्रभावित किया है।

आंकड़ों की तरफ देखें! (ऑक्सफैम रिपोर्ट)

भारतीय आबादी के लगभग 10 प्रतिशत लोगों का कब्जा 77 प्रतिशत कुल राष्ट्रीय संपत्ति पर है। 2017 में उत्पन्न 73 प्रतिशत धन पर लगभग 1 प्रतिशत धनी लोगों का कब्जा है। जबकि 670 मिलियन भारतीय, जो देश के सबसे गरीब लोग हैं, उनकी संपत्ति में मात्र 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

भारत में 119 अरबपति हैं। इनकी संख्या सन् 2000 में मात्र 9 से बढ़कर सन् 2017 में 101 हो गई। 2018 से 2022 के बीच में भारत में अनुमानतः हर दिन 70 नए करोड़पति बन रहे हैं।

एक दशक में अरबपतियों की संपत्ति लगभग दस गुना बढ़ गई और उनकी संपत्ति वित्तीय वर्ष 2018-19 के बजट (24422 अरब रुपए) से प्रायः ज्यादा हो गई।

बहुत से सामान्य भारतीयों को जरूरत भर भी स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं है। 63 मिलियन लोग स्वास्थ्य की लागत के चलते प्रति वर्ष दारिद्रय की स्थिति में पहुंच जाते हैं, यानी हर सेकंड दो लोग।

ग्रामीण भारत के न्यूनतम वेतन पाने वाले कामगारों को भारत की श्रेष्ठ गारमेंट कंपनी के एक्जीक्यूटिव जितना वेतन मिलने में 941 साल लगेंगे।

परिसीमन की चर्चा जिस रुप में की जा रही है यदि हुआ तो यह हमारे मौजूदा प्रातिनिधिक लोकतंत्र को पूरी तरह से खत्म कर देगा। इसीलिए 'हम भारत के लोग' एवं विपक्ष के लिए 2024 के चुनाव में विजय पाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि भाजपा 2019 के लोकसभा चुनाव की तरह 300 सीटों से अधिक पा जाती है और परिसीमन करती है तो मेरे विचार से हम एक बिल्कुल बदला हुआ भारत देखेंगे। इस परिसीमन में यह संभव है कि देश के प्रत्येक कोने का आनुपातिक प्रतिनिधित्व संसद में न हो, जैसा कि आज है। इससे संसदीय लोकतंत्र के व्यवहारों एवं कार्यों को लेकर गंभीर चिंता के संकेत हैं। यह केवल धार्मिक एवं जातिय प्रतिनिधित्व एवं विविधता का मामला नहीं है बल्कि भाषाई विविधता के अनुपात पर भी गंभीर खतरा है। ये सभी भारतीय लोकतंत्र के मुख्य आधार हैं। यहाँ तक कि आसाम, बंगाल अथवा तमिलनाडू के लोगों को भी हाशिए पर डाला जा सकता है। इससे हिन्दी-हिंदू और हिन्दू-राष्ट्र का विचार पूरी तरह से फलित हो जायेगा।

यही आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियां हमारे सामने भयावह चुनौती की तरह खड़ी हैं। इनसे

निपटने के लिए हमें जन-आन्दोलनों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों की और ध्यान देना होगा। नफरत एवं खास समूहों को लक्षित करके चलाई गई हिंसा से नागरिक कार्यवयी द्वारा ही निपटा जा सकता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि 2021-22 में फैले नफरती भाषणों एवं धर्म- संसद द्वारा समुह हिंसा के आह्वान किए गए। विगत वर्ष और इस वर्ष सोशल मीडिया पर मुस्लिम महिलाओं के अवमूल्यन एवं उनकी 'नीलामी' को भी देखा गया। जब हम एकाधिकारवादी बहुसंख्यक राज्य द्वारा उत्पन्न की गई संगठित रुप से नयी परिस्थितियों को देखें और इसके विरुद्ध अपनी समझ बनाएं तो हमें निश्चित रुप से ज्यादा हाशिए पर पड़े हुए समुह और लक्षित भारतीय अल्पसंख्यकों को लेकर एक साथ चलना होगा। यही वह साहसिक गठजोड़ होगा जिसके माध्यम से हम अपने समाज की संरचना को पुनः निर्मित करने में सफल होगें जिसे बुरी तरह से तहस-नहस किया जा रहा है। अब समय आ गया है कि हम सभी भारतीयों के स्वतंत्रता के अधिकार और संविधान को बचाने के लिए अपने सभी आन्दोलनों को पुनः निर्मित करें, उसे फिर से मजबूत बनायें और उसे जमिनी आन्दोलन से जोड़ें।

छोटे और सुदृढ़ रुप में यह कार्य 'सीटिजन फॉर जसटिस एण्ड पीस' (cjp.org.in) द्वारा किया जा रहा है। हालांकि इसे चौतरफा हमले का शिकार बनाया जा रहा है। गुजरात में 2002 के दंगो के उत्पीड़ितों के लिये किए गये कार्यों के अलावा हमनें उत्पीड़कों को सजा दिलाने के लिये भी ठोस न्यायिक उपाय किये। इसके पहले हम लोगों ने अपने संविधान के मूल्यों के प्रसार एवं उसपर चर्चा करने के लिए कक्षाओं को चुना था। वहाँ हम लोगों ने भारत की विविधता पर चर्चा की और यह सुनिश्चित किया कि विद्यालय के वातावरण में अपने इतिहास, अस्मिता और संवादी शिक्षा कि समझ बने (https://cjp.org.in/khoj/)। अब हम आसाम में नागरिकता के सवाल को लेकर जमीनी कार्य कर रहे हैं, अर्ध-न्यायिक उपायों का सहारा ले रहे हैं, हजारों असहाय भारतीयों को कानूनी सहायता पहुंचा रहे हैं जिन्हें जानबूझकर मनमाने तरीके से गैर-भारतीय बताया जा रहा है (https://cjp.org.in/assam/)। पूर्वांचल में हम युवाओं, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, वकीलों के साथ काम करते हुए घृणा के खिलाफ वातावरण बना रहे हैं और विविधता एवं संवाद के प्रति समझ पैदा कर रहे हैं। मुम्बई में हम मोहल्ला समितियों को मजबूत कर रहे हैं और हमारा संकल्प है कि भारत के हर जिले और राज्य में संविधान के प्रहरी के रुप में शांति कार्यकर्ताओं की टीम बनाएं। इस सामूहिक प्रयास में आप सभी की भागीदारी जरुरी है।

भारत में उत्तर –औपनिवेशिक शासन अंतर्विरोधों से भरा हुआ है। एक ओर आर्थिक एवं सामाजिक विकास, विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार के क्षेत्र में प्रगति के लिए निवेश, उद्योगों के विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की ईकाइयों की स्थापना की गई, कला, साहित्य एवं संचार के क्षेत्र में कार्य हुए, जमींदारी अधिनियम खत्म किया गया, विकास के नए-नए कार्य हुए एवं सरकारों इत्यादि का गठन हुआ, लेकिन इसके साथ ही राष्ट्र निर्माण के शुरुआती वर्षों में ही दामोदर घाटी (पश्चिम बंगाल, झारखण्ड), हीराकुण्ड (उड़ीसा) एवं भाखरानागल (पंजाब) के लोगों को राष्ट्र –निर्माण के नाम पर उनकी जीविका और उनकी भूमि से वंचित कर त्याग के लिये मजबूर किया गया। अर्थशास्त्र के विद्वानों ने इसे शक्तिशाली देश और मजबूत अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए अवश्यंभावी क्षति के रुप में देखा। वन कानून जैसे अनेक औपनिवेशिक कानून और वन विभाग जैसे संस्थान आज भी बने हुए हैं। भारतीय वन अधिनियम 1927 को अभी तक निरस्त नहीं किया गया है। सी.आर.पी.सी., आई.पी.सी. और भारतीय पुलिस अधिनियम की शक्तियों में बदलाव नहीं किया गया है। अभी भी उनके पास गिरफ्तार करने, निरुद्ध करने, आत्मस्वीकृति का प्रयोग करने, यहाँ तक कि यातना देने की शक्ति है।

इन औपनिवेशिक कानूनों के चलते राज्य को संसाधनों पर कब्जा करने का असीमित अधिकार है एवं जन-सामान्य को वह शक्ति प्राप्त नहीं है। इसी कारण से 'विकास' एवं 'राष्ट्र निर्माण' के नाम पर जन-सामान्य को संसाधनों से समृद्ध राज्य में भी संसाधनों से बंचित होने की सजा भुगतनी पड़ती है। शक्तियों के इस असंतुलन के परिणामस्वरुप लाखों-लाख लोग आन्तरिक विस्थापन का शिकार हो कर दूसरे राज्य में जाते हैं और धीरे-धीरे वे अनौपचारिक रुप से मजदूर बन कर रह जाते हैं। भारतीय राष्ट्र-राज्य औपनिवेशिक कानूनों की छाया से दूर भी नहीं हो पाया था कि 1990 में नव-उदारवाद के सामने समर्पित हो गया।

आज निजीकरण का जो दौर चल रहा है उसकी जड़ में 1990 से शुरू हुआ उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण है। औपनिवेशीकरण, नव-औपनिवेशीकरण के इस नये दौर का बदलाव ब्रेटन वुड संस्थाओं के कारण हुआ जिसे गैट एंव डब्लु .टी .ओ. की शक्ति प्राप्त है। इसने यह सुनिश्चित किया कि कमजोर भारतीय सरकार कल्याणकारी राज्य के अपने मार्ग से हटकर इनके मार्ग पर चलें। अनेक

जन-आन्दोलनों वन एवं आदिवासी आन्दोलनों, विस्थापित आन्दोलनों, कृषक आन्दोंलनों, ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध संघर्ष, पितृ सत्ता, सांमतवाद, जाति एंव वर्ग शोषण, भूख, भूमि एंव वन संबंधी शोषण के खिलाफ संघर्ष के कारण ही एक नया राजनीतिक वर्ग बना जो स्वतंत्रता के पहले दशक में समावेशी नीतियों के निर्माण में लगा। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सूचना का अधिकार अधिनियम, ग्रामीण मजदूरों के सामाजिक सुरक्षा के लिए लाया गया मनरेगा कानून, चाहे इसमें जो कमियां रहीं हो, वन अधिकार अधिनियम 2006, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2004 से 2014 के दशक के दौरान ही अपने अस्तित्व में आये। इसके बाद तो इन पुराने कानूनों पर तेजी से संस्थागत हमला किया गया।

2019 फरवरी में सर्वोच्च न्यायालय के एक आदेश ने लाखों आदिवासियों एवं बनवासियों को अपना स्थान खाली करने का आदेश दिया लेकिन राष्ट्र विरोध के चलते दस दिन के भीतर ही इसी न्यायालय ने स्थगन का आदेश भी जारी किया। भारत के आदिवासियों और वनवासियों के लिए भूमि के महत्व और उनके जीविका के अधिकार को समानान्तर कानून बना कर कम करने का प्रयास जारी है। उदाहरण के तौर पर 'खनिज एवं खदान' (विकास एवं विनिमय अधिनियम), 1957 में 2015 एंव 2020 में किया गया संसोधन, वनीकरण क्षतिपूर्ति कोष अधिनियम 2016, राष्ट्रीय जलमार्ग अधिनियम 2016, पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन अधिनियम 2006(ई.आई.ए.2020) और अब वन संरक्षण (अधिनियम) नियम 2022 से इसे समझा जा सकता है। राज्य द्वारा किए गये चालाकी भरे ये सभी समानान्तर प्रयास लोगों की भूमि एवं जीविका के अधिकार को गंभीर क्षति पहूँचा रहे हैं। अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकार पहचान) अधिनियम 2006 (जिसका लोकप्रिय नाम एफ. आर. ए. 2006 है) को लागू करने में बाधा है क्योंकि भारतीय संसद एवं राज्य भारतीय वन अधिनियम 1927 को निरस्त करने में विफल रहे हैं जिसके कारण वन विभाग को अधिकार प्राप्त हैं। 1990 के बाद के दिनों में 'सुधार' के नाम पर अनेक प्रगतिशील सामाजिक नियमों में तेजी से बदलाव किए गए जिन्हें पूरे भारत में लंबे राजनीतिक, सामाजिक आंदोलनों के बाद प्राप्त किया गया था। कृषि मजदूर, पर्यावरण, पारंपरिक जीविका, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को आर्थिक सुधार के नाम पर खत्म किया गया जिससे भारतीय संविधान के अनेक प्रावधान निष्प्रभावी हो गए।

आज उन समुदायों को 'नए भारत' के निर्माण के लिए बुरी तरह से कुचला जा रहा है और उनके पास जो कुछ है उनसे वंचित किया जा रहा है। खनन, बांध, औद्योगिक कॉरिडोर एवं परियोजनाएं, रियल स्टेट, ताप ऊर्जा परियोजना, परमाणु परियोजना, हाईवे एवं सड़क सरंचना, पोर्ट, इत्यादि के विकास के लिए इन्ही समुदायों की बलि ली जा रही है और यह सब कुछ स्पष्ट रूप से भारत को 'महाशक्ति' बनाने के लिए किया जा रहा है। इस एकतरफा 'विकास' में न तो जिम्मेदारी का बोध है, न संसाधनों की उत्तरजीविता का, है तो बस लालच! और यह लालच आर्थिक असमानता, सामाजिक असंतोष, बेरोजगारी, और मानव पीड़ा को जन्म दे रहा है। पहले से फर्क यह है कि पहले यह कार्य 'राष्ट्र निर्माण' और 'जनता के लिए' किया जाता था लेकिन आज देश और लोगों की कीमत पर निजी मुनाफे के लिए किया जा रहा है। यह बड़े कॉरपोरेट घरानों और घोर पूंजीवाद के सामने सरकार का समर्पण है जो महामारी के दौरान भी लाभ उठाने से नही चूकती। नव-उदारवादी युग के तीन दशक के बाद हम एक सांप्रदायिक, एकाधिकारवादी, ब्राह्मणवादी, एवं पितृ-सत्तात्मक राज्य देखते हैं जिसमे बड़ी ही सहजता से नव-उदारवादी संरचना से ताल मेल बैठा कर विकास के जन हितैषी, लोकतांत्रिक, प्रगतिशील मॉडल को किनारे लगा दिया गया।

आज विद्यार्थियों, कार्यकर्ताओं, नागरिक-स्वतंत्रता कार्यकर्ताओं, सामाजिक आंदोलनों के लोगों पर निरंतर हमले किए जा रहे हैं और उन्हें गिरफ्तार किया जा रहा है। सरकारी योजनाओं के विरुद्ध आवाज उठाने वालों को चुप कराया जा रहा है और विकास के एजेंडा को जबरदस्ती चलाया जा रहा है।

आज हमे किसान आंदोलन से प्रेरणा लेने की जरूरत है, जिन्होंने नवंबर (बल्कि जून) 2020 से दिसंबर 2021 तक का लंबा संघर्ष चलाया। जन आंदोलनों (लघु किसान, महिला किसान, दलित, कृषि मजदूर, आदिवासी एवं किसान) के अंतर्विरोधों को समझते एवं स्वीकार करते हुए हमे सामूहिक प्रतिरोध की चेतना को मजबूत करना चाहिए और इस नई समझदारी के साथ सत्ता को चुनौती देनी चाहिए। इसीलिए आज हमे अपने संघर्ष को नव-औपनिवेशिक संघर्ष के विरुद्ध नया आयाम जोड़ते हुए केवल जीविका एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण तक सीमित न हो कर घृणा, अन्याय, लक्षित हिंसा एवं पूर्वाग्रह के विरोध तक ले जाना होगा। इसीलिए प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित समुदायों को संगठित हो कर जल, जंगल, जमीन की लूट के विरुद्ध संघर्ष करना होगा और संसाधनों पर

अपने प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए कटिबद्ध होना होगा। संयुक्त पहलकदमी करते हुए हमे ऐसे रचनात्मक एवं प्रभावी कदम उठाने चाहिए जिससे प्रगतिशील कानूनों- एफ.आर.ए 2006, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र तक विस्तारित) अधिनियम, 1996, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 तथा भूमि अधिग्रहण में उचित मुआवजा एवं पारदर्शिता का अधिकार, पुनर्वास एवं पुनःस्थापना (संशोधन) बिल, 2015 जैसे कानून प्रभावी ढंग से लागू किए जा सकें। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित जन समुदायों के विविध आंदोलनों के लिए महत्त्वपूर्ण राजनीतिक आधार बनेगा। इस तरह के आंदोलन भारतीयों को फिर से संगठित एवं भारतीय संविधान के निहित मूल्यों को लागू करने के लिए संघर्ष करने हेतु प्रेरित करेंगे। कहने की जरूरत नहीं कि यह मूल्य भारतीय जन समुदाय के संघर्ष के फल स्वरूप ही हमे प्राप्त हुए थे। हममें से बहुत लोगों के लिए पिछले कुछ वर्ष कठिन रहे हैं और कुछ लोगों को तो लक्षित करके अपमानित भी किया गया है।

जेल के कठिन दिनों में मुझे उस समय मैत्री का गहरा अनुभव हुआ जब देश के हर गांव और शहर से प्रेम भरे पत्र मुझे प्राप्त हुए। सचमुच यह अविस्मरणीय था। हस्त लिखित यह पोस्ट कार्ड साबरमती महिला जेल में जब मुझे मिलते थे तो इनके संदेशों को पढ़ कर मेरी सारी निराशा और अकेलापन दूर हो जाता था। कस्तूरबा गांधी भी इसी जेल में रहीं थीं और उनकी आत्मा मेरे साथ थी। एक पोस्ट कार्ड पर मेरे मित्र द्वारा लिखे गए कुछ शब्द मैं आपके साथ साझा करना चाहूंगीः

'खूब ख्याल रखना अपना! मायूस बस पल भर होना, ज्यादा नहीं! आयेंगे वो दिन जिस दिन के लिए तुम वहां हो...हम सब, साथ-साथ और अलग-अलग तुमको याद करते हैं। तुम ताकत हो हमारी। आसमान, चिड़िया, मिट्टी, फूल, और ध्वायी....तुमको प्यार दे...' यह और इस तरह के जाने कितने पत्रों से न केवल मेरी आंख में आसूं आए बल्कि मेरा मन हल्का हुआ और मजबूत भी बना।

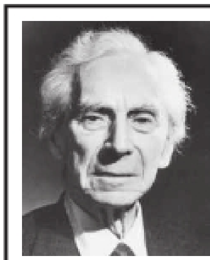
हाल ही में एक मित्र और साथी ने नव-फासीवाद पर एक लेख लिखा जिसमे उन्होंने इतिहासकार लॉरेंस ब्रिट को उद्धृत किया। लॉरेंस ब्रिट ने हिटलर (जर्मनी), मुसोलिनी (इटली), फ्रैंको (स्पेन), सुहार्तो (इंडोनेशिया), और पीनोचेट (चीले) के फासीवादी शासन का अध्ययन किया और यह पाया कि 14 तत्व इन सबमें सामान्य हैं। ब्रिट ने इन तत्वों को फासीवाद के चरित्र की पहचान बताया है-

1) शक्तिशाली एवं सतत राष्ट्रवाद
2) मानवाधिकारों की पहचान का तिरस्कार
3) शत्रुओं की पहचान/ एकीकरण के लिए बलि का बकरा तलाशना
4) सेना की श्रेष्ठता
5) अनियंत्रित लिंगभेद
6) नियंत्रित मास मीडिया
7) राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति जुनून
8) धर्म और सरकार का मिश्रण
9) कॉरपोरेट शक्तियों का संरक्षण
10) श्रमिक वर्ग का दमन
11) बौद्धिकों एवं कलाओं का तिरस्कार
12) अपराध एवं दंड के प्रति जुनून
13) अनियंत्रित भाई-भतीजावाद एवं भ्रष्टाचार
14) फर्जी चुनाव

नागरिक कार्रवाइयों एवं जन भागीदारी के हमारे आंदोलनों को इन नव फासीवादी लक्षणों को भारत एवं विश्व में पहचानने की जरूरत है और उन्हें चुनौती देने के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं भूमि अधिकारों के आंदोलन को देश से परे पूरी दुनिया में आगे बढ़ने के लिए एका का निर्माण करना होगा।

शायद तब हम एक ऐसा विकेंद्रित लोकतंत्र बना सकेंगे जहां 'स्थानीय' केवल वैश्विक एवं राष्ट्रीय ही नहीं होगा बल्कि बहुमूल्य भी होगा और लोग अपने आकांक्षाओं- भाषा, संस्कृति, एवं धर्म की विविधता के साथ रह सकेंगे। इसी लक्ष्य के लिए हमे कटिबद्ध रूप से आगे बढ़ना चाहिए....

सचिव,
सिटीजन फॉर जस्टिस एंड पीस (cjp.org.in)
अनुवाद : सामयिकवार्ता डेस्क



प्रसिद्ध दार्शनिक,गणितज्ञ, शांतिवादी, राजनीतिक चिंतक और लेखक **बरटेंड रसेल** से पूछा गया कि फासीवाद कैसे शुरू होता है ?

उन्होंने कहा कि फासीवाद पहले मूर्खों को सम्मोहित करता है फिर बुद्धिमानों के मुंह पर 'खोंचा' लगा देता है। (खोंचा गाय-बैल-बछिया के मुंह पर लगाई जाने वाली जाली को कहते हैं जो उसे चरने अथवा दूध पीने से रोकती है।)

साहित्य में समाजवादी मूल्यों को बचाने की चुनौती

प्रियदर्शन

क्या बीते दस वर्षों का साहित्य समाजवादी मूल्यों के लोप का साहित्य है? यह एक सख्त सवाल है जिसका कोई एकरैखिक उत्तर नहीं हो सकता। क्योंकि अंततः किसी भी साहित्य के मूल में समता और न्याय की प्रतिष्ठा का आग्रह अपरिहार्यतः मौजूद होता है। दूसरी बात यह कि ये दस वर्ष किसी शून्य से नहीं आए हैं- इनके पीछे और भी दशक हैं- यानी अगर कोई लोप है तो उसकी एक पृष्ठभूमि है, उसका एक सिलसिला है- उस सिलसिले को पहचाने बिना सारी ज़िम्मेदारी इस एक दशक के कंधों पर नहीं डाली जा सकती।

सबसे पहले तो हम यह समझने की कोशिश करें कि समाजवादी मूल्यों से हमारा क्या आशय है। सबसे प्राथमिक और स्पष्ट आशय तो यही है कि ये समतामूलक मूल्य हैं- इनमें समता का आग्रह है- आर्थिक, सामाजिक, लैंगिक हर तरह की समता का। लेकिन यहां तक यहां एक आदर्श वाक्य या सूक्ति से ज़्यादा कुछ नहीं है, जिससे किसी को एतराज़ नहीं हो सकता। असली बात इसके बाद शुरू होती है। समाजवादी मूल्य हासिल करने का रास्ता क्या हो? आर्थिक बराबरी कैसे आए, सामाजिक समानता का लक्ष्य कैसे अर्जित किया जाए और लैंगिक बराबरी के स्वप्न को कैसे यथार्थ में बदला जाए। यहां आकर हम पाते हैं कि तरह-तरह के टकराव शुरू हो जाते हैं। इन लक्ष्यों और टकरावों का एक ऐतिहासिक संदर्भ भी है। औद्योगिक क्रांति के बाद जो पूंजीवादी-साम्राज्यवादी समाज यूरोप में विकसित हुआ और एशिया-अफ्रीका का उपनिवेशवाद जिसका सह-उत्पाद रहा, उसके विरुद्ध पहली बड़ी लड़ाई रूस की साम्यवादी क्रांति के ज़रिए लड़ी गई। रूस से चला साम्यवाद का सपना दुनिया के कई देशों में खिलता रहा। भारत की आज़ादी की लड़ाई के दौरान भी इसने बहुत सारे नेताओं और मनीषियों को अनुप्राणित किया। लेकिन बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हम पाते हैं कि पूंजीवाद और साम्यवाद के टकराव ने दुनिया को दो ध्रुवों में बांट दिया। सर्वहारा की तानाशाही का यथार्थ एक अन्य स्तर पर नई विडंबनाएं पैदा करने लगा।

उन्हीं दिनों समाजवादी चिंतन के अगुवा मनीषियों में एक डॉ राममनोहर लोहिया ने कहा था कि साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों एशिया पर हमले के आखिरी औज़ार हैं। उन्होंने भारतीय समाजवाद के अलग रास्ते की वकालत की। वे जानते थे कि भारत की आर्थिक विषमता से बड़ी उसकी सामाजिक विषमता है और यहां का जातिगत भेदभाव तोड़े बिना कोई भी बराबरी संभव नहीं है। उन्होंने जाति तोड़ने के जो प्रमुख फॉर्मूले दिए, उनमें एक हिस्सेदारी का था और एक साझेदारी का। 'संसोपा ने बांधी गांठ, पिछड़ा पावे सौ में साठ' का नारा दरअसल संसाधनों में हिस्सेदारी के सवाल को एक पुख्ता रूप देता था जिसकी बिना पर आने वाले दिनों में पिछड़ा आरक्षण की लड़ाइयां लड़ी गईं। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि जाति तोड़ने के लिए बेटी और रोटी का रिश्ता जोड़ना होगा। भारतीय समाज के संदर्भ में यह लगभग अचूक सूत्र वाक्य था जिस पर अब तक क़रीने से अमल नहीं हो सका है। डॉ लोहिया के संपर्क और प्रभाव में आए लेखकों-कलाकारों और संस्कृतिकर्मियों की एक बड़ी संख्या थी जो अपनी तरह से साहित्य में इन समाजवादी मूल्यों का पोषण कर रही थी। लेकिन तब भी वह सामाजिक तौर पर अभिजात्य साहित्यिक अभिरुचियों का दौर था और वैचारिक तौर पर दो खेमों में बंटा हुआ था- एक तरफ़ प्रगतिशील खेमा था जो साहित्य के सामाजिक उद्देश्यों की बात करता था और दूसरा कलावादी खेमा जो साहित्य को एक स्वायत्त कर्म मानता हुआ इस बात पर ज़ोर देता था कि उसे राजनीतिक आंदोलन का उपकरण मात्र नहीं होना चाहिए।

कहने की ज़रूरत नहीं कि दोनों के अपने सरलीकरण थे, मगर समाजवादी मूल्यों का संवहन करने वाली प्रगतिशील धारा ने बहुत मूल्यवान साहित्य दिया। बहुत सारी अच्छी कविताएं और कहानियां उस दौर की देन हैं। बेशक, यह वह समाजवादी धारा नहीं थी जिसका सपना मार्क्सवाद और पूंजीवाद से अलग एक भारतीय वैचारिकी के रूप में देखा जा रहा था, लेकिन साहित्य में

ऐसी कोई दीवार बनाना न संभव था और न ही उचित। इस लिहाज से मार्क्सवादी साहित्य, नक्सलवादी साहित्य और समाजवादी साहित्य भी एक साझा सपने की ज़मीन पर खड़े थे। इस ज़मीन पर रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से लेकर आलोकधन्वा और मंगलेश डबराल तक की जगह थी। इसी ज़मीन पर बाद के वर्षों में संजीव और शिवमूर्ति की कहानियां थीं- कई महत्वपूर्ण उपन्यास थे।

नब्बे का दशक इस स्थिति को कई स्तरों पर तोड़ता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रूस का साम्यवाद पराजित हो चुका है- वहां से वैचारिक प्रचार-प्रसार के लिए आने वाली बहुत सारी किताबें अब आना बंद हो रही हैं, जर्मनी की दीवार गिर चुकी है, दुनिया में अब अमेरिका का एकध्रुवीय वर्चस्व है। राष्ट्रीय स्तर पर एक तरफ़ समता का सपना मंडल आयोग को लेकर पैदा हुई खदबदाहट के साथ एक आगे बढ़ रहा है तो दूसरी तरफ़ आडवाणी की रथयात्रा के साथ धर्मनिरपेक्ष भारत को हिंदूवादी भारत बनाने का स्वप्न देश भर में एक नई सांप्रदायिक लकीर खींच रहा है।

इस दौर में हिंदी साहित्य के दो रूप दिखते हैं। मंडल के सवाल पर और संसाधनों में सबकी बराबरी के विचार पर मूलतः अगड़ा केंद्रित हिंदी साहित्य दुविधाग्रस्त है। उसके सामने आर्थिक बराबरी और सर्वहारा की तानाशाही वाले खयाल हैं, लेकिन अपने जातिगत वर्चस्व के विरुद्ध बन रही इस नई धारा का वह क्या करे, यह वह समझ नहीं पा रहा। बेशक जो दूसरा मोर्चा है- सांप्रदायिकता का- वहां हिंदी साहित्य अपने समय के दूसरे अनुशासनों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा सख़्ती से खड़ा है। बीते दिनों 'रेत समाधि' के लिए बुकर प्राप्त करने वाली गीतांजलि श्री का उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' उन्हीं दिनों आता है। उन्हीं दिनों दूधनाथ सिंह का 'आख़िरी कलाम' आता है और उन्हीं दिनों गुजरात के दंगों के विरोध में हिंदी में कई यादगार और मानवीय कविताएं लिखी जाती हैं।

लेकिन अब यह दौर बीत चुका है। बीते एक दशक में 40 करोड़ लोगों का जो नया इंडिया बनाया जा रहा है, वह समता की जगह समृद्धि का स्वप्न देख रहा है- इस बात की परवाह किए बिना कि इस समृद्धि की क़ीमत उस 80 करोड़ के भारत को चुकानी पड़ेगी जिसके लिए अब भी मुफ़्त अनाज की योजना चलानी पड़ती है। इस भारत में धर्मनिरपेक्षता को एक संदिग्ध मूल्य बनाया जा रहा है, हिंदूवादी वर्चस्ववाद का चक्र लगभग पूरा हो चुका है और जिस उदारीकरण और निजीकरण को कभी संदेह से देखा जाता था, उसे अब हर बीमारी का रामबाण माना जा रहा है। इस भारत में वे भाषिक आंदोलन भी ख़त्म हो चुके जो कभी समाजवादी आंदोलन के दौरान देखे जाते थे। अब अंग्रेज़ी इस देश की स्वीकृत भाषा है और हिंदी या दूसरी भारतीय भाषाएं अपने अधिकतम अंग्रेज़ीकरण में लगी हैं।

हिंदी साहित्य के लिए यह स्थिति कई स्तरों पर चुनौतीपूर्ण है। एक स्तर का वास्ता तो सीधे उसके अस्तित्व की चुनौती से है। हिंदी में पढ़ना-लिखना लगातार कम हुआ है और किताबों की बिक्री हज़ार से घट कर पांच सौ और पांच सौ से घट कर सौ पर आ चुकी है। हिंदी का समाज अपने लेखक को पहचानता ही नहीं, उसकी बात सुनना तो दूर की बात है। दूसरी बात यह कि इस स्थिति से लड़ने के लिए जो वैचारिक उपकरण चाहिए, संघर्ष की जो आस्था चाहिए, वह इस हिंदी समाज में नहीं बची है। वह सोशल मीडिया पर अपना गुस्सा थूक कर निकल जाता है, वह बड़े युद्धों को छोड़ कर छोटे-छोटे झगड़ों में लिप्त दिखता है, वह सत्ता की अघोषित इमरजेंसी से आतंकित दिखता है और अपने समय का सच कहने से बचता है।

बेशक, इसकी एक प्रतिधारा भी है जो इन्हीं वर्षों में साहित्य और प्रतिरोध को नया रूप दे रही है। वह सोशल मीडिया पर भी मौजूद है और पारंपरिक पत्रिकाओं में भी। वह वर्तमान को भी देख रही है और इतिहास को भी खंगाल रही है। वह कहानी-कविता और उपन्यास से आगे जाकर दूसरी विधाओं में काम कर रही है जिसे इन दिनों कथेतर गद्य कहने का चलन है।

इस पूरे दौर में जो अच्छी बात हुई है, वह अस्मितावादी विमर्श की स्वीकृति है। बीस साल पहले तक जब राजेंद्र यादव दलित और स्त्री विमर्श की बात करते थे तो उनका लगभग मज़ाक बनाया जाता था, कृष्णा सोबती और मृदुला गर्ग जैसी वरिष्ठ लेखिकाएं खुद को नारीवादी कहे जाने से इनकार करती रहीं, लेकिन आज दलित-आदिवासी और स्त्री साहित्य हिंदी का सबसे समृद्ध पक्ष है। स्त्री साहित्य तो इन दिनों हिंदी साहित्य की मुख्यधारा बना हुआ है। बीते दस सालों में स्त्री लेखकों की ऐसी कई रचनाएं आई हैं जिन्हें उनकी लैंगिक पक्षधरता के अलावा अन्य वजहों से भी समाजवादी मूल्यों के करीब माना जा

सकता है। यही स्थिति कविता में भी है। यहां स्त्री रचनात्मकता का पूरा विस्फोट है।

जो सबसे महत्वपूर्ण बात हुई है वह यह कि न सिर्फ इन तबकों से लेखक आए हैं, बल्कि उनके विचार को वह स्वीकृति मिली है कि कोई भी लेखक इसके विरुद्ध नहीं जा सकता। लैंगिक बराबरी को लेकर सिर्फ स्त्रियां ही नहीं लिख रहीं, आज कोई पुरुष लेखक भी यह जोखिम नहीं उठा सकता कि उसकी रचना में पत्नी या प्रेमिका या कोई और स्त्री दोयम दर्जे की नज़र आए या कोई ऐसा नायक प्रतिष्ठित हो जो अपनी जाति पर गर्व करता हो या अपने पुरुष होने पर अभिमान करता हो। यही बात दलित और आदिवासी चेतना को लेकर कही जा सकती है। दलित लेखकों के अलावा भी ऐसे कई लेखक हैं जो दलित संवेदना का वहन करने में सक्षम दिखते हैं। बीते दिनों वायरल हुई एक कविता 'कौन जात हो भाई' के कवि बच्चालाल उन्मेष को लोगों ने स्वतः दलित समझ लिया, जबकि वे जन्मना दलित नहीं हैं। जाहिर है, उनकी रचना में दलित संवेदना की यह ईमानदार उपस्थिति थी जिसकी वजह से यह भ्रम हुआ। इसी तरह पूनम वासम जन्मना आदिवासी नहीं हैं, लेकिन किसी भी अन्य दृष्टि से उनकी कविताएं आदिवासी विमर्श के बाहर नहीं मानी जा सकतीं। उनके यहां भी उजड़ने की पीड़ा, जंगलों के नष्ट होने की तकलीफ़, नदियों के सूखने की व्यथा, पहाड़ों के रेत बनने की कथा और तमाम सांस्कृतिक स्मृतियों और चिह्नों की बेदखली के निशान उतने ही गहराई और सच्चाई से व्यक्त हैं जितने किसी दूसरे आदिवासी कवि के यहां।

तो निश्चय ही साहित्य में यह समाजवादी मूल्यों की उपस्थिति है। लेकिन क्या हमें इससे संतुष्ट हो जाना चाहिए? क्या यह सच नहीं है कि राजनीतिक तौर पर इस समय को बेपर्द करने वाली जो बड़ी रचनाएं हमारे समय आनी चाहिए, वे नज़र नहीं आ रहीं? क्या ये सच नहीं है कि राष्ट्रवाद-विकास और धर्म की चाशनी में पगी जो नई और उद्धत किस्म की भारतीयता परवान चढ़ रही है और जो एक हज़ार साल की स्मृति को नष्ट करने की मुहिम में लगी है, उसके विरुद्ध हिंदी लेखक का प्रतिकार बहुत छोटा और थका हुआ दिखाई पड़ रहा है? वह समग्र वैचारिकी नहीं दिख रही जो किसी लेखक को दिशा और दृष्टि दे और याद दिलाए कि अपने समय की विडंबनाओं को लिखना उसके लिए कितना जरूरी है। उल्टे कलावाद और सौंदर्यवाद की एक अदृश्य क़िस्म का समर्थन जारी है जो शायद हिंदी समाज के अपनी ज़मीन से उखड़ते चले जाने और ग्लोबल बनने-कहलाने की प्रेरणा का नतीजा है? नई हिंदी के नाम पर जो साहित्य लिखा जा रहा है और जिसकी युवाओं में बड़ी पैठ बताई जा रही है, क्या उसकी बौद्धिक दुर्बलताओं की ओर हमारे समय का ध्यान है? क्या हमारे बीच ऐसे आलोचक हैं जो समाजवादी मूल्यों के आईने में मौजूदा दौर के साहित्य को देख सकें?

यह सच है कि बीते दो-एक दशकों में जो ग्लोबल होता भारतीय उच्च मध्यवर्ग है, उसने या तो अपने लेखन की भाषा अंग्रेज़ी कर ली है या फिर अगर वह हिंदी में लिख रहा है तो उसके सरोकार बहुत भिन्न किस्म के हैं। यह भी सच है कि इस दौर में बराबरी का संघर्ष जितना ज़रूरी है, वह उतना ही असंभव साबित होता जा रहा है- साहित्य में भी, समाज में भी और राजनीति में भी। उल्टे एक बड़ी फांक समाज के भीतर पैदा हुई है जिसका आधार सांप्रदायिकता है। हमारे समाज में जो छुपी हुई सांप्रदायिक शक्तियां थीं- 2014 के बाद अचानक वे बेहद मुखर हैं, लगभग निर्लज्जता से अपने एजेंडे का एलान कर रही हैं और उन तमाम साधनों-संसाधनों पर क़ब्ज़ा करने में लगी हैं जो लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष भारत के निर्माण का आधार रहे और उसकी निरंतरता का ईंधन भी। अब अकादेमियों में उनके लोग हैं, विश्वविद्यालयों में उनके लोग हैं, मीडिया में उनके लोग हैं और फिर भी उनकी शिकायत है कि उनकी बात कोई रख नहीं रहा। वे इतिहास बदल रहे हैं, साहित्य बदल रहे हैं, लोगों की वैचारिक प्राथमिकताएं बदल रहे हैं। इस वैचारिक आंधी में बहुत सारे ढुलमुलयक़ीनी वाले लोग सहजता से दूसरे पाले में जा चुके हैं।

तो समाजवादी मूल्यों पर भरोसा करने वालों और लिखने वालों के लिए ये बहुत चुनौती भरा समय है- यह चुनौती अपनी खोई हुई भाषा को बचाने की भी है, अपने खोए हुए सांस्कृतिक मूल्यों को लौटाने की भी है, अपनी वास्तविक स्मृति के संरक्षण की भी है, सांस्कृतिक तौर पर विपन्न और आर्थिक तौर पर आक्रामक बनाए जा रहे मध्यवर्ग को उसका वास्तविक मूल्य-बोध याद दिलाने की भी है। कह सकते हैं कि ऐसी चुनौतियां हमेशा से रही हैं और ऐसे लेखक भी हमेशा से रहे हैं जो इनके पार जाने की कोशिश करते हैं। इस संकटग्रस्त समय में समाजवादी आस्था को बचाए रखने के लिए यह यक़ीन भी ज़रूरी है।

सारी जनता के लिए स्वास्थ्य सेवा का अधिकार सुनिश्चित करने के वास्ते जन आरोग्य अभियान का 'दस सूत्री एजेंडा'!

अभय शुक्ल

आजादी के बाद के पिछले पचहत्तर साल में भारत में जन स्वास्थ्य के मामले में वांछित सुधार नहीं हुए। देहातों और दूर दराज के इलाकों में तो उसकी हालत बहुत ही खराब है, अलबत्ता शहरों में डाक्टरों और प्राइवेट अस्पतालों की संख्या काफी बढ़ी है। पर शहरों में भी पूरी आबादी खासकर गरीबों को मुफ्त इलाज पाने के लिए सरकारी अस्पतालों- क्लिनिकों की सुविधा बिलकुल नाकाफी है। नतीजतन शहरों में गरीबों और मध्यवर्ग को निजी क्लिनिकों और अस्पतालों में अपने खर्च से ही इलाज करवाना होता है। लम्बी और गम्भीर बीमारियां होने पर गरीब लोग बड़ा खर्च करने और कर्ज में डूबने तक को मजबूर होते है।

सामुदायिक स्वास्थ्य और बीमारी रोक थाम व्यवस्था भी लचर ही है। संक्रामक रोग, खराब पानी और भोजन से होने वाली बीमारियों, टीकाकरण, दूषित हवा और वातावरण के बुरे प्रभाव, भोजन में स्वास्थ्यवधर्क तत्वों की कमी, मानसिक रोग, परिवार नियोजन- इन सभी और कई अन्य जरूरतों के लिये सामुदायिक चिकित्सा और रोकथाम का संतोषप्रद इंतजाम कोई सरकार नहीं कर पायी है। सभी पूर्ववर्ती सरकारों का प्रयास मेडिकल कालेजों के खोलने और डाक्टरों की संख्या बढाने और निजी क्लिनिकों और निजी अस्पतालों (वह भी केवल बड़े शहरों में) के खुलने में मददगार होने का रहा है।

पिछले दस वर्षो में भाजपा सरकार ने बीमा और प्राइवेट अस्पतालों- कम्पनियों के माध्यम से 'आयुष्मान भारत' व्यवस्था चलाई है, जो एक बड़ा घोटाला साबित हुई है। यू. पी. ए. सरकार ने 200 8 में बीमा आधारित 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (RSBY)' प्रति परिवार तीस हजार की छोटी राशि से शुरू की; जिसकी असफलता पांच साल में मालूम हो गई थी और इसी अवधि में इस योजना में हुए भ्रष्टाचार का भी पता लग गया था। इसके बावजूद भाजपा सरकार ने बड़े बजट की वैसी ही 'आयुष्मान भारत' योजना शुरू कर दी।

दुनिया के सारे समृद्ध और अन्य प्रगतिशील देश स्वास्थ्य और प्राथमिक- माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था केवल सरकारी संस्थाओं के द्वारा ही करते रहे हैं। इस आम जानकारी के बावजूद भारत की सभी पूर्ववर्ती सरकारों ने देश में सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था को पूरी तरह मजबूत और साधन सम्पन्न नहीं बनाया। बड़े शहरों में तो कुछ चिकित्सक और अस्पताल हैं भी, पर देहातों-गाँवो में तो वे बिल्कुल नगण्य और नाकाफी हैं।

इस हालत में सुधार केवल जन दबाव द्वारा स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण राजनीतिक मसला बनाकर ही लाया जा सकता है। स्वास्थ्य पर सरकारी बजट में किया गया प्रावधान वह महत्वपूर्ण सूचकांक होता है, जिससे पता चलता है कि सरकार स्वास्थ्य को कितना महत्व देती है। 2017 के आंकड़ों पर आधारित नीचे की तालिका में देखें कि विभिन्न देश अपनी सकल घरेलू आय (GDP) का कितना हिस्सा जनता के स्वास्थ्य पर खर्च करते हैं। उसके बाद भी इनमें खास फ़र्क नहीं आया है।

तालिका- 1

स्वास्थ्य पर खर्च होने वाले जी.डी.पी.के अनुपात

देश	जी.डी.पी.	देश	जी.डी.पी.
अमरीका	17 %	ब्राजील	9.5%
स्विट्जरलैंड	12.2%	चीन, मेक्सिको	5.4%
फ्रांस, जर्मनी, स्वीडेन	11.2%	पाकिस्तान	3.2%
जापान	10.9%	बांग्ला देश	2.78%
डेनमार्क, कनाडा, बेल्जियम	10.5%	भारत	1.28%
यू0के0, नॉर्वे	10%		

इस तालिका से पता चलता है कि भारत स्वास्थ्य पर सबसे कम खर्च करता है- बंगला देश और पाकिस्तान से भी कम। आम चुनाव ऐसा समय होता है जब विभिन्न मुद्दों की बहस के बीच स्वास्थ्य और उसके लिए जरूरी सरकारी प्रतिबद्धता के लिए जनमानस तैयार किया जा सकता है। इस उद्देश्य से एक संगठन 'जन आरोग्य अभियान' ने एक दस सूत्री मांग पत्र तैयार किया है- उद्देश्य है कि 2024 के लोक सभा चुनाव प्रचार में इस मांगपत्र (एजेंडा) का

व्यापक प्रचार किया जाए; ताकि अगली सरकार इस उद्देश से प्रतिबद्ध हो सके।

स्वास्थ्य सेवा को 2024 में एक राजनीतिक और चुनावी एजेंडा बनाने की दिशा में जन आरोग्य अभियान द्वारा प्रस्तावित कार्रवाई के ये दस अंतर-संबंधित क्षेत्र हैं।

1. संबंधित कानून के अधिनियमन के माध्यम से स्वास्थ्य के देखरेख का अधिकार सुनिश्चित करना। सार्वजनिक अस्पतालों और जन स्वास्थ्य सुविधाओं के द्वारा सभी के लिए कानूनी रूप से मुफ्त, गुणवत्तापूर्ण सेवाओं की गारंटी।

स्वास्थ्य सेवा के अधिकार को सुनिश्चित करने का मतलब है कि सरकार यह गारंटी देने के लिए एक कानून बनाएगी कि हर कोई सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के द्वारा मुफ्त, गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा प्राप्त कर सके। यदि अनिवार्य सेवाएँ प्रदान नहीं की जाती हैं, तो इन्हें कानूनी अधिकार द्वारा माँगा जा सकता है। कानूनी अधिनियमन के साथ-साथ ग्रामीण और शहरी सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों को प्रमुख रूप से मजबूत किया जाएगा।

भारत जैसी विशाल आबादी के लिए सर्वव्यापक स्वास्थ्य सेवा '(यूनिवर्सल हेल्थ केयर सिस्टम)' का लक्ष्य पाने के लिए केवल केंद्र और राज्य सरकारें सक्षम नहीं हैं। उसके लिए और ज्यादा विकेंद्रित शासन और प्रदाता प्रणाली होनी चाहिए, जिसमे स्थानीय निकायों और समुदायों के अंतर्वेशन (inclusion), सशक्तिकरण और जिम्मेदारी की भी अनिवार्य जरूरत है।

ग्रामीण और शहरी सरकारी स्वास्थ्य प्रणाली को उन्नत किया जाएगा ताकि गाँव या शहरी बस्ती स्तर की सेवाओं से लेकर सुपर स्पेशलिटी सेवाओं तक, सभी प्रकार की सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ मुफ्त उपलब्ध होंगी। स्वास्थ्य सेवा मानकों के अनुसार विभिन्न स्तरों पर स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करते हुए, वर्तमान जनसंख्या मानदंडों के आधार पर सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार किया जाएगा।

2. स्वास्थ्य बजट में बड़ी बढ़ोतरी, सरकारी स्वास्थ्य खर्च दोगुने से भी ज्यादा किए जाने की जरूरत।

सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत और विस्तारित करने के लिए स्वास्थ्य पर बजट में उल्लेखनीय वृद्धि की जरूरत है। यदि सरकार स्वास्थ्य देखभाल पर पर्याप्त धन खर्च करती है, तो लोगों को अपनी जेब से अस्पताल के भारी भरकम बिलों का भुगतान करने के लिए मजबूर नहीं होना पड़ेगा, जिसकी वजह से वे अक्सर कर्ज में डूब जाते हैं। इसलिए, सरकारी स्वास्थ्य व्यय (केंद्र + राज्य सरकारों का) को सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 3% तक पहुँचाना होगा।

महाराष्ट्र का उदाहरण है कि, राज्य सरकार का प्रति व्यक्ति सार्वजनिक स्वास्थ्य पर वार्षिक व्यय केवल 1800 रुपये है, जिसे बढ़ाकर कम से कम 4000 रुपये किया जाना चाहिए।

3. भ्रष्टाचार मुक्त, जवाबदेह और सहभागी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली। समुदाय आधारित निगरानी और योजना निर्माण का राष्ट्रव्यापी विस्तार।

स्वास्थ्य व्यवस्था में भ्रष्टाचार पर लगाम लगेगी और पारदर्शिता आएगी। राज्य भर में स्वास्थ्य सेवाओं के लिए समुदाय-आधारित निगरानी और योजना बनाने को आम किया जाएगा। निगरानी और योजना प्रक्रिया में गांव से लेकर राज्य के सभी स्तरों पर जन प्रतिनिधियों, स्वास्थ्य क्षेत्र के गैर सरकारी संगठनों, जन संगठनों और महिला समूहों को शामिल किया जाएगा। सामाजिक प्रतिनिधियों को शामिल करते हुए शिकायत निवारण तंत्र को प्रभावी बनाया जाएगा।

4. संविदा और योजना कर्मियों का स्थायीकरण, सभी स्वास्थ्य कर्मियों को उचित वेतन और काम का अनुकूल माहौल; राज्यों द्वारा स्वास्थ्य मानव संसाधन नीति बनाना।

स्वास्थ्य कर्मी स्वास्थ्य सेवा की रीढ़ हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। आशा, साहिया, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और अन्य संविदा स्वास्थ्य कर्मचारियों को नियमित किया जाएगा। संविदा मे भर्ती की नीति को समाप्त कर स्वास्थ्य सेवाओं में सभी प्रकार के संविदा कर्मचारियों को वरीयता के आधार पर नियमित करने की समयबद्ध प्रक्रिया लागू की जायेगी। स्वास्थ्य विभाग में सभी रिक्तियां तत्काल भरी जाएंगी और आवश्यकतानुसार नये पद सृजित किये जायेंगे। एएनएम, नर्सों, डॉक्टरों सहित सभी स्वास्थ्य कर्मियों को उचित वेतन दिया जाएगा, और एक अनुकूल कार्य वातावरण बनाया जाएगा। स्वास्थ्य व्यवस्था में अधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती, स्थानांतरण और पदोन्नति की प्रक्रियाओं में पूरी पारदर्शिता होगी। यह सब हासिल करने के लिए, राज्य में एक व्यापक 'स्वास्थ्य मानव संसाधन नीति' बनाई और लागू की जाएगी; जिसमें स्वास्थ्य प्रणाली के कामकाज में लोकतंत्रीकरण, पारदर्शिता और जवाबदेही पर ध्यान दिया जाएगा।

5. सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ सभी आवश्यक दवाएँ

नि:शुल्क प्रदान करेंगी। बाजार में दवाओं की कीमतों को नियंत्रित और किफायती बनाया जाएगा।

सभी राज्यों में, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए दवाओं की खरीद और वितरण के लिए तमिलनाडु (टीएनएमएससी) मॉडल लागू किया जाएगा। पर्याप्त और सक्षम कर्मचारियों के साथ एक वास्तविक स्वायत्त निगम सुनिश्चित करना, खरीद प्रक्रिया में पूर्ण पारदर्शिता, दवाओं की गुणवत्ता का आश्वासन, साथ ही 'पासबुक' प्रणाली के माध्यम से आवश्यकता के अनुसार दवाएं प्राप्त करने के लिए फ्रंटलाइन स्वास्थ्य अधिकारियों को सशक्त बनाना- इस मॉडल के ऐसे सभी तत्वों को लागू किया जाएगा। इसके साथ ही दवाओं पर बजट कम से कम तीन गुना किया जाएगा।

एक प्रणाली स्थापित की जाएगी ताकि बाजार में सभी दवाएं अच्छी गुणवत्ता वाली, वैज्ञानिक मानकों पर आधारित हों और उचित मूल्य पर उपलब्ध हों। सभी दवाओं की कीमतों पर प्रभावी नियंत्रण होगा। एफ0डी0ए0 संचालन में पारदर्शिता होगी और सभी अवैज्ञानिक दवाओं और संयोजित दवाओं का निषेध होगा। डॉक्टरों को सभी दवाएं जेनेरिक नाम से लोक भाषा में लिखनी होंगी और कंपनियों और केमिस्टों को उन्हें जेनेरिक नाम से तथा लोकभाषा मे लेबल छाप कर बेचना होगा; ताकि मरीज इलाज़ का सही पालन कर सके।

6. समाज के सभी वर्गों के लिए सम्मान के साथ स्वास्थ्य सेवा; विशेष जरूरत वाले लोगों के लिए विशेष स्वास्थ्य देखरेख।

हर किसी को सम्मान के साथ स्वास्थ्य देखभाल का अधिकार होगा। महिलाओं, बच्चों, दलितों, आदिवासियों, खानाबदोश समुदायों, मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों, एलजीबीटीक्यू व्यक्तियों, विकलांग, मानसिक रोगियों, वरिष्ठ नागरिकों, एचआईवी-एड्स से पीड़ित लोगों और समाज के अन्य सभी वंचित और हाशिए पर रहने वाले वर्गों को बिना भेदभाव के समावेशी रूप में स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच सुनिश्चित की जाएगी। इनमें से प्रत्येक वर्ग की विशिष्ट स्वास्थ्य जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त सेवाएं प्रदान करने के लिए विशिष्ट पहल की जाएगी।

7. प्रमुख बीमारियों और हालातों के लिए उन्नत कार्यक्रम; बीमारी की रोकथाम और संक्रामक रोग नियंत्रण के लिए बेहतर पहल।

मानसिक स्वास्थ्य, एचआईवी-एड्स, तपेदिक, व्यावसायिक स्वास्थ्य समस्याओं और अन्य प्रमुख बीमारियों से निपटने के लिए वर्तमान पहल अपर्याप्त है या खराब तरीके से लागू की गई है। इसलिए प्रत्येक मामले में संवेदनशील और प्रभावी सेवाएं प्रदान करने वाले बेहतर और विस्तारित स्वास्थ्य कार्यक्रमों की योजना बनाई जाएगी। कोविड महामारी ने हमें सिखाया है कि संक्रामक रोगों से निपटने के लिए निवारक स्वास्थ्य देखभाल और प्रभावी तंत्र की तत्काल आवश्यकता है। वर्तमान प्रणालियों की समीक्षा के आधार पर उन्नत एवं सटीक कार्यक्रम लागू किये जायेंगे।

8. निजी अस्पतालों द्वारा अधिक फीस वसूलना बंद करना, मरीजों के अधिकारों की रक्षा करना और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण बंद करना।

सभी निजी अस्पतालों और डायग्नोस्टिक केंद्रों में सेवाओं की दरें और गुणवत्ता नियंत्रित की जाएगी। अतार्किक और अनावश्यक जाँच, इलाजी प्रक्रियाओं तथा ऑपरेशनों पर रोक लगाने के लिए उपचार पद्धतियों को अधिक मानकीकृत किया जाएगा। इन कदमों के परिणामस्वरूप लोगों को निजी अस्पतालों में भारी बिल का भुगतान नहीं करना पड़ेगा। संपूर्ण 'रोगी अधिकार चार्टर' को सभी अस्पतालों और स्वास्थ्य सुविधाओं में सख्ती से लागू किया जाएगा, और उनके लिए दरें प्रदर्शित करना अनिवार्य होगा। मरीजों की शिकायतों के समाधान में मदद के लिए सभी जिलों और शहरों में शिकायत निवारण कक्ष स्थापित किए जाएंगे। राज्यों में संशोधित 'क्लिनिकल एस्टेब्लिशमेंट एक्ट' पेश किया जाएगा और इस अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए समर्पित तंत्र स्थापित किया जाएगा। इस महकमें में डॉक्टरों के साथ-साथ आम नागरिकों का भी प्रतिनिधित्व होगा. प्रयोगशाला परीक्षण, एक्स-रे, सोनोग्राफी आदि जैसे निदान के लिए दरों को विनियमित किया जाएगा, और 'कट प्रैक्टिस' पर प्रभावी रूप से प्रतिबंध लगाया जाएगा।

सरकारी सेवाओं के सभी प्रकार के निजीकरण को समाप्त कर दिया जाएगा; किसी भी सरकारी अस्पताल अथवा उसके किसी विभाग या सेवा को निजी कंपनियों को नहीं सौंपा जाएगा। निजी मेडिकल कॉलेजों की व्यावसायीकरण वाली कार्यप्रणाली को नियंत्रण में लाया जाएगा। ऐसे कॉलेजों की फीस सरकारी मेडिकल कॉलेजों के बराबर रखना अनिवार्य होगा।

9. निष्क्रिय स्वास्थ्य बीमा योजनाओं को बदलने के

लिए सर्व व्यापक स्वास्थ्य सेवा (यूनिवर्सल हेल्थ केयर) प्रणाली का विकास। सार्वजनिक सेवाओं के साथ-साथ विनियमित निजी अस्पतालों में निःशुल्क इलाज।

वर्तमान अपर्याप्त, बोझिल और अप्रभावी सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के विकल्प विकसित किये जायेंगे। उपरोक्त सभी सुधारों के आधार पर अगले पांच वर्षों के भीतर कई राज्यों में सर्व व्यापक स्वास्थ्य सेवा '(यूनिवर्सल हेल्थ केयर सिस्टम)' स्थापित किया जा सकता है। यह प्रणाली गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल तक त्वरित पहुंच प्रदान करेगी जो सरकारी स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ-साथ सूचीबद्ध और विनियमित निजी अस्पतालों में भी निःशुल्क उपलब्ध होगी।

10. स्वास्थ्य के लिये हानिकारक परिस्थितियों और प्रभावों को कम करने के लिए बहुआयामी पहल; सभी के लिए अच्छे स्वास्थ्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए सामाजिक निर्धारकों की सीमा सुनिश्चित करना।

स्वास्थ्य सेवा में पहले दिए गए सभी सुधारों के साथ-साथ, खराब स्वास्थ्य की घटनाओं को काफी हद तक कम करने के लिए, विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों को शामिल करते हुए, उपायों की एक विस्तृत श्रृंखला की जरूरत है। कुपोषण और खून की कमी आज विशेष रूप से बच्चों और महिलाओं में व्याप्त है। इसे संबोधित करने के लिए आईसीडीएस, स्वास्थ्य विभाग और पीडीएस को शामिल करते हुए अधिक प्रभावी, भागीदारीपूर्ण पहल की जाएगी। साथ ही कृषि और खाद्य सुरक्षा से संबंधित पूरक उपाय किए जाएंगे। सभी के लिए पर्याप्त स्वच्छ जल आपूर्ति, सार्वजनिक स्वच्छता, उचित अपशिष्ट प्रबंधन और स्वस्थ पर्यावरणीय स्थिति सुनिश्चित की जाएगी। वर्तमान में विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, शराब और तंबाकू तथा अन्य नशीली चीजें, सड़क और कार्यस्थल दुर्घटनाएं, घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न आदि प्रतिकूल प्रभावों की एक विस्तृत श्रृंखला शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बहुत नुकसान पहुंचाती है। मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, अवसाद आदि के नये उभार सामने आये हैं। इन नई स्वास्थ्य चुनौतियों को नियंत्रित करने के लिए विशेष उपाय किए जाएंगे, साथ ही प्रभावित लोगों को मदद दी जाएगी। महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों से संबंधित विभिन्न कानूनों को उचित ढंग से लागू किया जाएगा। ऐसे सभी उपाय हमें सही मायने में 'सभी के लिए स्वास्थ्य' की दिशा में प्रभावी ढंग से आगे बढ़ने में सक्षम बनाएंगे!

इस दस सूत्रीय एजेंडे में स्वास्थ्य प्रणाली में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए एक समग्र दिशा प्रस्तावित है। इन परिवर्तनों को प्राप्त करने के लिए अभी तो केंद्र और राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। पर पूरा लक्ष्य पाने के लिए स्थानीय निकायों और समुदायों के अंतर्वेशन, सशक्तिकरण और जिम्मेदारी की भी अनिवार्य जरूरत है। हम संवाद के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं कि कौन से मुद्दे सीधे तौर पर लोकसभा चुनाव के घोषणापत्र से संबंधित हैं और कौन से मुद्दे राज्य स्तर पर विधानसभा चुनाव से संबंधित हैं।

'जन आरोग्य अभियान' कई स्वयंसेवी, राजनीतिक कार्यकर्ताओं और स्वास्थ्य कर्मियों की पहल है। यह अभियान प्रचार, प्रसार और अन्य लोकतान्त्रिक तरीकों से सही मायने में 'सभी के लिए स्वास्थ्य' मुहैया कराने के लिए प्रयासरत है।

ट्विटर (X) में लेखक और जन स्वास्थ्य अभियान से जुडने के लिए- @jsa_india

अंग्रेजी से अनुवाद और परिष्करण-
चन्द्र भूषण चौधरी



मैं भारतीय इतिहास का एक भी ऐसा काल नहीं जानता जिसमें कट्टरपंथी हिंदू धर्म भारत में एकता या खुशहाली ला सका हो। जब भी भारत में एकता या खुशहाली आयी, तो हमेशा वर्ण, स्त्री, सम्पत्ति, सहिष्णुता आदि के सम्बन्ध में उदारवादियों का प्रभाव अधिक था। हिंदू धर्म में कट्टरपंथी जोश बढ़ने पर हमेशा देश सामाजिक और राजनीतिक दृष्टियों से टूटा है और भारतीय राष्ट्र में, राज्य और समुदाय के रूप में बिखराव आया है। इसमें कोई शक नहीं कि देश में एकता तभी आयी जब हिंदू दिमाग पर उदार विचारों का प्रभाव था।

(डॉ. लोहिया की 50वीं पुण्यतिथि के मौके पर समाजवादी जन परिषद द्वारा)

–डॉ राममनोहर लोहिया

लोकतन्त्र की अगली क्रान्ति-आनुपातिक प्रतिनिधित्व

चन्द्र भूषण चौधरी

भारत की लोक सभा, राज्यों की विधान सभाएं तथा बहुतेरी स्थानीय निकायें ब्रिटेन जैसी चुनाव पद्धति से बनती हैं; उसे अंग्रेजी मे 'First Past The Post (FPTP)' या 'Winner Takes All' कहा जाता है। भारतीय राजनीति शास्त्रियों और अन्य बौद्धिकों की विडंबना है कि देश में लोकतंत्र आने के 75 साल बाद भी उन्होनें हिन्दी में (संभवतः अन्य भाषाओं में भी) इन दो अंग्रेजी नामों के लिए कोई सुगम शब्द या मुहाबरा नहीं बनाया है। इस लेख में मैं इन अंग्रेजी मुहाबरों के लिए एक नया भारतीय मुहाबरा 'बहुमत का सर्वजय' इस्तेमाल कर रहा हूँ। ये शब्द इस तथ्य को उजागर करता है कि हरेक चुनाव क्षेत्र (Electoral Constituency) में सर्वाधिक मत पाने वाले उम्मीदवार को पूरे- पूरे मतदाताओं का प्रतिनिधि बनने का हक़ यह FPTP (बहुमत का सर्वजय) पद्धति दे देती है; भले ही उसे पचास, तीस, बीस या उससे भी कम वोट आए हों।

राँची शहर के नगर निगम चुनावों मे कई बार उप महापौर पद के सीधे चुनाव मे 70- 80 प्रत्याशी तक खड़े हुए हैं। उनमे विजेता को दस प्रतिशत से भी कम मत आते थे; पर वह पूरे सौ प्रतिशत मतदाताओं का शासक बन गया।

इस लेख मे हम लोकतान्त्रिक शासन पद्धति के केवल एक प्रकार- 'संसदीय प्रणाली' के बारे में विमर्श करेंगे। कई देशों मे लागू 'राष्ट्रपति शासन' प्रणाली को हम विषय से अलग रखते हैं।

आधुनिक संसदीय शासन प्रणाली की शुरुआत United Kingdom (ब्रिटेन) मे वर्ष 1707 में हुई थी। उसे Westminster Model कहा जाता है। उसके बाद इस व्यवस्था में उत्तरोत्तर ज्यादा लोकतान्त्रिक बनाने के सुधार होते रहे हैं। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में यूरोप के ज्यादातर देशों ने इस पद्धति को अपना लिया। उस दौरान एशिया और अफ्रीका के सारे देश उपनिवेश ही थे; इसलिए उनमे लोकतन्त्र था ही नहीं।

अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी मे यूरोप और अमेरिका के कई राजनीतिक विचारकों, गणितज्ञों, वकीलों और कार्यकर्ताओं ने वेस्टमिन्सटर पद्धति की खामियों को सुधारने के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation –PR) के कई प्रकारों के नमूने और चुनाव प्रक्रिया के प्रस्ताव रखे। एक गणितज्ञ कार्ल आन्द्रे के मॉडेल पर आधारित आनुपातिक चुनाव प्रणाली के द्वारा पहली बार 1855 में डेनमार्क देश की संसद के चुनाव किए गए। पहले और दूसरे विश्व युद्ध के बीच कई यूरोपीय देशों ने अपनी चुनाव प्रणाली को आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (PR) मे बदला। अंग्रेजी भाषी बौद्धिकों वाले और ब्रितानी शासन से स्वतंत्रता पाए देशों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व नगण्य ही अपनाया गया है। सं। राज्य अमेरिका की संघीय और राज्यों की संसद 'बहुमत सर्वजय (FPTP)' पद्धति से चुनी जाती है। उसके कुछ नगर शासनों मे कौंसिल के लिए लगातार आनुपातिक पद्धति से चुनाव होते रहे हैं। इनमे दो प्रमुख शहर कैंब्रिज (मैसाच्युसेट्स) और पेओरा (इलिनॉय) विश्वविद्यालय शहर हैं, जहाँ सर्वाधिक शिक्षित नागरिक रहते हैं !

अब तक 90 (नब्बे) देश अपने संसद (Lower House) के चुनाव में आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की चुनाव प्रणाली अपना चुके हैं। इनमे यूरोप के 33 देश और 57 एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अमेरिका महादेशों के हैं।

'बहुमत का सर्वजय (FPTP)' पद्धति की सबसे बड़ी खामी है कि उसमे कई दलों के प्राप्त मतों और शासक सदन (संसद, विधान सभा, नगर कौन्सिल इत्यादि मे आए प्रतिनिधियों (सीटों) की संख्या

मे लाभकारी या नुकसान देह विषमता होती है। भारत के पिछले आम चुनावों के नतीजों को यहाँ तालिका संख्या 1, 2 और 3 के आंकड़ों को देख कर इस विषमता को हम समझेंगे।

तालिका- 1

लोक सभा चुनाव 20 19 के नतीजे

क्रम सं	पार्टी	प्राप्त मत %	प्राप्त सीट
1	भा॰ ज॰ पा॰	37.36%	303 (55.8%)
2	कॉंग्रेस	19.66%	52 (9.6%)
3	तृणमूल कॉंग्रेस	4.1%	22 (4%)
4	बसपा	3.63%	10 (1.85%)
5	माकपा	1.7 %	3 (0.55%)
6	जदयू	1.46%	11 (1.9%)
7	सपा	2.55%	5 (0.92%)
8	राजद	1.08%	0 (0%)
9	छोटे दल समूह	22.22%	56 (10.15%)

इस चुनाव में भाजपा को आए मतों के अनुपात से केवल 207 सीटें मिलनी चाहिए थी। पर उसे बिना कमाए ही 96 ज्यादा सीटें मिल गई। इसकी वजह से भाजपा सदन में वाजिब अल्पमत मे होने की जगह बहुमत हासिल करने वाली पार्टी बनकर शासन करने का अधिकार ले बैठी। वहीं गलत प्रणाली के कारण सबसे बडे विपक्षी दल काँग्रेस को उसके आनुपातिक अधिकार 109 सीटों की जगह केवल 52 सीटें मिली। अर्थात उसे 57 सीटों का गलत नुकसान हुआ।

तालिका दर्शाती है कि सभी अन्य विपक्षी दलों को भी कमोबेश ऐसा ही नुकसान हुआ था। पर भा ज पा के सहयोगी दल ज द यू को भाजपा की ही तरह वोट अनुपात से ज्यादा सीटें मिली।

तालिका- 2
दिल्ली विधान सभा चुनाव 2020

क्र०सं०	पार्टी	प्राप्त मत %	प्राप्त सीट
1	आम आदमी पार्टी	53.57%	62 (88.57%)
2	भा ज पा	38.51%	8 (11.43%)
3	काँग्रेस	4.26%	0 (शून्य)

यह तालिका 'बहुमत सर्वजय (FPTP) के विषमतम नतीजों के अलोकतांत्रिक दुष्प्रभाव को डराने की हद तक दिखाता है। इस चुनाव में भाजपा के 27% और काँग्रेस के 4% मत बेकार हो गए। आम आदमी पार्टी को बेवजह अनधिकृत 24 अतिरिक्त सीटें मिल गई। चुनाव प्रणाली ने गुप्त रूप से 31% मतदाताओं की इच्छा को चोरी से उनके विरोधियों के खाते में डाल दिया।

तालिका- 3
लोक सभा चुनाव 1984

क्र० सं०	पार्टी	प्राप्त मत%	प्राप्त सीट
1	काँग्रेस	49.1%	404 (78%)
2	भा ज पा	7.74%	2 (0.4%)
3	जनता पार्टी	6.89%	10 (2%)

1950, 60 और 70 के दशकों में लगातार लोक सभा और विधान सभाओं में काँग्रेस को मौजूद चुनाव प्रणाली की वजह से सदनों में बहुमत मिला और वह सत्तासीन रही थी। 1984 के चुनाव में काँग्रेस को 49.1% मत पाकर तथा साफ बहुमत का अपात्र होकर भी अतिरिक्त 201 सीटों का फायदा मिला और संसद में उसके दो तिहाई सदस्य हो गये थे। उसकी बदौलत राजीव गांधी की सरकार ने कई संविधान संशोधन किए। इस घटना से समझें कि इस प्रणाली का चलते रहना संविधान के अक्षुण्ण रहने पर भी खतरा है।

'बहुमत का सर्वजय (FPTP)' चुनाव प्रणाली मतदाताओं की बड़ी संख्या के 'अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार' को छीन कर उनके मतों पर डाका डालती है; जबरन उनकी सहमति को अनचाहे उम्मीदवार के खाते में या कहें कि कचरे में डाल देती है। यह मतदाता के मौलिक लोकतान्त्रिक अधिकार को छीन लेने का आपराधिक कृत्य है।

देश के विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने का वादा कर बने क्षेत्रीय दलों के अपने क्षेत्र- प्रदेश में जीतने की और बिखरे हुए मतों की वजह से देश व्यापी विचारधाराओं वाली पार्टियों की वहाँ हारने की संभावना 'बहुमत का सर्वजय (FPTP)' पद्धति में ज्यादा रहती है। तालिका-1 में माकपा, बसपा और काँग्रेस के नतीजों को देखकर यह समझा जा सकता है। क्षेत्रीय विचारधाराओं को बढ़ावा देकर यह पद्धति कई केंद्रापसारी (Centrifugal) शक्तियों को प्रश्रय देती है और राष्ट्रीय एकता को कमजोर करती है।

शासन में भागीदारी की कम रुचि या परंपरा और कम सक्षमता वाली जमातों यथा औरतें, दलित, किसान, मजदूर, शैक्षणिक कमजोर, अल्पसंख्यक वगैरह वर्गों को चुनाव द्वारा सदन मे पहुँचने के प्रयास को यह प्रणाली कमजोर करती है। उन्हे भागीदारी पाने के पहले एक पहाड़ी जैसी ऊंचाई को पार करना अनिवार्य होता है। भारतीय संसद की 17 वीं लोक सभा मे केवल 78 (15%) और राज्य सभा में 24 (13%) महिला सांसद हैं। इस लोक सभा में केवल 27 (5%) मुस्लिम सांसद हैं जबकि उनकी आबादी 15% है।

'बहुमत सर्वजय (FPTP)' प्रणाली में प्रत्येक सीट जीतने के लिए ज्यादा सीटें पाने वाले वाले दलों की तुलना में कम सीटों वाले दलों को कहीं ज्यादा वोट लाना अनिवार्य होता है। 2019 के लोक सभा चुनाव में झारखण्ड के आँकड़े देखें। उस में भाजपा को मिले 11 सीटों में प्रत्येक सीट 7 लाख मत से आए। वहीं अल्पमत में रहे काँग्रेस और झारखण्ड मुक्ति मोर्चा को एक- एक ही सीटें मिली थी। उन्हे हरेक सीट क्रमशः 23 लाख और 17 लाख मतों से मिले। 'बहुमत सर्वजय (FPTP)' के हरेक चुनाव के नतीजे काफी कुछ ऐसे ही आँकड़े दिखाते हैं।

'आनुपातिक प्रतिनिधित्व- PR'वर्तमान चुनाव की इन विसंगतियों (Inconsistencies), पहाड़ी जैसा आरंभिक अवरोध और जुआ खेल (Gambling) को खत्म कर हरेक दल / संगठित वर्ग को उसके मतों के अनुपात में सदन में वाजिब सीटें दिलाती है। शासन के केन्द्रीय सदन लोक सभा, राज्यों की विधान सभाएं और विकेंद्रीकरण के बाद जिला परिषद, नगर निगम, अन्य नगर निकाय, प्रखण्ड समिति, और ग्राम पंचायत; हरेक स्तर पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व

(Proportional Representation- PR) चुनाव प्रणाली द्वारा विधायिका सदन / कौंसिल को चुनना ज्यादा लोकतान्त्रिक और बेहतर होता है।

अन्य स्वैच्छिक, पेशेवर (किसान, मजदूर, वकील, डॉक्टर, छात्र, सहकारिता, व्यापारी वगैरह) संघों और राजनीतिक दलों के आंतरिक चुनावों में भी आनुपातिक प्रणाली से चुनाव किए जाते हैं।

मतदाताओं की पसंद के अनुपात में सदन के सदस्यों के चुनाव अर्थात आनुपातिक प्रतिनिधित्व (PR) लागू करने के कई तरीके तैयार किए गए हैं। जनसंख्या का आकार, मतदाताओं की शिक्षा/ प्रशिक्षण का स्तर, इलाकों की जन सांख्यिकीय विविधता (Demographic Differences), राजनीतिक पार्टियों के प्रसार क्षेत्र, आरक्षण के प्रावधान; इन सभी परिस्थितियों के लिए आ. प्र. (PR) के तरीके बन चुके हैं। किसी प्राधिकृत कॉमिटी और संसद- सरकार द्वारा भारत की लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा उचित तरीका चुना जाएगा। राज्य सरकारें स्थानीय निकायों के लिए और स्वैच्छिक संगठन अपने लिए सबसे उपयुक्त तरीके चुनेंगे। आनुपातिक प्रतिनिधित्व में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण रखना संभव है। वह वर्तमान रूप में ही चुनाव क्षेत्रों को आरक्षित कर तथा पार्टी लिस्ट में आरक्षण रोस्टर प्रथा का इस्तेमाल कर हो सकता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व (PR) का उद्देश्य जनता के हरेक वर्ग, विचारधारा, जाति, नस्ल, लिंग वाली जमातों को उनकी संगठित आबादी के अनुपात में विधायिकाओं और शासक सदनों में सदस्यता का अधिकार देना है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व (PR) की चुनाव प्रणालियाँ ऐसे वर्गों को जिनकी ऐतिहासिक कारणों से शासन मे कम रुचि, कम सक्षमता, आर्थिक विपन्नता, शिक्षा का अभाव यथा औरतें, दलित, आदिवासी, अल्पमत वर्ग वगैरह को संसद, विधान सभाओं तथा अन्य विधायिका/ शासक सदनों तक पहुँचने और सक्रिय भागीदारी करने में मदद करती है।

स्वीडन में 1950 में औरत सांसदों के संख्या नगण्य थी। बिना किसी आरक्षण के ही लगातार आनुपातिक प्रणाली के कारण अब स्वीडन की संसद मे 45% महिला सांसद हैं। महिला सांसदों की संख्या में ऐसी ही बढ़त यूरोप के अन्य देशों में भी है, जहां आनुपातिक चुणाव प्रणाली पाँच- सात दशकों से लागू है। एशिया के मुस्लिम बहुल देश इंडोनेशिया की संसद में 1999 में केवल 9% औरतें थी। वह 20 वर्षों तक आनुपातिक पद्धति लागू रहने के बाद 2019 में बढ़कर 21% हो गई। हालांकि वहाँ दलों को अपने टिकटों में 30% औरतों को देने का कानून भी हाल मे बना है। मुस्लिम बहुल देश तुर्की की आनुपातिक प्रतिनिधित्व से चुनी संसद में बिना किसी आरक्षण के ही औरत सांसदों की संख्या 2002 में केवल 4.4% की तुलना में 6 चुनावों के बाद 2023 में 20% हो गई। नब्बे देशों में चल रही आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का विश्लेषण बताता है कि उसकी वजह से संसद/ विधायिकाओं में वंचित वर्गों, जातियों, कबीलों वगैरह की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ कर उनकी आबादी के अनुपात में हो जाने की पूरी संभावना है।

भारत के चार पड़ोसी देशों की संसद अब आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से चुनी जाती है। ये हैं श्रीलंका, नेपाल, थाइलैंड और इंडोनेशिया। बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत के राजनीतिकों, अकादमिकों, स्तंभकारों, तथाकथित Think Tanks और चुनाव विश्लेषकों ने देश के इतने करीब होने वाली लोकतान्त्रिक क्रांतियों का विश्लेषण कर भारत के लिए कोई मॉडेल का सुझाव नहीं दिया। देश की मीडिया ने भी कई दिनों तक चुनाव विश्लेषण चलाने के बावजूद इस पर रत्ती भर ध्यान नहीं दिया।

नेपाल की संविधान सभा पिछले दशक में नया संविधान बना रही थी। उसमे 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' के अंगीकृत होने के बाद वहाँ पिछले दो संसदों के चुनाव इस पद्धति से हुए हैं। अस्थिरता से ग्रस्त नेपाल की राजनीति में इस नई प्रणाली के लागू होने के बाद वहाँ की संसद सुस्थिर हो गई है। वहाँ लोकतन्त्र जड़ पकड़ चुका है। पर भारत में उसकी कोई चर्चा नहीं है।

हाँ, 1975 में जे पी की पहल से बनी जस्टिस तारकुंडे कमिटी, 1977 में मुख्य चुनाव आयुक्त शकधर और 1999 में विधि आयोग (Law Commission) ने आ0 प्र0(PR) पर सरकार को एक- एक रिपोर्ट जरूर दी थी। पर सरकारों, संसद और ज्यादातर राजनीतिक दलों ने इन रपटों पर ध्यान नहीं दिया। देश की मीडिया ने भी हरेक चुनाव में कई दिनों तक विश्लेषण चलाने के बावजूद आ0 प्र0 (PR) पर रत्ती भर ध्यान नहीं दिया। पर कुछ दलों- कम्युनिस्ट पार्टी (मा0), द्र0 मु0 क0, सी पी आइ और समाजवादी जन परिषद ने आ0 प्र0(PR) के पक्ष में प्रस्ताव पारित किए हैं। पर इस मुद्दे पर किसी दल ने कभी प्रकाशन, जन जागरण या आंदोलन नहीं किया। राज्य स्तर पर सत्ताधारी दलों द्रमुक और CPI(M) में किसी ने अपने शासन काल में अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले जिला, नगर, ग्राम पंचायत या अन्य निकायों मे आ0 प्र0 (PR) प्रणाली की शुरुआत नहीं की है।

भारत के संविधान में अपनाई गई राजनीतिक चुनाव क्षेत्रों (constituencies) मे आरक्षण के प्रावधान शामिल करने का उद्देश्य भी वंचित समूहों का सशक्तिकरण ही था। (इस लेख में हम 'नौकरियों में आरक्षण' विषय पर चर्चा नहीं कर रहे हैं)। पिछले सत्तर साल का अनुभव बताता है कि यह आरक्षण व्यवस्था सही स्तर तक वंचितों का सशक्तिकरण करने में अक्षम है। साथ ही यह आरक्षण व्यवस्था केवल दो चुने गए नृजातीय (Ethnic) समूहों- अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Castes & Scheduled Tribes) के हित में ही बहुत थोड़ी सी मददगार है। वह उनके

लिए केवल कुछ आवंटित चुनाव क्षेत्रों मे रहने वाले इन वंचितों का ही थोड़ा सशक्तिकरण कर पाती है। सारे देश के अन्य चुनाव क्षेत्रों में रहने वाले उन्ही वंचित समूहों को यह आरक्षण व्यवस्था सीधा हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं दे पाती है। सत्तर साल के अनुभव बताते हैं कि नृजातीय समूहों (Ethnic Groups) के अलावा अन्य प्रकार के वंचित समूह भी समाज में हैं; यथा किसान, अति गरीब, मजदूर, सभी जाति धर्म की औरतें, भाषायी अल्पसंख्यक, देहातवासी, धार्मिक अल्पसंख्यक वगैरह। ये वंचित समूह भी अनेक चुनाव क्षेत्रों मे बिखरे हुए हैं। इस बिखराव की वजह से 'बहुमत सर्वजय-FPTP' प्रणाली में वे संगठित होकर भी संसद, विधायिकाओं, अन्य सदनों तक नहीं पहुँच सकते हैं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व (PR) के लागू होने पर भागीदारी के इच्छुक और पार्टी के रूप में संगठित समूह उन सदनों तक पहुँच कर सरकार या विपक्ष के रूप में लगातार पाँच साल अपनी आवाज को आकांक्षाओं की दस्तक देता रहता है। किसी पार्टी के अन्दर भी दवाब गुट के रूप में वे सदन में भागीदारी का अपना हिस्सा हासिल कर सकते हैं।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व लाने के लिए चुनावों के चार तरीके ज्यादा प्रचलित हैं, पर इनके अलावा भी कुछ तरीके सुझाए गए और लागू भी हैं। इस पद्धति मे हरेक पार्टी अकेले ही चुनाव लड़ती है; पार्टियों के गठबंधन चुनाव नहीं लड़ते। इस लेख मे हम केवल इन चारों की तफ़सील ही देखेंगे। ये चार हैं-

1. पार्टी लिस्ट प्रणाली (Party List System).

यह पद्धति देश / प्रदेश / जिला जैसे पूरे इलाके को एक ही चुनाव क्षेत्र मानती है। इसमे छोटे इलाकों के क्षेत्रवार (Constituency Wise) प्रत्याशी नहीं होते हैं। चुनाव प्रचार के पहले हरेक दल प्रस्तावित उम्मीदवारों की वरिष्ठता वार अपनी सूची निर्वाचन आयोग को दे देता है। पूरे इलाके/क्षेत्र में पार्टियों द्वारा पाए मतों के अनुपात में विधायिका सदन की सीटें हरेक दल को मिल जाती है। व्यावहारिकता की वजह से बहुत कम (Less Than Cut Off Level) वोट पाने वाली पार्टियों को कोई सीट नहीं मिलती। 'बहुत कम (Cut Off)' का निर्धारण बड़ी जनसंख्या के लिए 1% से क्रमशः छोटी जनसंख्या के लिए 5% तक जा सकता है। ऐसे Cut Off के निर्धारण का तर्क है कि बड़ी संख्या में मतदाताओं को अधिकार से वंचित न किया जाए; सदन के एक सीट का विभाजन असंभव है और सदन मे सीमित संख्या मे ही सीटें हैं।

इस पद्धति को लागू करने वाले कुछ देश हैं- ऑस्ट्रिया, नेदरलैंड, तुर्की (सभी यूरोप के); श्रीलंका, इंडोनेशिया (एशिया के), अर्जेन्टीना (द। अमेरिका) और दक्षिण अफ्रीका (अफ्रीका)।

2. मिश्रित सदस्य प्रणाली (Mixed Member PR-MMR)-

अपेक्षया बड़ी आबादी वाले देशों / प्रदेशों के लिए यह प्रणाली ज्यादा व्यावहारिक तथा क्षेत्रीय प्रतिनिधियों को अपने मतदाताओं के प्रति जिम्मेदार रखने वाली मानी जाती है। इसमे 'बहुजन सर्वजय (FPTP)' पद्धति से पूरे देश / प्रदेश को चुनाव क्षेत्रों में बाँट जाता है। सदन मे इनके अलावा और सीटें होती हैं, जिन्हे वोट के अनुपात में चुनाव के बाद आवंटित किया जाता है। चुनाव में मतदाता को दो मतपत्र (Ballot Papers) मिलते हैं; साथ ही दो मतपेटियाँ होती है। उनमे एक मत पहली पेटी में उसी क्षेत्र के किसी उम्मीदवार के पक्ष में गिरता है। उनकी गिनती में सबसे ज्यादा वोट लाने वाला उम्मीदवार विजेता घोषित होता है। दूसरी पेटी में एक पूर्वघोषित बड़े क्षेत्र (पूरा देश प्रदेश या उसका एक बड़ा हिस्सा) में चुनाव लड़ने वाले किसी दल के पक्ष में मतदाता अपना वोट डालता है। उस पूरे बड़े इलाके में भाग लेने वाले दलों में हरेक के अपने सारे मत जोड़ लिए जाते हैं। उस बड़े इलाके के लिए आवंटित सभी सीटों को प्रत्येक पार्टी के पाए कुल मतों के अनुपात में दे दिया जाता है। जर्मनी की राष्ट्रीय संसद (Bundestag) के लिए पिछले सात दशकों से इसी प्रणाली से चुनाव होते रहे हैं। न्यूजीलैंड, थाईलैंड, नेपाल, बोलीविया, लेसोथो में भी यह मिश्रित सदस्य प्रणाली (MMR- PR) प्रणाली अपनाई गई है।

3. Single Transferable Vote (STV) प्रणाली-

यह यद्यपि दशकों से सुझाई हुई है, पर राष्ट्रीय स्तर पर इसे केवल दो देशों ने अपनाया है। इसे पार्टीयुक्त या बिना पार्टियों के; दोनों किस्म के चुनावों मे प्रयुक्त किया जा सकता है। यह उच्च शिक्षित / प्रशिक्षित मतदाताओं के छोटे निकायों, पेशेवर संगठनों, उच्चतर संसद सदनों (राज्य सभा, विधान परिषद, कुछ देशों के सीनेटों) के लिए उपयुक्त है। यहाँ हम इसकी प्रक्रिया की तफ़सील नहीं बताएंगे।

4. दल विहीन चुनावों में बहु सदस्य वाले चुनाव क्षेत्रों का प्रयोग।

नगर निगम, अन्य नगर निकाय, ग्रामीण इलाकों के बड़े निकाय (प्रखण्ड समिति, जिला परिषद), बड़े सहकारिता संघ, मजदूर किसान संघ, छात्र संघ इत्यादि बहुधा राजनीतिक दलों की पहचान से सदस्यों को दूर रखना चाहते हैं। उनके द्वारा यह पद्धति अपनायी जाती है।

इसमें पूर्व निर्धारित प्रतिनिधि संख्या के लिए बहुसदस्यों (आम तौर पर पाँच से दस प्रतिनिधियों हेतु) वाले अपेक्षया बड़े चुनाव क्षेत्र बनाए जाते हैं। हरेक मतदाता अपना एकमात्र वोट किसी एक उम्मीदवार के पक्ष में डालता है। मतगणना कर सबसे ज्यादा मत पाने वाले उम्मीदवारों की उतनी पूर्व निर्धारित संख्या को निर्वाचित घोषित किया जाता है। इसके कारण समाज के (अल्प संख्यक सहित) विभिन्न जमातों/विचारधाराओं के लोग भी प्रतिनिधि बन पाते हैं। साथ ही बहुमत सर्वजय (FPTP) प्रणाली जैसी बहुत मतों की बर्बादी (Loss of Franchise) भी रुक जाती है।

मेरी निश्चित और सुविचारित मान्यता है कि लोक सभा के लिए भारत जैसी विशाल जनसंख्या और क्षेत्रीय विविधता वाले देश में 'मिश्रित सदस्य प्रणाली (Mixed Member PR- MMP)' ही उपयुक्त है। चुनाव के समय इसके लिए देश को भौगोलिक और जनसांख्यकीय (Geographical & Demographical) विविधताओं के आधार पर पाँच क्षेत्रों में बांटा जाए। हरेक क्षेत्र में उनके पाए मतों के अनुपात में दलों को आनुपातिक कोटा की सीटें दी जाए। साथ ही हरेक दल के पास 'बहुमत सर्वजय (FPTP)' से जीती हुई सीटें भी होंगी। दोनों में प्रत्येक पद्धति से जीते हुए सदस्य को बराबर का अधिकारी और जनता के प्रति जिम्मेदार माना जाता है। कई देशों मे राष्ट्रीय स्तर पर दलों द्वारा प्राप्त मतों की पूर्ण आनुपातिकता हासिल करने के लिए सदन की कुछ सीटें मतगणना के बाद बढ़ा भी दी जाती है।

'बहुमत सर्वजय (FPTP) पद्धति' में बहुधा एक से ज्यादा दल आपसी गठबंधन बना कर चुनाव लड़ते हैं। ये गठबंधन चुनाव के बाद सरकार बनाने के लिए बिखर या बदल भी जाते हैं। 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व (PR)' प्रणाली में जरूरी होने पर चुनाव के बाद कई दल मिलकर भी सरकार बनाते हैं। संसद पूरे कार्यकाल स्थिर रहती है पर सरकार बनाने के दल- समूह बदल भी सकते हैं। इस प्रणाली के विरोधी अपने अज्ञान के कारण एक दुष्प्रचार करते हैं कि आ। प्र। पद्धति शासन में अस्थिरता पैदा करती है। ऐतिहासिक तथ्य इस धारणा की पुष्टि नहीं करते।

संविधान निर्माण के दौरान संविधान सभा में भारत में आनुपातिक प्रतिनिधित्व अंगीकार करने का प्रस्ताव आया था। उस पर लंबी बहस भी हुई थी। उसके दो दशक पहले मुस्लिम और दलित नागरिकों के लिए पृथक निर्वाचन मण्डल (Separate Electorate) की मांग भी जोर शोर से उठी थी, जो एक समझौते के बाद छोड़ दी गई थी। आनुपातिक प्रतिनिधित्व अप्रत्यक्ष रूप में एक हद तक पृथक निर्वाचन मण्डलों जैसे अधिकार भी देता है। संभवतः उस समय हुए देश के त्रासद बंटवारे के कारण डॉ अंबेडकर सहित सभी संविधान निर्माता डर गए और उन्होंने आनुपातिक प्रतिनिधित्व को अस्वीकार कर दिया।

भारत में 'बहुमत सर्वजय (FPTP)' प्रणाली को बदल कर आनुपातिक प्रतिनिधित्व वाली संसद के लिए कानून बनाने के रास्ते में कुछ प्रमुख अवरोध दीखते हैं।

1. कानूनों के सफल बदलाव के लिए प्रस्ताव की पहल किसी वर्तमान संसद में सरकार और सत्ता पक्ष के सांसद ही कर सकते हैं। संविधान संशोधन के लिए बहुधा कुछ विपक्षी सांसदों का समर्थन भी अनिवार्य है। परंतु ये सारे सांसद (और राज्यों के विधायक भी) 'बहुमत सर्वजय (FPTP)' पद्धति से ही चुन कर आए हैं। उस पद्धति के इस्तेमाल और दाव- पेंच में उनकी महारत होती है। नई प्रणाली आने से उनमे कइयों के लिए संसद पहुंचना असंभव या बहुत कठिन हो जाएगा। आनुपातिक प्रतिनिधित्व देश और सारी जनता के लिए ज्यादा लाभकारी है, यह जानते हुए भी वह पुराना नेतृत्व और उसके सारे समर्थक इस बदलाव का विरोध करेंगे।

2. आम जनता को तो विभिन्न लोकतान्त्रिक पद्धतियों की जानकारी ही नहीं है। हमारी स्कूली और विश्वविद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी उनपर कोई सामग्री नहीं रखी गई है। छपी और दृश्य मीडिया ज्यादा समय तात्कालिक राजनीतिक खेल और उठापटक दिखाती है या सत्ता प्रतिष्ठान की जी हुजूरी करती है। देश के बौद्धिकों, प्रोफेसरों, NGOs और तथा कथित Think Tanks में भी संरचना (Structural) स्तर पर बदलाव में कोई रुचि और समझदारी नहीं हैं। साथ ही देश का अभिजात वर्ग आम जनता के सशक्तिकरण से डरता है। इसलिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लाने के लिए इस सबों से किसी पहल की उम्मीद नहीं है।

3. अभी संविधान मे लागू चुनाव क्षेत्रों के आरक्षित होने के कारण, उसके लाभुकों द्वारा आनुपातिक प्रणाली लाने के प्रस्ताव पर गलत भ्रम फैलाया जाएगा कि उन जमातों की सुरक्षा को खतम किया जा रहा है।

चूंकि बहुतेरे देशों में चुनाव पद्धति के बदलाव हुए हैं इसलिए उम्मीद है कि देशहित में भारत में भी ऐसा होगा। इस लेख के प्रत्येक पाठक से मेरा अनुरोध है कि इस विषय पर अपने समूहों में व्यापक बहस चलाएं और जल्द ही इस लोकतान्त्रिक क्रांति को सफल बनाएं।

पाठकों से मेरा अनुरोध है कि वे इस विषय पर कुछ और प्रारम्भिक जानकारी के लिए निम्नलिखित दो संदर्भों को जरूर पढें।

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Proportional_representation
2. https://hi.wikipedia.org/wiki/आनुपातिक प्रतिनिधान

इच्छुक पाठक निम्नलिखित दो सोशल मीडिया Id से जुड़कर इस विषय और मुहिम में सहयोग कर सकते हैं

1. Facebook में- भारत में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की मुहिम (Proportional Representation)
2. Twitter (X) ceW- @PRforIndiaNow

राँची, 13 फरवरी 2।24
Ph- 94311-~5585
Twitter (X)- @cbchoudhary_dr

कृषि उत्पाद के कम दाम का मतलब है किसान के श्रम का शोषण

विवेकानंद माथने

कृषि उत्पाद का समर्थन मूल्य निर्धारण करते समय कृषि कार्य को कुशल कारीगर का परिश्रम मूल्य, काम के दिनों की सही गिनती और खेती की लागत, बीज, खाद, कीटनाशक, सिंचाई, बैल जोड़ी, परिवहन आदि खर्च को वास्तविकता के आधार पर तय किया गया, तो गेहूं और धान का मूल्य प्रति क्विंटल के लिए 3000 रु. से अधिक होगा और कपास का मूल्य 9000 रुपए क्विंटल से अधिक होगा। और यह मूल्य दिए जाने पर ही वास्तविक लागत खर्च घटाने के बाद किसान को उसके परिश्रम का सही मूल्य प्राप्त हो सकता है और मजदूर को सही मजदूरी। लेकिन कृषि उत्पाद के दाम कम रखने के लिए सरकार जानबूझकर गलत पद्धति का उपयोग करती है। और प्रत्यक्ष में राज्य सरकारों द्वारा सिफारिश की गई फसलों की कीमतों से भी कम मूल्य दिया जाता है।

महाराष्ट्र में सन 2009-10 के लिए गेहूं का समर्थन मूल्य तय करते समय किसान और मजदूर का एक दिन का श्रममूल्य पुरुषों के लिये 70 रु. और महिलाओं के लिए 50 रुपये दिया गया।

गेहूं के एक हेक्टर खेती के लिए पुरुषों के 36.83 दिन और महिलाओं के 43.48 दिन मिलकर कुल 80.31 काम के दिन माने गये। बैलजोड़ी के काम के 9 दिनों के लिये श्रममूल्य 257 रु. प्रतिदिन के हिसाब से जोड़ा गया।

एक हेक्टर खेती के लिये 107.81 किलो बीज के लिये 23 रुपये दर से 2480 रु. जोड़े गये। 177 रु. बैलगाड़ी के दर से 4.62 बैलगाडी सेंद्रिय खाद के लिए 817 रु. तथा 101 किलो रासायनिक खाद के लिए 1235 रु. खर्च जोड़ा गया। सिंचाई खर्च 1603 रु. और कीटनाशकों के लिए 21 रु. खर्च जोड़ा गया।

इस प्रकार से 2009-10 में गेहूं के लिए 1590 रुपये दाम देने की सिफारिश की गई थी। लेकिन सरकार ने कम कीमत लगाकर सिफारिश किये दाम भी न देकर गेहूं को प्रति क्विंटल 1080 रु. दाम घोषित किया गया था।

इसी प्रकार सन 2009-10 के लिए धान के दाम तय करते समय दिन का श्रममूल्य पुरुषों के लिए 77 रु. और महिलाओं के लिए 53 रु. निर्धारित किया गया। धान के एक हेक्टर खेत के लिए काम के दिन पुरुषों के लिए 66.47 दिन और महिलाओं के लिए 94.97 दिन मिलाकर कुल 161.14 दिन तय किये गये। बैलजोड़ी के काम के 12.81 दिन के लिये 263 रु. दर से जोड़े गये।

एक हेक्टर खेती के लिए 83 किलो धान का बीज के लिये 35 रु. दर से 2926 रुपये और 188 रु. बैलगाड़ी के हिसाब से 5.06 बैलगाड़ी सेंद्रिय खाद के लिए 953 रु. तथा 114 किलो रासायनिक खाद के लिए 1530 रु. जोडे गये। सिंचाई खर्च 49.84 रु. और कीटनाशकों का लिये 365 रु. जोड़े गये।

इस प्रकार धान का मूल्य प्रति क्विंटल 1190 रु. की सिफारिश की गई थी लेकिन कम श्रममूल्य और कम लागत खर्च आंककर निकाली गई कीमत भी न देकर धान को प्रति क्विंटल 980 रु. दाम घोषित किये गये।

सन 2009-10 में कपास के दाम तय करते समय दिन का श्रममूल्य पुरुषों के लिए 79 रु. और महिलाओं के लिए 50 रु. निर्धारित किया गया। कपास के एक हेक्टर खेती के लिए काम के दिन पुरुषों के लिए 47.83 दिन और महिलाओं के लिए 114.62 दिन मिलाकर कुल 162.45 दिन निश्चित किये गये। बैलजोड़ी के 19.58 दिन के लिए 275 रु. दिन से दर जोड़े गये।

एक हेक्टर खेती के लिए कपास के 1.62 किलो बीज के लिये 1500 रु. किलो के दर से जोड़े गये। 238 रु. बैलगाड़ी के दर से 6.43 बैलगाड़ी सेंद्रिय खाद को 1530 रु. और 116 किलो रासायनिक खाद के लिए 1600 रु. जोडे गये। सिंचाई खर्च 213 रु. और कीटनाशकों का खर्च 1600 रु. जोड़ा गया।

इस प्रकार कपास का प्रति क्विंटल मूल्य 3400 रु. निर्धारित किया गया था। प्रत्यक्ष में कम आंकी गयी कीमत भी न देकर कपास को प्रति क्विंटल 3000 रु. दाम घोषित किया था।

अर्थात तिनों फसलों के घोषित दर से यह स्पष्ट है कि, श्रममूल्य, काम के दिन, लागत वस्तुओं की मात्रा और कीमत कम आंककर निकाली कीमत भी सरकार ने किसानों को नहीं दी है। वास्तविक रूप से लागत खर्च अधिक होने के कारण किसानों के पास केवल श्रम की कीमत ही बचती है।

श्रममूल्य तय करते समय रोजगार गारंटी के काम के लिए 127 रुपये, एक चपरासी को 400 रुपये, कारकुन, पुलिस, शिक्षक को 800 से 1500 रुपये। सरकारी अधिकारी, प्राध्यापकों को 2000 से 2500 रुपये,

कलेक्टर, न्यायमूर्ति को उनकी अन्य सुविधाएं छोड़कर 3000 रुपये। लेकिन किसानों को उसके मेहनत का कितना मिलता है?

संगठित क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को उनका कर्तव्य पूरा करने के लिए उनके परिवार के पालन की जिम्मेदारी स्वीकारकर वेतन निर्धारित किया जाता है। सरकार उसे कानूनन और न्याय ठहराती है।

लेकिन खेती उत्पाद के दाम निर्धारण में सरकार किसानों को न्यूनतम मजदूरी दर भी नहीं देती, उल्टा उसमें भी पुरुष और स्त्री का भेद करके दिन का श्रममूल्य पुरुषों को और महिलाओं को अलग अलग दिया जाता है।

इतना ही नहीं किसानों के काम के दिन निर्धारण में भी अनोखी पद्धति का अवलंब किया जाता है। श्रम के कुल दिन निर्धारित करते समय किसानों के और मजदूरों के कुल काम के घंटों को आठ से भाग देकर कुल काम के दिन निकाले जाते हैं। किसी भी फसलों के लिए फसलों के अवधी के साथ बोनी पूर्व और बाद भी कई प्रकार के काम करने पड़ते हैं।

उपरोक्त धान और गेहूं के लिए 110 से 140 दिन और कपास के लिए 240 दिन फसलों के अवधी से कई अधिक श्रम करने पड़ते हैं। लेकिन गेहूं, धान और कपास की एक हेक्टर खेती के लिए 80.31 और 161.14 और 162.45 मनुष्य दिन निर्धारित किए गये है। इस पद्धति से दुनिया में किसके काम के दिन गिने जाते हैं?

लेकिन किसानों के लिए उनके श्रममूल्य और काम के दिनों की गिनती सरकार इसी पद्धति से करती है और इसे ही वह किसानों के हितों के लिए काम करना कहती है।

किसानों और मजदूरों को खेती में जो बहुविध काम करने पड़ते हैं, वह सभी काम चार दीवारी के अंदर प्रशिक्षण लेकर नहीं आते। बल्कि बचपन से अपने माता पिता के साथ प्रत्यक्ष काम करने से उन्हें उसमें कुशलता प्राप्त होती है। क्या कृषि विश्वविद्यालय के स्नातक किसानों की कुशलता से यह काम कर सकते हैं?

खेती अगर कुशल काम है और न्यायालय में भी इसे कुशल काम मान्य किया है तो फिर किसानों का श्रममूल्य इतना कम, अकुशल कामगारों से भी कम क्यों दिया जाता है?

अगर चपरासी फाइलें उठाता है। कलेक्टर फाइलों का निपटारा करता है। न्यायाधीश निर्णय देता है। शिक्षक, प्राध्यापक का काम ज्ञान की बोनी करने का माना जाता है। और यह सभी काम समाज के लिए जरुरी मानकर उसकी और उसके परिवार की जरुरत पूरी हो ऐसा वेतन, छुट्टियों की मजदूरी को जोड़कर साल के 365 दिन के लिए और निवृत्ति के बाद भी, दिया जाता है।

देश के अनाज की जरूरत पूरी करने का राष्ट्रीय कार्य करनेवाले किसानों का खेती का काम भी किसी के काम से कम महत्व का नहीं है। तो फिर किसानों के साथ यह अन्याय क्यों किया जाता है? उसके मेहनत का मूल्य भी क्यों नकारा जाता है?

सरकारी दाम के अनुसार कपास का उत्पादन लेनेवाले किसानों को महिला पुरुष मिलाकर 162.45 दिन के लिए 9510 रुपये, गेहूं का उत्पादन लेनेवाले किसानों को 80.31 दिन के लिए 4752 रुपये तथा धान का उत्पादन लेनेवाले किसानों को 161.14 दिन के लिए 10135 रुपये श्रममूल्य प्राप्त होगा।

किसानों को इसी दर से 365 दिन का मेहनताना दिया जाए तो उसे 22000 रु. के आसपास श्रममूल्य मिलेगा याने दिन का परिश्रम मूल्य 60 रुपये प्राप्त होगा। अगर वह परिवार के पांच व्यक्तियों में बांटा जायेगा तो प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 12 रु. मिलेंगे।

खेती के व्यस्ततम अवधी में किसान को मजदूरों से काम लेना पडता है, इससे उसे और भी कम मूल्य प्राप्त होगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसानों को कृषि उत्पाद के कम मूल्य का मतलब किसानों के श्रम का शोषण करना है।

योजना आयोग द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में दिये गये शपथपत्र के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 26 रु. से अधिक प्राप्त करने वाला व्यक्ति गरीबी रेखा से ऊपर माना गया है। यह योजना आयोग द्वारा गरीबों का किया गया मज़ाक है। ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया देश भर में प्रकट हुई है।

लेकिन योजना आयोग की गरीबी रेखा से भी किसान कितने निम्न स्तरपर जीता है, यह उपरोक्त आकडों से स्पष्ट होता है। यह तो उन फसलों की बात है, जो अन्य फसलों से अधिक लाभदायी माने जाते हैं।

खेती ही जीवन का आधार है और जिनके पास खेती के अलावा रोजगार का कोई साधन उपलब्ध नहीं है या रखा भी नहीं गया, ऐसे किसानों की संख्या बहुत अधिक है।

देश की स्थिति का विचार करें तो एक हेक्टर से कम खेतीवाले किसानों की संख्या 62.3% तथा एक से दो हेक्टर के बीच खेतीवाले किसानों की संख्या 19% है।

ऐसे में किसान को कृषि उपज के दाम तय करते समय उनके परिश्रम का मूल्य इतना कम दिया जाता है कि उनके जीने के पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार सरकार उनके बुनियादी अधिकारों को भी नकारती आयी है।

ऐसी स्थिति में किसान ब्याज के चक्रव्यूह में फँसकर एक तो जमीन बेच देता है या आत्महत्या कर लेता है। जिसके लिए सरकार जिम्मेदार हैं।

देश को संगठित और असंगठित क्षेत्र में विभाजित करके

उन्हें अलग अलग न्याय्य नहीं लगा सकते। इस व्यवस्था में हरेक की भूमिका को मान्यता देकर उसकी जरूरतों को पूर्ण किया जाना चाहिये। उनकी प्राथमिक जरुरतें अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य प्राथमिकता से सभी को उपलब्ध होनी चाहिए। उसके बाद ही किसी को अधिक सुविधा देने का विचार किया जा सकता है।

खेती कार्य कुशल कार्य हैं, उसके लिए किसानों को कुशल कारीगर का श्रममूल्य, काम के दिन निर्धारण पद्धति में बदलाव और खेती के लिए लागत वस्तुओं का सही मात्रा और मूल्य, साथ ही जरुरी लाभ जोड़कर खेती उपज के दाम तय होना चाहिए।

यह मूल्य प्राप्त करना किसानों का हक है। यह मूल्य मिलने में आने वाले कठिनाइयों को दूर करके किसानों को सही दाम मिले ऐसी व्यवस्था सरकार को बनानी चाहिए। किसी भी परिस्थिति में किसानों पर बोजा नहीं पड़ना चाहिए।

ऐसा हुआ तो गेहूं और धान का मूल्य प्रति क्विंटल 3000 रुपये से अधिक होगा और कपास का मूल्य 9000 रु. से अधिक मिलेगा, जो आज से तीन गुना अधिक होगा।

अगर किसी भी कारण से यह कीमत किसानों को नहीं मिल पाई तो ऐसे स्थिति में सरकार को किसानों को नुकसान भरपाई देनी होगी।

कृषि उत्पाद को अधिक दाम दिए तो महंगाई बढ़ेगी इसलिए किसानों के श्रम का शोषण करके फसलों के दाम कम देनेवाली और उसके द्वारा महंगाई नियंत्रित करनेवाली सरकार की यह जिम्मेदारी है। ऐसा हुआ तो ही किसान न जमीन बेचेगा, ना आत्महत्या करेगा।

देशभर में अलग अलग फसलों के लिए दाम की मांग करने के बजाए खेती उपज के दाम किसान को कुशल कारीगर का श्रममूल्य जोड़कर उसी के आधार पर फसलों का उत्पादन खर्च तय करना चाहिए।

यह फसलों की न्याय्य कीमत किसान को नहीं मिली तो किसानों को नुकसान भरपाई देनी चाहिये। यह एक ही मांग की गई तो देशभर में विभिन्न फसलों के उत्पादक किसान इस एक मांग के लिए एकत्रित आ सकेंगे और उनके संगठित शक्ति के आधार पर ही किसानों को अपना न्याय हक प्राप्त करना संभव होगा।

मो.नं. 09822994821

दस साल के दावे और हकीकत

अरुण कुमार त्रिपाठी

पिछले दस सालों में एनडीए सरकार ने भारतीय जनता पार्टी के दो वादे पूरे कर दिए हैं। एक जम्मू और कश्मीर को स्वायत्तता देने वाले संविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त कर दिया है तो दूसरा अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण करा दिया है। इनका तीसरा वादा था देश में समान नागरिक संहिता लागू करने का तो उसका प्रयोग राज्यों के स्तर से शुरू हो रहा है और बहुत संभव है कि 2024 में चुनाव जीतने के बाद वे उस काम को तेज करें। यह एजेंडा तो भारतीय जनता पार्टी और संघ परिवार की कल्पना में रचे हिंदू राष्ट्र को बनाने के लिए है। लेकिन जिस सबका साथ सबका विकाक करने के जिस एजेंडा के तहत वह भारत को विकसित देश या विश्व गुरु बनाना चाहती है उस पर गौर करने लायक है। देखा जाना चाहिए कि एनडीए या मोदी सरकार जो दावा कर रही है उसकी हकीकत क्या है।

सरकार का दावा है कि 2027 तक देश को पांच खरब डॉलर और 2047 तक 30 खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बना देगी। इस तरह भारत विकसित देशों की श्रेणी में आ जाएगा। यह तो समय बताएगा क्योंकि यह दावे तो भविष्य के गर्भ में हैं। फिर जीडीपी के पैमाने पर किए जा रहे यह दावे कितने कल्याणकारी होंगे इस पर विवाद है। लेकिन हाल में सरकार ने गरीबी उन्मूलन के जो सुनहरे आंकड़े जारी किए हैं उस पर गंभीर विवाद उठा हुआ है। नीति आयोग ने 15 जनवरी को जो आंकड़े जारी किए हैं उसके अनुसार एक दशक में 24.82 करोड़ भारतीयों को गरीबी से बाहर निकाला गया। नीति आयोग जो पहले योजना आयोग हुआ करता था और मोदी की एनडीए सरकार आने के बाद नया नाम हासिल कर लिया उसने इस आकलन के लिए एमपीआईयानी मल्टीडाइमेंशनल पावर्टी इंडेक्स का इस्तेमाल किया है। यह पैमाना 2004-05 से भारत में उपस्थित है लेकिन इसका इस्तेमाल गरीबी का विधिवत आकलन करने के लिए नहीं किया जाता। बल्कि सुरेश तेंदुलकर और सी रंगराजन समिति ने अलग अलग पैमाने बताए थे जिसके माध्यम से गरीबी का आकलन किया जाता था।

हालांकि सरकार ने इसी एमपीआईका इस्तेमाल करते हुए कहा है कि 2013-14 में मल्टीडाइमेंशनल पावर्टी 29.17 प्रतिशत थी जो कि 2022-23 में घटकर 11.28 प्रतिशत हो गई। इसी के आधार पर दावा किया जा रहा है कि भारत 2030 तक स्थायी विकास लक्ष्य यानी एसडीजी (SDG) को हासिल कर लेगा। नीति आयोग के इन आंकड़ों से उत्साहित प्रधानमंत्री ने तुरंत ट्वीट किया कि बहुत अच्छा हुआ हम सकल विकास के लिए प्रयास करते रहेंगे। लेकिन अर्थशास्त्रियों की नजर में यह सूचकांक अपर्याप्त है और इस आधार पर किए गए दावे बेबुनियाद हैं।

अर्थशास्त्रियों का मत है कि एमपीआई उपभोक्ता तक पहुंचने वाली कुछ खास किस्म की सेवाओं और वस्तुओं को ही नापता है और बाकी तमाम जरूरत की चीजों को छोड़ देता है। इसलिए इस सूचकांक को अधूरा सूचकांक माना जाता है और इसके साथ दूसरे सूचकांक को मिलाकर गरीबी का आकलन किया जाता है। भारतीय आर्थिक सेवा के अधिकारी रहे के.एल. दत्ता का कहना है कि एमपीआई के तहत रसोई गैस, सफाई, पीने का पानी, रेडियो, टीवी, फोन, कंप्यूटर, गाड़ी, साइकिल और अन्य उपयोगी सुविधाओं का हिसाब नहीं किया जाता। इसमें अल्पकालिक क्रय शक्ति का हिसाब भी नहीं होता। इस सूचकांक को ज्यां द्रेज भी खारिज करते हैं और कहते हैं कि पूरी दुनिया में इस पैमाने को अकेले पढ़ने की बजाय दूसरे आंकड़ों के साथ मिलकर पढ़ा जाता है।

पटना के ए.एन. सिन्हा संस्थान के निदेशक रहे एक अन्य अर्थशास्त्री सुनील रे के अनुसार स्थायी विकास लक्ष्य यानी एसडीजी तभी हासिल होगा जब लोग अपनी जरूरत की चीजों का इंतजाम स्वयं करें। जिस देश में सरकार को दो तिहाई आबादी को मुफ्त का राशन देना पड़ रहा हो वहां कैसे यह दावा किया जा सकता है कि वह बहुत शीघ्र एसडीजी हासिल कर लेगा। कलकत्ता विश्व विद्यालय के पूर्व कुलपति और अर्थशास्त्री आशीष बनर्जी का कहना है कि अगर एमपीआई घट रहा है तो इसके लिए यूपीए सरकार की ओर से चलाए गए तमाम कार्यक्रमों को श्रेय दिया जाना चाहिए न कि एनडीए सरकार के कार्यक्रमों को।

भारत में बढ़ती असमानता को आक्सफैम के आंकड़ों की नजर से देखें तो स्थिति चिंताजनक है न कि उत्साहवर्धक। आक्सफैम के 2023 के आंकड़ों के अनुसार अमीर और गरीब की खाई भारत में बढ़ रही है। भारत की आबादी के निचले आधे हिस्से के पास देश की आय का महज 13 प्रतिशत है जबकि संपत्ति के लिहाज से वह सिर्फ 3 प्रतिशत है। भारत में गरीबों की आबादी 22.89 करोड़ है जो कि दुनिया में सर्वाधिक है। देश के सौ अमीरों की कुल संपत्ति 54.12 लाख करोड़ रुपए की है। जबकि शीर्ष के दस अमीरों की संपत्ति 27.52 लाख करोड़ रुपए की है। 2020 में देश में 102 अरबपति थे जो 2023 में बढ़कर 166 हो गए। 2021 के बाद अमीरों की संपत्ति में वृद्धि 32.8 प्रतिशत की दर से हुई है।

इस सरकार का दूसरा महत्त्वपूर्ण दावा भारत को लोकतंत्र की जननी बताने का है। जी-20 सम्मेलन के दौरान इस बारे में एक दस्तावेज भी जारी हुआ है जिसमें दावा किया गया है कि लोकतंत्र का जन्म यूनान में नहीं भारत में हुआ है। इस तरह के तमाम दावे किए जा सकते हैं और भारत के प्रधानमंत्री इस पर अपनी पीठ भी ठोंक सकते हैं। डा भीमराव आंबेडकर भी बौद्ध संघ में लोकतंत्र होने का दावा करते हैं और कहते भी हैं कि उन्होंने प्रज्ञा, करुणा, समता और मैत्री के मूल्य वहीं से लिए हैं न कि फ्रांस की राज्य क्रांति से। लेकिन जब आज के भारत में लोकतंत्र छीज रहा हो तब हम कैसे भला यह सोच कर संतुष्ट हो सकते हैं कि प्राचीन भारत में लोकतंत्र है।

अगर हम लोकतंत्र के बारे में विश्व सूचकांक के पैमाने पर भारत का मूल्यांकन करेंगे तो पाएंगे कि उसकी स्थिति काफी नीचे है और वह अधिनायकवाद की ओर बढ़ रहा है। वी-डेम की रिपोर्ट के अनुसार एक साल पहले यानी 2022 में भारत की स्थिति सौवें नंबर पर थी लेकिन अब वह 108 वें नंबर पर जा चुका है। जबकि अमेरिका 23 वें नंबर पर, कनाडा 24 वें नंबर पर और ब्रिटेन 20 वें नंबर पर है। भारत वास्तव में नीचे के आधे हिस्से में स्थित देश है और उसकी लोकतांत्रिक साख निरंतर गिर रही है। यह अलग बात है कि जब लोकतंत्र पूरी दुनिया में कमजोर हो रहा है और दक्षिणपंथी ताकतों का तीव्र उभार हो रहा है तो भारत का भी उसकी चपेट में आना स्वाभाविक है। भारत में प्रेस की आजादी की भी स्थिति बुरी है। दुनिया के कुल 180 देशों में भारत की स्थिति 161 वीं है। यानी नीचे से थोड़ी ऊपर।

यह तो हुई दुनिया की नजर में भारतीय लोकतंत्र की स्थिति। जी-20 देशों के सम्मेलन के समय भारत में किसी भी राष्ट्राध्यक्ष को प्रेस से बात की अनुमति नहीं दी गई। अमेरिकी प्रशासन ने ऐसा किए जाने के लिए प्रयास भी किया लेकिन भारत सरकार ने साफ मना किया। बल्कि भारत सरकार ने कहा भी कि बाली में अगर इसकी इजाजत

थी तो वह अलग बात है। लेकिन भारत में इसकी इजाजत नहीं दी जा सकती। भारत में बोलने की इजाजत न मिलने पर अमेरिका के राष्ट्रपति जो बाइडेन ने मनीला में जाकर प्रेस काफ्रेंस की और भारत के बारे में कई चिंताजनक बातें कहीं।

वास्तव में भारत पिछले दस सालों में तेजी से बहुसंख्यकवाद की ओर गया है। जहां पर अल्पसंख्यकों, विपक्षी नेताओं और स्वतंत्र मीडिया पर शिकंजा कसता है और समर्थकों को मनमानेपन की खुली छूट दी जाती है। न्यायपालिका के जजों ने साफ कहना शुरू कर दिया है कि हम विपक्ष की भूमिका नहीं निभा सकते। जब देश में मजबूत बहुमत की सरकार होती है तो ऐसे ही फैसले दिए जाते हैं। प्रेस कहने लगा है कि उसे व्यवसाय करना है न कि सत्य का अनुसंधान। इसलिए उसके प्रथम पृष्ठ पर सरकारी विज्ञापनों की भरमार होती है और वही बात उसकी खबरों में भी रहती है। इलेक्ट्रानिक मीडिया का बड़ा हिस्सा नफरत फैलाने के कारोबार में शामिल हो गया है क्योंकि वैसा ही वातावरण सत्ता में बैठे लोग चाहते हैं। सीएजी और लोकपाल, केंद्रीय सतर्कता आयोग जैसी संस्थाएं अब निष्क्रिय हो गई हैं और उनकी जगह पर विपक्ष से पूछताछ की सूची लिए सीबीआई और ईडी घूम रही है। ऐसे में विपक्ष कहने लगा है कि उसे अपने नेताओं की सुरक्षा करनी है न कि लोकतंत्र की रक्षा। जबकि जनता को धर्म और राजनीति के घालमेल पर तैयार खिचड़ी से मादक भक्ति की ओर ले जाया जा रहा है। अयोध्या में राममंदिर में प्राण प्रतिष्ठा को लेकर जिस तरह राष्ट्रीय उन्माद पैदा किया जा रहा है वह इसका प्रमाण है।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जब 1931 में कांग्रेस पार्टी ने मौलिक अधिकारों का प्रस्ताव पेश किया तो कहा था कि राज्य धर्म के मामलों में तटस्थ रहेगा। जब संविधान बना तो उसी भावना का ध्यान रखा गया। आपातकाल में भले संविधान के प्रस्तावना में सेक्यूलर(धर्मनिरपेक्ष) शब्द जोड़ दिया गया हो लेकिन वह भावना स्वतंत्रता संग्राम से ही रही है। इसी भावना का ध्यान रखते हुए महात्मा गांधी ने तत्कालीन उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल को इस बात के लिए मना किया था कि वे सरकारी पद पर रहते हुए सोमनाथ के मंदिर के पुनर्निर्माण पर ध्यान न दें। पटेल मान गए थे। हालांकि राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद उसके उद्घाटन पर गए थे लेकिन तब गांधी नहीं थे और प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने आपत्ति की थी।

आज जब अयोध्या में धर्म और संविधान दोनों की मर्यादा को भंग करके प्रधानमंत्री उसका उद्घाटन कर रहे हैं तब देश में उन्हें टोकने वाली कोई आधुनिकसंस्था नहीं बल्कि शंकराचार्यों की संस्था खड़ी हुई है। शंकराचार्यों ने कहा है कि अधूरे मंदिर में किसी देवता की प्राण प्रतिष्ठा शास्त्र सम्मत नहीं है। एक ओर अयोध्या में राममंदिर निर्माण का मुकदमा जीतने वाले रामलला विराजमान की उपेक्षा करके नई मूर्ति स्थापितकी जा रही है और न्यायपालिका और संविधान के आदेश का उल्लंघन किया जा रहा है तो तो दूसरी ओर धार्मिक आचार्यों के कार्य को अपने हाथों में पीएम ने धार्मिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न किया है। कुल मिलाकर देश की धार्मिक और संवैधानिक संस्थाओं पर संघ परिवार के कब्जे का इरादा है उसका संवैधानिक विरोध तो खामोश हो चुका है रहा सहा विरोध कभी शंकराचार्य करते हैं तो कभी कोई और। लेकिन वह भी कितने दिन टिकेगा कह नहीं जा सकता।

एक और काम इस सरकार ने किया है जो मौलिक अधिकारों के लिए खतरनाक होता जा रहा है। निवारक नजरबंदी कानूनों को सख्त से सख्त बनाया गया है। यूएपीए कानून के तहत गिरफ्तार लोगों को तीन तीन साल तक जमानत नहीं मिल रही है। पीएमएलए के तहत गिरफ्तार होने वालों को अपराध की सूचना और एफआईआर की कापी देना जरूरी नहीं है। उनकी जमानत पर भी जल्दी विचार नहीं किया जाता। इस बीच लार्ड मैकाले द्वारा 1857 के विद्रोह से उठी आग और बची हुई चिनगारी को बुझाने के लिए बनाए गए कानून आईपीसी, सीआरपीसी और इंडियन इवीडेंस एक्ट को बदल कर यह दावा किया जा रहा है कि सरकार गुलामी के औपनिवेशिक कानून मिटा रही है और विऔपनिवेशीकरण कर दिया गया है। लेकिन मौजूदा कानून पुराने कानूनों से भी सख्त हैं और एक तरह से तेजी से सजा दिए जाने की भी व्यवस्था कर दी गई है। सबूत का भार भी बहुत सारे मामलों में अभियुक्त के ऊपर डाल दिया गया है। विऔपनिवेशीकरण के नाम पर अंग्रेजों से ज्यादा तीव्र गति से औपनिवेशीकरण किया जा रहा है। वह काम भाषा, साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास और तमाम दूसरी विधाओं में किया जा रहा है। इससे भारत एक ओर ईरान और तुर्की जैसी स्थितियों में पहुंच रहा है दूसरी ओर पहले से भी ज्यादा विभाजित महसूस कर रहा है।

कुल मिलाकर भारत को न सिर्फ अपने विचार के लिए नई खोज की जरूरत है बल्कि एक लंबे लोकतांत्रिक संघर्ष की जरूरत है। सवाल उठता है कि क्या भारत का राजनीतिक विपक्ष और व्यापक जनपक्ष इसके लिए तैयार है?

यह राजघाट षड्यंत्र है

अरविंद अंजुम

यह राजघाट षड्यंत्र है। जी हां। एकदम खालिस, सौ फीसदी। न कोई मिलावट, न कोई शक न कोई शुबहा। इस साजिश को प्रधानमंत्री कार्यालय (श्रीमान नरेंद्र मोदी) के इशारे पर सत्ता के नशे में चूर वाराणसी प्रशासन के मतवाले प्यादों/अफसरों ने अंजाम दिया है। नॉर्दर्न रेलवे के कुछ अधिकारी इस साजिश में हास्यास्पद तरीके से कदमताल करते नजर आ रहे है। वाराणसी एवं रेलवे प्रशासन के चिन्हित पदाधिकारियों ने अपने आका की हवस को पूरा करते हुए 1960 में स्थापित परिसर को पहले तो 22 जुलाई 2023 को पुलिस के संरक्षण में अवैध रूप से कब्जा कर लिया और फिर 12 अगस्त 2023 को परिसर के अधिकांश भवनों को बुलडोजर चलाकर ध्वस्त कर दिया। सर्व सेवा संघ के राजघाट परिसर को तीन चरणों में कब्जा किया गया है। इसकी शुरुआत होती है 2 दिसंबर 2020 से, जब सर्व सेवा संघ आंतरिक उथल-पुथल से जूझ रहा था। दूसरी कोशिश होती है गांधी विद्या संस्थान को वाराणसी के कमिश्नर कौशल राज शर्मा द्वारा हथियाने की और फिर तीसरा प्रयास है 22 जुलाई 2023 को वाराणसी व रेल प्रशासन द्वारा अवैध कब्जा और 12 अगस्त 2023 को परिसर के भवनों का ध्वस्तीकरण। हम सिलसिलेवा इस साजिश को समझने की कोशिश करेंगे।

1. भूदान के प्रणेता संत विनोबा भावे की कल्पना के आधार पर 1960 में सर्व सेवा संघ परिसर की स्थापना वाराणसी में हुई थी। इसके लिए भूमि क्रमशः 3 रजिस्टर्ड बयनामा वर्ष 1960, 1961 और 1970 द्वारा रेलवे से प्राप्त की गयी थी। जिसका क्रय मूल्य ट्रेजरी के माध्यम से जमा किया गया था। तीनों रजिस्ट्री करने वाले रेलवे अधिकारी तत्कालीन डिविजनल रेलवे इंजीनियर थे और रेलवे के उस समय के प्रावधानों के अनुसार विक्रय की कार्यवाही के लिए सक्षम प्राधिकारी थे। रजिस्ट्री के समय रजिस्ट्रार ने विक्रय करने वाले अधिकारियों की वैधानिकता को पूरी तरह जांच कर अपनी आख्या भी सेल डीड पर अंकित की है।

2. राजस्व अभिलेखों में 1960 और 1961के बयनामे के आधार पर सर्व सेवा संघ का उसी समय से नाम चला आ रहा है और भूमि का उपयोग और उपभोग भी होता आ रहा है। केवल एक रजिस्ट्री जो 1970 में हुई है, का ही अमलदरामत तकनीकी कमियों से नही हो सका है और वह पत्रावली लंबित है। रेलवे से सर्व सेवा संघ का कोई विवाद कभी नही रहा है।

3. माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद के समक्ष याचिका संख्या सी-29975t/2007 अखिल भारत सर्व सेवा संघ बनाम स्टेट ऑफ़ यू पी प्रस्तुत किया गया था. जिसे दिनांक 16/05/2023 को निस्तारित करते हुए जिलाधिकारी वाराणसी को निर्देशित किया गया कि वे आराजी संख्या 18 व 19 स्थित ग्राम सरैताबाद, परगना देहात अमानत, मोहल्ला राजघाट एफसी, काशी, तहसील व जिला वाराणसी के सम्बन्ध में अखिल भारत सर्व सेवा संघ (वादी संख्या 1) के स्वामित्व व हक संबंधी भू अभिलेखों का परीक्षण कर और उसका स्वामित्व उन दोनों आराजियात पर स्थापित होने पर लीजशुदा जायदाद (मिनजुमला आराजी संख्या 18 व 19 उपरोक्त) पर उनका कब्जा दखल कराएं.

4. ज्ञात हो कि उच्च न्यायालय में यह याचिका जयप्रकाश नारायण की प्रेरणा से स्थापित गांधी विद्या संस्थान के पंजीयन को रद्द करने के निर्णय को जिला न्यायालय दशम द्वारा बहाल रखने के खिलाफ किया गया था। यह उल्लेखनीय है कि गांधी विद्या संस्थान के लिए सर्व सेवा संघ ने जमीन उपलब्ध कराई थी और उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि ने उक्त जमीन पर भवनों का निर्माण कराया था। सर्व सेवा संघ और उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि में एक 30 वर्षीय लीज करार हुआ था, जिसमें स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि अगर किसी कारणवश गांधी विद्या संस्थान बंद हो जाता है या अन्यत्र स्थानांतरित हो जाता है तो वैसी स्थिति में जमीन स्वतः सर्व सेवा संघ की हो जाएगी और भवनों का उपयोग उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि की सहमति से हो सकेगा। गांधी विद्या संस्थान के बायलॉज में भी यह प्रावधान उल्लिखित है। चूंकि 2007 से यह मामला उच्च न्यायालय में लंबित था और गांधी विद्या संस्थान की गतिविधियां भी ठप थी, अतः अप्रैल 2023 में सर्व सेवा संघ की ओर से उच्च न्यायालय में मेंशन कर इस मामले पर जल्द सुनवाई और सर्व सेवा संघ को उसकी जमीन लौटाने का आग्रह किया गया था। इसी संबंध में 16 मई 2023 को माननीय आलोक माथुर के बेंच ने उक्त फैसला दिया था।

5. उच्च न्यायालय इलाहाबाद के 16 मई 2023 के

फैसले के 1 दिन पहले ही कौशल राज शर्मा, आयुक्त, वाराणसी के निर्देश पर गांधी विद्या संस्थान के भवनों पर बिना किसी सूचना के प्रशासन ने कब्जा कर लिया और इस परिसर को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली को क्षेत्रीय कार्यालय बनाने के लिए सुपुर्द कर दिया। भारत सरकार की इस संस्था के अध्यक्ष के रूप में फिलहाल आर एस एस से जुड़े राम बहादुर राय अध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। आयुक्त का यह कदम पूरी तरह क्षेत्राधिकार का उल्लंघन था। यहां यह बताना उचित है कि जिला सत्र न्यायालय, एडीजे दशम, द्वारा 28 मई 2007 को दिए गए फैसले के अनुसार गांधी विद्या संस्थान को विघटित करते हुए करते हुए वाराणसी के आयुक्त की अध्यक्षता में एक संचालक मंडल बना दिया गया और संचालक मंडल को निर्देशित किया कि चूंकि यह एक महत्वपूर्ण संस्थान है , अतः इसे संचालित किया जाए। इस संचालक मंडल को 2016 में पुनर्गठित किया गया है।

6. 2007 से लेकर 14 मई 2023 तक संस्थान पर जिला प्रशासन का ताला बंद रहा, संचालन नहीं किया गया। इस संबंध में सर्व सेवा संघ की ओर से प्रत्यक्ष मिलकर और लिखित रूप से निवेदन किया गया था कि संस्थान की लाइब्रेरी अमूल्य है, किताबें नष्ट हो रही है, अतः इसकी देखरेख की जिम्मेवारी सर्व सेवा संघ को दे दी जाए। साथ ही यह भी निवेदन किया गया था कि जेपी निवास, जो असामाजिक तत्वों का अड्डा बन गया था, को दुरुस्त कर संचालन की जवाबदेही भी सर्व सेवा संघ को सौंप दी जाए। लेकिन प्रशासन ने न तो खुद इस संबंध में पहल किया और न ही सर्व सेवा संघ को इसकी जिम्मेवारी सौंपी गई।

सर्व सेवा संघ परिसर, चाराणसी में आयुक्त का 18 जनवरी 2023 को अचानक आगमन हुआ। निश्चित रूप से जमीन की टोह में ही आए थे। प्रकाशन भवन में आने पर उन्हें उपहार स्वरूप सत्य के प्रयोग और गीता प्रवचन की एक-एक प्रति दी गई। उम्मीद थी कि वे सत्य की राह पर चलेंगे। पर वे असत्य की राह पर ही चलते रहे। इसके बाद क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी, वाराणसी का पत्रांक हे.का.बा./2922-26/2022-23 दि. 25.02.2023 को प्राप्त हुआ। क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी, वाराणसी के उक्त पत्र के माध्यम से जानकारी मिली कि उच्च शिक्षा अनुभाग-4, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ के पत्र संख्या 1266/सत्तर-4-2016(1)/2007 दि. 16 सितंबर 2016 द्वारा मण्डलायुक्त, वाराणसी की अध्यक्षता में गठित समिति की 28.02.2023 को पूर्वान्ह 11.30 बजे आयुक्त के कैम्प कार्यालय में क्षेत्रीय निदेशक, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, क्षेत्रीय केन्द्र, वाराणसी के अनुरोध के क्रम में गांधी विद्या संस्थान परिसर को उनकी संस्था को प्रदान करने के संबंध में एक बैठक बुलाई गयी है।

उल्लेखनीय है कि 'क्षेत्रीय निदेशक, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, क्षेत्रीय केन्द्र, वाराणसी का क्या अनुरोध है, सर्व सेवा संघ को न तो आज तक प्राप्त हुआ है और न ही मण्डलायुक्त की ओर से इस संबंध कोई प्रस्ताव उपलब्ध कराया गया है।

इस बैठक में सर्व सेवा संघ के स्थानीय प्रतिनिध रामधीरज भाई उपस्थित रहे। बैठक में कोई निर्णय नहीं हुआ। मण्डलायुक्त की मंशा सर्व सेवा संघ को न्यायसंगत नहीं लगी। फलस्वरूप सर्व सेवा संच के अध्यक्ष श्री चंदन पाल और प्रबंधक ट्रस्टी श्री शेख हुसैन की ओर से पत्रांक 2022-23/1250 दि. 28.02.2023 जारी कर मण्डलायुक्त को इस निवेदन के साथ अवगत कराया गया कि 'संस्थान के विवादित मामले माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में विचाराधीन हैं। संस्थान के संदर्भ में कोई भी निर्णय सर्व सेवा संघ एवं उ. प्र. गांधी स्मारक निधि की सहमति से ही संभव है। इसके साथ ही इस तथ्य का भी उल्लेख किया कि संचालन समिति का गठन गांधी विद्या संस्थान को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु किया गया है, किसी अन्य संस्था को स्थानांतरित करने पर विचार करना संचालन समिति के क्षेत्राधिकार में शामिल नहीं है। उपरोक्त तथ्यों के आलोक में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र का अनुरोध प्रासंगिक एवं न्याय संगत नहीं है। अतः इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया जाए।

बैठक में आईसीएसएसआर के निर्देशक भी ऑनलाइन जुड़े थे। उन्होंने जब पूछा कि क्या इस संबंध में कोई प्रस्ताव इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र की ओर से आया है, तो आयुक्त कौशल राज शर्मा ने इनकार किया। स्पष्ट है, पूरी कवायद मनमाने और मौखिक रूप से चल रही थी और इसमें कौशल राज शर्मा की व्यक्तिगत दिलचस्पी दिख रही थी।

7. जिलाधिकारी, वाराणसी द्वारा माननीय उच्च न्यायालय के आदेश का समुचित रूप से परिशीलन नही किया गया, न ही हमारे द्वारा प्रस्तुत भू स्वामित्व के कागजातों को ही महत्व दिया गया और माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के सुसंगत पैरा 9 को पूरी तरह उपेक्षित करते हुए उक्त आराजियात के अलावा वादी संख्या 1(सर्व सेवा संघ) की क्रयशुदा अन्य आराजियात के बाबत भी आदेश दिनांक 26/06/2023 पारित कर दिया गया जिसमे हमारे पंजीकृत बयनामा वर्ष 1960, 1961 एवं 1970 को भी अमान्य करते हुए यह कहा कि क्रयशुदा आराजियात उत्तर रेलवे की है. उक्त मामले की सुनवाई के दौरान रेलवे की तरफ से कहा गया कि उनके यहां डिविजनल रेल इंजीनियर का पद कभी था ही नही जबकि यह तथ्य

सही नही है।

16 मई 2023 के जिस आदेश के द्वारा हाईकोर्ट ने जिलाधिकारी, वाराणसी को जो दायित्व सौंपा था, उस सामान्य आदेश को वाराणसी प्रशासन ने अपने षड्यंत्र का हिस्सा बना लिया। जिलाधिकारी एस राजलिंगम को सिर्फ स्वामित्व के कागजातों का परीक्षण करना था और सही पाए जाने पर सर्व सेवा संघ को दखल दिलाना था। लेकिन उसने नॉर्दर्न रेलवे को थर्ड पार्टी के रूप में खड़ा किया और बिना किसी ठोस दस्तावेज के एक तरफा और अनाधिकृत रूप से नॉर्दर्न रेलवे के पक्ष में फैसला दे दिया। हाई कोर्ट के मुकदमे में नॉर्दर्न रेलवे कोई पक्ष नहीं था। आज न कल यह तथ्य एस राजलिंगम को बताना पड़ेगा कि उसने किस आधार पर नॉर्दर्न रेलवे को पार्टी बनाया और टाइटल उसके पक्ष में घोषित किया। ध्यान रहे, जमीन के स्वामित्व निर्धारण का अधिकार सिर्फ सिविल कोर्ट को है। यह अधिकार न तो हाई कोर्ट के पास है और नहीं सुप्रीम कोर्ट के पास। जब हाईकोर्ट के पास टाइटल निश्चित करने का अधिकार ही नहीं है तो वह फिर जिलाधिकारी को यह अधिकार कैसे सौंप सकता है। स्वाभाविक है, हाईकोर्ट ने ऐसा नहीं किया है और जिलाधिकारी राजलिंगम ने कानून की धज्जियां उड़ाते हुए नॉर्दर्न रेलवे के पक्ष में फैसला दिया है।

8. धर-पकड़ कर लाए गए रेलवे अधिकारियों ने 29 मई 2023 को सिर्फ 1960 से पहले का एक नक्शा प्रस्तुत किया जिसमें सर्व सेवा संघ द्वारा खरीदी गई जमीन को रेलवे का बताया गया था। ज्ञात हो कि यह जमीन पहले छावनी की थी और 1941 में इसे नॉर्दर्न रेलवे को हस्तांतरित किया गया था जिसे सर्व सेवा संघ ने 1960, 61 और 70 में खरीद लिया था। 1960 के पहले के नक्शे में नॉर्दर्न रेलवे तथा 1941 के पहले के नक्शे में छावनी का नाम दर्ज मिलेगा ही। यह कोई अनहोनी बात तो है नहीं। रेलवे अधिकारियों ने यह भी बताया कि कि जिन अधिकारियों के पदनाम और हस्ताक्षर बैनामे में दर्ज है, वे पद अस्तित्व में ही नहीं थे। जबकि रेलवे द्वारा 1965 में जारी एक नक्शे, जिसे तत्कालीन जिलाधिकारी कार्यालय द्वारा प्रमाणित भी किया गया है, का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि यह जमीन सर्व सेवा संघ की है और उस समय डिवीजनल रेल इंजीनियर का पद होता था तथा वह मंडल का वरिष्ठ अधिकारी भी था।

9. जिलाधिकारी महोदय के उक्त आदेश दिनांक 26/06/2023 के अनुक्रम में आनन फानन में उत्तर रेलवे प्रशासन द्वारा एक नोटिस दिनांक 27/07/2023 को दोपहर लगभग 3 बजे सर्व सेवा संघ परिसर के भवनों पर इस आशय की सूचना चस्पा कर दी गयी कि दिनांक 30/06/2023 को ध्वस्तीकरण किया जाएगा। 60 वर्षों से कार्यरत एक संस्था को अपने असबाब हटाने के लिए सिर्फ दो दिन का समय दिया गया। संस्था कोर्ट द्वारा किसी प्रकार का राहत प्राप्त न कर सके, इसकी भी व्यवस्था की गई। 29 मई को बकरीद की छुट्टी थी। यानी

सर्व सेवा संघ परिसर राजघाट, वाराणसी

परिसर को रखरखाव पर लेने के राजेश जायसवाल के प्रोजेक्ट प्रपोजल को क्यों भेजा गया?

2 दिसंबर 2020 को प्रशासन 2000 द्वारा कब्जा किए के बाद एक बार भी महादेव विद्रोही एवं प्रदीप कुमार बजाज ने इसका विरोध क्यों नहीं किया?

उपरोक्त तथ्यों और सवालों के परिपेक्ष में आप खुद ही फैसला कर सकते हैं कि महादेव विद्रोही और प्रदीप कुमार बजाज इसमें शामिल रहे हैं या नहीं?

क्या इस साजिश में महादेव विद्रोही भी शामिल हैं

इस सवाल का जवाब तलाशने के पहले राजघाट परिसर, वाराणसी के जमीन कब्जे के संदर्भ में जरूरी तथ्यों पर नजर डालना उपयुक्त होगा।

2 दिसंबर 2020 को सर्व सेवा संघ के राजघाट परिसर की खाली पड़ी जमीन पर वाराणसी प्रशासन ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया और इसे काशी कॉरिडोर का वर्कशॉप बना दिया। यह वही समय था जब सर्व सेवा संघ अपने आंतरिक उथल-पुथल के सबसे कठिन दौर से गुजर रहा था। प्रशासनिक कब्जे के बाद जमीन से संबंधित कागजात ढूंढे जाने लगे तो हमारे सामने निम्नलिखित तथ्य आएः—

22 अक्टूबर 2019 को सर्व सेवा संघ के प्रधान कार्यालय से वाराणसी निवासी प्रदीप कुमार बजाज को सर्व सेवा संघ के वाराणसी परिसर, राजघाट की क्रयशुदा जमीन की मूल रजिस्ट्री नं. 3717 के दस्तावेज स्पीड पोस्ट द्वारा भेजा गया था। यह निर्गत रजिस्टर में दर्ज है और स्पीड पोस्ट की रसीद भी उपलब्ध है। परंतु यह दस्तावेज किस उद्देश्य से और क्यों भेजा गया, इससे संबंधित न तो कोई पत्र कार्यालय में उपलब्ध है और न ही निर्गत-पंजी में इसका कोई उल्लेख है।

* प्रदीप कुमार बजाज को जमीन की रजिस्ट्री सं. 3717 का मूल दस्तावेज भेजा गया है, इस तथ्य का पता 29.11.2019 को तत्कालीन कार्यालय मंत्री मारोती गावंडे के पत्र से चलता है,

❶

कानूनी राहत के लिए सिर्फ एक दिन का समय था। मतलब कि आप छटपटाकर रह जाए। यह प्रशासनिक प्रपंच अब एक पैटर्न बन गया है। सभी जगह आप ऐसे करतूतों को देख सकते हैं।

10. प्रशासन की कुत्सित मंशा को भांपकर अखिल भारत सर्व सेवा संघ की ओर से इस सम्बन्ध में उक्त आराजियात के स्वामित्व निर्धारण के बाबत एक मुकद्मा संख्या 522/2023 न्यायालय सिविल जज (सी. डि.) वाराणसी के समक्ष दाखिल किया गया है जिसमे सुनवाई विचाराधीन है। सरकार और रेलवे ने इस मुकदमे को सुनवाई से पहले ही खारिज कर देने का आवेदन दिया है। पिछले 7 महीनो से इसी बात की बहस जारी है कि मुकदमा अनुरक्षणीय (मेंटेनेबल) है या नहीं। इसी बीच तीन जजों की बदली हो गई। आकाश वर्मा, नेहा यादव, नितेश कुमार सिंहा और अब चौथे जज अश्विनी कुमार के सामने मामला चल रहा है। यह स्थिति तो तब है जब सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले को निपटाने को कहा है।

11. उत्तर रेलवे द्वारा भवनों के प्रस्तावित ध्वस्तीकरण को रोकने के लिए अखिल भारत सर्व सेवा संघ द्वारा माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय नई दिल्ली में याचिका दाखिल की जिसके आदेश में दोनों स्तर पर यह उल्लेख किया गया कि वाद संख्या 522/2023 न्यायालय सिविल जज सी. डि. वाराणसी में विचाराधीन प्रक्रिया इस आदेश से प्रभावित नही होगी और गुण दोष के आधार न्यायालय द्वारा तय होगी।

12. सर्व सेवा संघ के सक्षम अधिकारियों की तरफ से प्रशासन, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति से लिखित निवेदन किया गया था कि स्वामित्व संबंधी लम्बित मुकदमे की सुनवाई तक कोई कार्यवाही न हो। परंतु बेदखली की अवैध कार्रवाई हुई।

13. दिनांक 22 जुलाई 2023 को रेलवे और जिला प्रशासन की तरफ से सैकड़ों की संख्या में पुलिस बल और सफाईकर्मी परिसर में बिना किसी अदालती आदेश या नोटिस के आ गये और जबरिया क्रूरता पूर्वक सभी आवासों से सामान बाहर फेंक दिए . करोड़ो रूपये मूल्य की किताबे बाहर खुले में बारिश में भीगने के लिए फेंक दी गयी , जिनमे बहुत सी पुस्तकें दुर्लभ हैं।

14. पुलिस प्रशासन और रेलवे की इस संयुक्त कार्यवाही एसडीएम, सदर वाराणसी जयदेव सी एस तथा आईआरएस आकाशदीप सिंह के नेतृत्व में चल रहा था। सुबह जब ये परिसर में ताला तोड़कर घुस गए तो उनसे यह पूछा गया कि आपालिस आदेश से परिसर में प्रवेश किए हैं। एसडीएम जयदेव पहले तो टालमटोल करते रहे फिर दबाव डालने पर कहा कि आदेश अधिवक्ता को दिखाएंगे। सर्व सेवा संघ के अधिवक्ता भुवन मोहन श्रीवास्तव मौके पर पहुंचकर आदेश के बाबत जानकारी मांगी तो वे मुंह फेरकर किनारे हो लिए। स्पष्ट है कि उनके पास कोई आदेश नहीं था। इस दौरान किसी को भी बाहर से आने -जाने पर रोक

जिसमें लिखा गया है कि उक्त दस्तावेज सं. 3717 प्रदीप कुमार बजाज को भेजा जा चुका है। इस दस्तावेज को भेजे जाने के कारण का उल्लेख इस पत्र में भी नहीं है।

* श्री मारोती गावंडे के पत्र क्रमांक 217/2019-20 दि. 29.11.2019 में इस बात का जिक्र किया गया है कि प्रदीप कुमार बजाज को राजघाट परिसर, वाराणसी की क्रयशुदा जमीन के अन्य मूल रजिस्ट्री सं. 2762 (पेज-5), 3245 (पेज-6), उद्धरण खतौनी (4 पेज) भेजा रहा है।

* इसी पत्र में यह भी उल्लेख है कि प्रदीप कुमार बजाज को वाराणसी के व्यवसायी राजेश जयसवाल का रखरखाव के आधार पर जमीन लेने से संबंधित पत्र भी भेजा गया है। यह पत्र वास्तव में वाराणसी की जमीन लेने के संबंध में राजेश जयसवाल का पूर्व में प्राप्त प्रस्ताव है, जिसे उन्होंने सर्व सेवा संघ को दिया था। इस प्रस्ताव को असंगत मानते हुए सर्व सेवा संघ ने उसी वक्त ठुकरा दिया था। पूर्व अध्यक्ष महादेव विद्रोही राजेश जयसवाल की नवनिर्मित संस्था गांधीजन फाउंडेशन को सर्व सेवा संघ, वाराणसी की जमीन देना चाहते थे।

उक्त पत्र में यह भी उल्लेख है कि 'काम पूरा हो जाने पर' प्रदीप कुमार बजाज फोन द्वारा सूचित करें, ताकि कार्यकर्ता उनके पास जाकर दस्तावेज प्राप्त कर सकें। परंतु 2 वर्ष बीत जाने के बाद भी श्री प्रदीप कुमार बजाज की ओर से न तो कोई फोन द्वारा सूचना दी गयी है और न ही दस्तावेज वापस किया गया है।

* रजिस्ट्री सं. 3717 का मूल दस्तावेज के संदर्भ में ऐसा मान लिया जाय कि प्रदीप कुमार बजाज को दाखिल-खारिज कराने के उद्देश्य से भेजा गया था, तो दाखिल-खारिज के दावे को तहसीलदार न्यायिक, सदर वाराणसी में वाद संख्या RST/13810/2019, मौजा-किला कोहना, परगना देहात अमानत, तहसीलदार वाराणसी, दफा 34 एल.आर. एक्ट को 31.08.2019 को तहसीलदार (न्यायिक) सदर, वाराणसी द्वारा निरस्त किया जा चुका है। प्रदीप कुमार बजाज ने उक्त दस्तावेज को हस्ताक्षर एवं अपना मोबाइल नंबर दर्ज

❷

लगा दी गयी थी और परिसर की बिजली भी काट दी गयी थी , मीडिया का भी प्रवेश प्रतिबंधित था।

15. एसडीएम जयदेव सीएससी एस तथा रेल अधिकारी आकाशदीप सिंह के नेतृत्व में घुसे पुलिस बल का जब प्रतिवाद किया गया तो सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल, राम धीरज, नंदलाल मास्टर, अनोखेलाल, राजेंद्र मिश्रा, ईश्वर चंद्र, जितेंद्र तथा अरविंद अंजुम को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया जिन्हे दूसरे दिन जमानत पर रिहा किया गया।

16. सर्व सेवा संघ परिसर राजघाट में स्थित भवनों में एक समृद्ध पुस्तकालय था। प्रकाशन के गोदाम में ढाई करोड़ मूल्य की पुस्तकें थी। इनमे कुछ दुर्लभ साहित्य भी थे जो नष्ट हो गए। इन किताबों को डंपर में कूड़े की तरह भर कर नागेपुर ले जाकर खुले खेत में तथा सड़कों पर उलट दिया गया। बारिश की वजह से ये किताबें बिक्री योग्य नहीं रही।

परिसर में गांधी चित्र प्रदर्शनी, बालवाडी, सभागार, विनोबा कुटी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन आदि संचालित हो रहा था। परिसर में 20 से अधिक कर्मचारियों का परिवार कई वर्षों से रह रहा था। सभी गतिविधियों को बंद करा कर सभी को बाहर कर दिया गया। परिसर के अधिकांश असबाब कुर्सियां, मेज , आलमारी, पलंग, चौकी, गद्दे आदि सामानों को वहां से नहीं लाया जा सका जिसे रेलवे के अधिकारियों और पुलिस ने गायब कर दिया। राजतंत्र में जब एक राजा दूसरे राजा को हराते थे तो उनकी बस्तियों में इसी प्रकार की अफरा -तफरी मचती थी और लूटपाट किया जाता था। 22 जुलाई 2023 को न्यू इंडिया का वीभत्स चेहरा राजघाट परिसर में दिख रहा था।

17. सर्व सेवा संघ परिसर सघन वृक्षों से आच्छादित है और अनेक वृक्ष तो काफी पुराने हैं जिनको धरोहर की श्रेणी में माना जाता है। इनमें इमारती, फलदार, शोभाकार और औषधीय वृक्ष शामिल हैं। यह क्षेत्र वरुणा और गंगा नदियों की दो सौ मीटर की परिधि के क्षेत्र में आता है जिस पर कोई नया निर्माण या प्रोजेक्ट की योजना बनाने से पहले राष्ट्रीय हरित आयोग की अनापत्ति लेना आवश्यक होता है। काशी स्टेशन के विकास की प्रस्तावित परियोजना- काशी मल्टी मॉडल डेवलपमेंट प्लान के सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभावों का सामाजिक अंकेक्षण, जन सुनवाई, राष्ट्रीय हरित आयोग की अनापत्ति जैसे प्रक्रिया को सार्वजनिक किये जाने की आवश्यकता को नजरअंदाज किया गया है।

19. प्राइस वाटर कूपर द्वारा मल्टी मॉडल डेवलपमेंट प्लान का जो डिटेल प्रोजेक्ट रिपोर्ट बना है उसमें स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि इस उद्देश्य के लिए सर्व सेवा संघ की 1.27 एकड़ जमीन अधिग्रहित की जाएगी। इसका मतलब साफ है कि उक्त एजेंसी यह मान रही थी कि काशी स्टेशन के बगल में ओल्ड जीटी रोड की दूसरी ओर सर्व सेवा संघ की जमीन स्थित है। प्राइस वाटर कूपर ने इसे नक्शे में भी दिखाया है।

कर तहसील न्यायालय से वापस ले लिया है। अग्रिम कार्रवाई की कोई जानकारी वाराणसी अथवा प्रधान कार्यालय में उपलब्ध नहीं है। इस मामले में ट्रस्टी मंडल के सदस्य मधुसूदन उपाध्याय के निवेदन पर सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक की ओर से मारोति गांवडे के पत्र के आलोक में प्रदीप कुमार बजाज को वाराणसी जमीन से संबंधित सभी दस्तावेज प्रधान कार्यालय, सेवाग्राम अथवा शाखा कार्यालय, वाराणसी को सौंपने हेतु लिखा गया है, जिसकी प्रतिलिपि महादेव विद्रोही एवं मधुसूदन उपाध्याय को भेजी जा चुकी है। प्रदीप कुमार बजाज की ओर से इस बाबत न तो कोई सूचना दी गयी है और न ही कार्यालय को दस्तावेज उपलब्ध कराया गया है।

* इस प्रकार प्रबंधक ट्रस्टी, ट्रस्टी मंडल के सदस्यों अथवा अन्य किसी पदाधिकारी को जानकारी दिये एवं सहमति लिये बगैर

वाराणसी की जमीनों से संबंधित मूल दस्तावेज 3717 के अलावा अन्य दो दस्तावोज 2762 (पेज सं. 5), 3245 (पेज संख्या 6) एवं उद्धरण खतौनी (4 पेज) प्रदीप कुमार बजाज के पास भेजने का कोई औचित्य और प्रसंग नहीं है।

प्रदीप कुमार बजाज के कथित अध्यक्ष घोषित होने के 10 दिनों के अंदर 02 दिसंबर 2020 को स्थानीय प्रशासन, वाराणसी ने सर्व सेवा संघ, राजघाट परिसर वाराणसी की जमीन अराजी नं. 8 को घेर लिया, जिसका तत्काल प्रतिवाद सर्व सेवा संघ के द्वारा 05 दिसंबर 2020 को किया गया। पुनः 15 दिसंबर 2020 को सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल एवं प्रबंधक ट्रस्टी अशोक कुमार शरण के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल वाराणसी के मंडल आयुक्त और जिलाधिकारी से मिलकर प्रशासन की गैरकानूनी कार्यवाई को संज्ञान में लाया और सर्व सेवा संघ की जमीन को अवैध कब्जे से मुक्त कराने का आग्रह किया। तब से लेकर आज तक सर्व सेवा संघ राजघाट परिसर से अवैध कब्जा हटाने के लिए प्रयासरत है।

* प्रदीप कुमार बजाज का एक दल विशेष के प्रति जुड़ाव रहा है. इस बात की जानकारी उनसे परिचित हर व्यक्ति को थी। फिर भी उन्हें संविधान

3

19. सर्व सेवा संघ वाराणसी गांधी जी के विचारों पर चलने वाली संस्था है और संत विनोबाजी व लोकनायक जय प्रकाश नारायण की कर्मस्थली है जो एक राष्ट्रीय धरोहर है। सर्व सेवा संघ प्रकाशन के लिए रेलवे ने साहित्य बिक्री हेतु देश भर के प्रमुख स्टेशनों पर सर्वोदय बुक स्टाल विगत कई दशकों से उपलब्ध कराया हुआ है। इस परिसर मैं दशकों से सर्व सेवा संघ नाम से पोस्ट ऑफिस भी संचालित हो रहा है जिसका रखरखाव शुल्क भी डाक तार विभाग ससेस कार्यालय में जमा करती रही है।

20. रेलवे प्रशासन ने सभी भवनों पर ताला लगा दिया और परिसर में आम जन का प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया। जबकि ऐसा करने के लिए उनके पास किसी न्यायालय का कोई समुचित आदेश नही था।

20. 12 अगस्त 2023 को पुलिस कर्मियों के संरक्षण और वाराणसी प्रशासन के सहयोग से नॉर्दर्न रेलवे ने बुलडोजर चला कर परिसर के अधिकांश भवनों को ध्वस्त कर दिया।

सुबह 7:00 बजे के करीब पुलिस बल की भारी तैनाती की सूचना पाकर इस परिसर की हिफाजत के लिए कई लोग परिसर स्थल, राजघाट पहुंच गए। पुलिस ने किसी को भी परिसर के अंदर प्रवेश नहीं करने दिया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार लोगों में अरविंद कुशवाहा, राम धीरज, फादर आनंद, जागृति राही, अनूप श्रमिक, नंदलाल मास्टर, अनूप आचार्य, तारकेश्वर सिंह, अवनीश तथा ध्रुव कुमार शामिल थे।

कई दिनों तक कई दिनों तक परिसर के भवनों को ध्वस्त करने के लिए बुलडोजर चलता रहा। इसके बाद ईंटों, सरिया और इमारत की लकड़ियों आदि को ठिकाने लगा दिया गया। रेल प्रशासन ने परिसर के भवनो में प्रयुक्त सामानों को नियमानुसार ठिकाने लगाया है या नहीं, यह जानकारी नहीं है।

इस तरह से एक फासिस्ट सरकार की शह पर फुदकनेवाला प्रशासनिक तंत्र ने गांधी, विनोबा और जयप्रकाश नारायण की विरासत को ध्वस्त करने में कोई कसर नहीं रखा। ये साजिश दर साजिश रचते रहे और निर्लज्जला के साथ कानून की धज्जियां उड़ाते रहे। दक्षिणपंथी अमानवीय विचारधारा के संगठन आरएसएस और भाजपा ने गांधी, गांधी परंपरा और गांधी केदो को अपना निशाना बना रखा है। विरूपित करने का यह सिलसिला 1948 में इनके असली राम-नत्थुराम द्वारा गांधी की हत्या से शुरू होता है और अब साबरमती आश्रम के संलग्न इलाके पर जबर दखल, गुजरात विद्यापीठ पर कब्जे के बाद सर्व सेवा संघ के राजघाट परिसर के ध्वस्तीकरण तक पहुंचा है। परंतु एक दिन इसका अंत होना ही है, साजिशों का पर्दाफाश होगा ही। यह हमारा विश्वास है संकल्प है और चुनौती भी। आमीन।

अरविंद अंजुम

संयोजक

जमीन के दस्तावेजों के साथ सर्व सेवा संघ राजघाट

की मर्यादा का घोर उल्लंघन करते हुए 'लोकसेवक' बनाया गया और गांधीवादी व समाज सेवक के रूप में उनकी महिमा का गुणगान किया गया। उनके राजनैतिक सूत्रबद्धता को नजरअंदाज कर दिया गया। 19 फरवरी 2022 को प्रदीप कुमार बजाज को समाजवादी पार्टी का सचिव नियुक्त कर दिया गया। इस तरह एक वर्ष से भी ज्यादा समय से चला आ रहा भ्रम दूर हो गया। समाजवादी पार्टी के सर्कुलर (उपलब्ध) से सिद्ध हो गया कि वे इस दल से जुड़े रहे हैं।

* अब तो प्रदीप कुमार बजाज को अध्यक्ष के रूप में बनाये रखना 'लोकनिन्दा' का विषय बन गया। अतः 19 मार्च 2022 को नये अध्यक्ष चुनने के लिए एक ऑनलाईन बैठक आयोजित की गयी। इसी ऑनलाईन बैठक में अरविन्द रेड्डी को कार्यवाहक अध्यक्ष चुना गया। अरविन्द रेड्डी के कार्यवाहक अध्यक्ष चुने जाने की सूचना तो आयी, लेकिन प्रदीप कुमार बजाज को अध्क्षक्ष पद से हटाने या उनके द्वारा इस्तीफा देने संबंधी कोई जानकारी नहीं दी गई।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में कुछ सवाल उभरते हैं—

इस तथ्य को जानते हुए भी कि प्रदीप कुमार बजाज राजनीतिक दल से जुड़े हुए हैं, उन्हें पहले लोकसेवक और फिर अध्यक्ष बना दिया?

सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक द्वारा प्रदीप कुमार बजाज को जमीन से संबंधित सभी दस्तावेजों को वापस करने के पत्र के बावजूद महादेव विद्रोही ने उक्त दस्तावेजों को प्राप्त करने का प्रयास क्यों नहीं किया?

सर्व सेवा संघ का शाखा कार्यालय वाराणसी में होने के बावजूद 1970 में खरीद की गई जमीन के दाखिल खारिज का जिम्मा प्रदीप कुमार बजाज को क्यों दिया गया?

1960 और 1961 के रजिस्ट्री एवं खतौनी के मूल दस्तावेज प्रदीप कुमार बजाज को क्यों भेजा गया?

–अरविंद अंजुम

4

मोदी सरकार ने भारत की पर्यावरणीय संरचना को ध्वस्त कर दिया है

रश्मि सहगल

किसी व्यक्ति का पर्यावरण दो स्तरों पर कार्य करता है। एक तो व्यक्ति का तात्कालिक पर्यावरण होता है। यदि कोई भाग्यशाली है तो इसमें एक नदी, एक कुआँ, या पेड़ों का झुरमुट शामिल हो सकता है। फिर, यह इस बात पर निर्भर करता है कि कोई कहाँ रह रहा है और यदि वह खासा भाग्यशाली है, तो उसके पर्यावरण में उसकी हर सुबह सूरज को उगते और हर शाम को डूबते हुए देखने की क्षमता शामिल होगी। मेरे मामले में, मेरे जीवन की सबसे बड़ी खुशी देहरादून शहर में सहस्रधारा रोड पर गाड़ी चलाना और सड़क के दोनों ओर उगे प्राचीन पेड़ों की भव्य उपस्थिति को देखना था। वे पेड़, जो 100 साल से भी अधिक पुराने हैं, विविध प्रकार के वन्य जीवन का घर हैं।

पर्यावरणविदों के लगातार विरोध के बावजूद, 2023 में 20 मीटर चौड़ी सड़क बनाने के लिए इन सभी पेड़ों को काट दिया गया। मौजूदा 7.5 मीटर चौड़ी सड़क को पर्याप्त चौड़ा नहीं माना गया। नैनीताल उच्च न्यायालय ने इस सड़क विस्तार को इस चेतावनी के साथ अपनी सहमति दी कि इन पेड़ों को प्रत्यारोपित किया जाए और काटा न जाए। एक शताब्दी पुराने विशाल वृक्षों को प्रत्यारोपित करना एक असंभव कार्य है और आशंका यह है कि इनमें से एक भी वृक्ष जीवित नहीं बचेगा। सड़क के किनारे रहने वाले लोगों का भाग्य अब 15 किलोमीटर लंबे मार्ग पर गाड़ी चलाना है, जो अब बुरी तरह से धूल भरे, भीड़भाड़ वाले मेटल ट्रैक में बदल गया है, जिसके दोनों तरफ दुकानें और अपार्टमेंट ब्लॉक हैं।

मेरे जैसे लाखों भारतीय हैं जो अपने परिवेश के भयानक और विवेकहीन विनाश से उबर नहीं पाए हैं जो उनके रहने के पर्यावरण का पर्याय है। यह विनाश इतना घातक और संपूर्ण है कि बहुमूल्य हवा जिसमें हम सांस लेते हैं, जो पानी हम पीते हैं और अक्सर, हमारा निवास स्थान, यह सब विकास के नाम पर हमसे छीना जा रहा है।

सफ़ेद बालों वाले जीतलाल वैगा (जिनसे मेरी मुलाकात तब हुई जब मैं मध्य प्रदेश के महान जंगलों में गई थी) को सिंगरौली जिले के झरिया के जंगलों में अपना घर छोड़ना पड़ा और वे मध्य प्रदेश के अमलोरी की अमलोरी विस्थापन कॉलोनी में एक बंजर और तकलीफदेह टिन की झोपड़ी में स्थानांतरित हो गए थे, जब उनकी जमीन का अधिग्रहण रिलायंस समूह के सासन अल्ट्रा पावर मेगा पावर प्लांट के निर्माण के लिए कर लिया गया था।

वैगा ने कहा, 'मेरे पास इस नुकसान से उबर सकने का कोई तरीका नहीं है। मैं जंगलों में रहने वाला प्राणी हूं लेकिन अब मुझे जलाऊ लकड़ी, महुआ या तेंदूपत्ता के लिए वहां जाने की इजाजत नहीं है क्योंकि कंपनी ने हर जगह गार्ड रख दिए हैं। उन्होंने कहा, "आदिवासियों को ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया गया है, जहां अगर हम मिट्टी और पत्थर खाकर जीवित रह सकें तो सरकार और कंपनी खुश होगी। "

यह कटु विलाप समूचे भारतवर्ष में सुनाई देता है। उत्तराखंड की ग्रामीण आबादी ने सदियों से वनों की देखभाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के तहत अधिक से अधिक भूमि उपलब्ध करने के लिए इन जंगलों की अप्रतिबंधित कटाई से जंगली सूअरों सहित अन्य जंगली जानवरों को खुराक के लिए फसलों को नष्ट करने के लिए मजबूर होना पड़ा है। हिमालय और तराई क्षेत्र में मानव और वन्य जीवन संघर्ष तेज हो गया है।

इस समस्या का उत्तर विकास के वर्तमान मॉडल और उससे होने वाले पारिस्थितिक नुकसान की समीक्षा करना है। लेकिन मोदी सरकार इसके बिल्कुल विपरीत काम कर रही है और पर्यावरण एवं वन मंत्रालय एक रबर स्टांप से कुछ ही बेहतर रह गया है, जिसे हमारे जंगलों, हमारे तटीय क्षेत्रों, हमारे रेगिस्तानों और निश्चित रूप से हमारे पहाड़ी क्षेत्रों को खोलने के लिए घेर लिया गया है। एक अस्थिर और अवांछित विकास प्रतिमान जिसे कुछ शक्तिशाली कॉरपोरेट्स का समर्थन प्राप्त है लेकिन यह बाकी आबादी पर कहर बरपा रहा है।

वर्तमान सरकार द्वारा नष्ट किए गए कुछ प्रमुख कानूनों पर प्रकाश डालने से पहले, इस 'विकासात्मक प्रतिमान' ने जो तबाही मचाई है उसका एक और उदाहरण चार धाम मार्ग के किनारे स्थित शहरों और गांवों में भूस्खलन की समस्या के हवाले से दिया जा सकता है।

बद्रीनाथ के मार्ग पर स्थित धार्मिक नगर जोशीमठ तेजी से धंस रहा है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के राष्ट्रीय रिमोट सेंसिंग सेंटर द्वारा जारी छवियों से पता चला है कि बारह दिनों की अवधि में, यानी 27 दिसंबर 2022 और 8 जनवरी 2023 के बीच, शहर 5.4 सेमी डूब गया। उससे पहले अप्रैल 2022 से नवंबर 2022 के बीच जोशीमठ डूबा लेकिन 9 सेमी की धीमी गति से।

जोशीमठ बचाओ संघर्ष समिति द्वारा भूस्खलन का मुद्दा मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी और उनके अधिकारियों के समक्ष बार-बार उठाया गया पर कोई फायदा नहीं हुआ. अंततः, दिसंबर 2022 के अंत में, निवासी सड़कों पर उतर आए और यातायात को अवरुद्ध करना शुरू कर दिया। इसके बाद ही मुख्यमंत्री धामी ने शहर का त्वरित दौरा किया और उन 169 परिवारों को मुआवजा देने का वादा किया, जिन्हें बाहर स्थानांतरित करना पड़ा क्योंकि उनके घरों की दीवारों में बड़ी दरारें आ गई थीं और उन्हें ध्वस्त करना पड़ा था।

एक साल बाद, धामी ने परिवारों को 90 किमी दूर स्थित गौचर गांव में स्थानांतरित करने के लिए मुआवजा पैकेज की पेशकश की है। निवासियों ने सरकार को सूचित किया है कि वे बाहर जाने के बजाय अपने असुरक्षित घरों में रहना पसंद करेंगे क्योंकि उनकी आजीविका पर्यटन पर निर्भर करती है क्योंकि अधिकांश लोग अपने घरों से होमस्टे या छोटे होटल चलाते हैं।

बेशक जिनके घरों को असुरक्षित घोषित कर दिया गया था और उन्हें ध्वस्त करने की आवश्यकता थी, उनके पास स्थानांतरित होने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। सत्तर वर्षीय डी एस रावत , जो अपनी पत्नी गोदावरी के साथ एक कमरे के पुनर्वास केंद्र में जाने वाले शुरुआती परिवारों में से एक थे, एक टूटे हुए व्यक्ति हैं। रावत जो सशस्त्र सीमा बल में नौकरी करते थे, अभी भी अपनी नई वास्तविकता से संगति नहीं बिठा सके हैं।

'मैंने अपने पूरे जीवन की कमाई अपने घर पर खर्च कर दी और मैं एक शांतिपूर्ण और निरापद सेवानिवृत्त जीवन जीने की आशा कर रहा था। सबसे दुखद बात यह है कि यदि राज्य ठीक समय पर हस्तक्षेप करता तो इस आपदा को टाला जा सकता था, ' उन्होंने कहा।

अन्य कहानियाँ भी उतनी ही हृदय विदारक हैं। वयोवृद्ध आशा देवी स्वीकार करती हैं कि कैसे उन्होंने घर बनाने के लिए एक-एक ईंट अपनी पीठ पर ढोई, क्योंकि वे मजदूरी का भुगतान करने में सक्षम नहीं थीं।

जोशीमठ के निवासियों का मानना है कि उनके शहर के करीब विष्णुगाड-तपोवन 520 मेगावाट जलविद्युत परियोजना के निर्माण के दौरान किए जा रहे विस्फोट कार्य के कारण भूमि धंसने की घटना हुई है। चिंता का दूसरा विषय शहर के ठीक नीचे हेलंग-मारवाड़ी बाईपास के निर्माण के लिए की जा रही अत्यधिक ब्लास्टिंग थी। यह सर्वविदित है कि यह शहर एक हिमनदीय हिमोढ़ (ग्लेशियल मोरेन) पर बनाया गया है जिसमें इसे मजबूत आधार प्रदान करने के लिए कोई ठोस चट्टान नहीं है।

जनवरी 2022 में, प्रदर्शनकारियों को शांत करने के लिए, धामी ने हेलंग-मारवाड़ी बाईपास पर की जा रही ब्लास्टिंग को रोकने का वादा किया था। आठ महीने बाद, उन्होंने अपना पिछला निर्णय रद्द कर दिया और ब्लास्टिंग एक बार फिर से शुरू कर दी गई है। हिमालय पर्वत की नाजुक स्थिति लोगों की नजरों से छिपी नहीं है। पहाड़ियाँ अस्थिर हो गई हैं और यहाँ लगभग प्रतिदिन भूस्खलन हो रहा है।

मोदी के दस साल के कार्यकाल में हमारे पर्यावरण और वन कानूनों को लगातार खत्म किया जा रहा है। सबसे हालिया संशोधन वन संरक्षण अधिनियम 1980 में संशोधन है। यह अधिनियम वन अधिकारियों को हमारे जंगलों और वन संपदा की सुरक्षा के लिए लड़ने का एक मजबूत हथियार प्रदान करता है। मोदी सरकार ने वन संरक्षण संशोधन अधिनियम 2023 पारित किया, जिसने न केवल सुप्रीम कोर्ट के 1996 के विस्तृत गोदावर्मन फैसले को पलट दिया, बल्कि आज पर्यावरणविदों के पास हमारे जंगलों की रक्षा के लिए कोई सुरक्षा उपाय नहीं बचा है।

प्रकृति श्रीवास्तव, जो हाल ही में केरल के प्रधान मुख्य वन संरक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुई हैं, कहती हैं, 'तथाकथित संशोधन वास्तव में एक नया अधिनियम है,

जिसे संशोधन के नाम पर लाया जा रहा है। इसका अंतर्निहित उद्देश्य 'कंजर्वेशन, नेट ज़ीरो कार्बन रिजीम आदि की भाषा में 'विकास' के लिए आसान विचलनों की अनुमति देना है।'

श्रीवास्तव आगे चेतावनी देती हैं, 'गोदावर्मन फैसले को प्रतिबंधित करना, वनों के बड़े हिस्से को विचलन की स्थिति में कानूनी जांच के दायरे से हटाना, पारिस्थितिक जांच के बिना सुरक्षा और रणनीतिक प्रतिष्ठानों के नाम पर हमारे जंगलों को चिह्नित करना, ऐसी सड़कें बनाना जो जंगलों को दो भागों में बांट देंगी, बिना मूल्यांकन या पिछले परिणामों की जांच के वृक्षारोपण का प्रसार, विनाश का अचूक नुस्खा है। मानव-वन्यजीव संघर्ष का बढ़ना, जलवायु परिवर्तन, खाद्य सुरक्षा, पारिस्थितिक कल्याण और वनों द्वारा प्रदान की जाने वाली पारिस्थितिकी-तंत्र सेवाओं की हानि हमारे संरक्षण कानूनों को ढीला करने के अपरिहार्य परिणाम हैं।'

2014 में मोदी के प्रधान मंत्री बनने से पहले , उन्होंने उद्योग जगत से वादा किया था कि यदि वे निर्वाचित हुए तो यह सुनिश्चित करेंगे कि उनके लिए हरित मंजूरी प्राप्त करना बहुत आसान हो जाए। सत्ता में आने पर, सरकार ने विकासात्मक परियोजनाओं के लिए हरित मंजूरी के आवेदन के लिए एक ऑनलाइन प्रणाली शुरू की और परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव अध्ययन के संचालन के लिए मानक दिशानिर्देश जारी किए। उद्योग के लिए हरित मंजूरी प्राप्त करना आसान बनाने के लिए इसमें जल्दबाजी की गई -- यह वादा नरेंद्र मोदी ने 2014 में प्रधान मंत्री बनने से पहले किया था। मंजूरी की प्रक्रिया को तेज करने के लिए , समयावधि को 580 दिनों से घटाकर 180 दिन कर दिया गया था। तटीय मंजूरी के लिए 2019 में इसे और घटाकर 90 दिन कर दिया गया।

2022 में, ईआईए में एक बार फिर संशोधन किया गया , इस बार इसमें रणनीतिक और रक्षा महत्व की राजमार्ग परियोजनाओं को, जो अन्य स्थानों के अलावा नियंत्रण रेखा से 100 किमी दूर हैं, निर्माण से पहले पर्यावरण मंजूरी से छूट दी गई। इससे यह सुनिश्चित हो जाएगा कि विवादास्पद चार धाम परियोजना के लिए किसी हरित मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी, जिस पर काम 2016 में शुरू हुआ था और जिसके लिए 900 किमी की इस परियोजना को 100 किमी से कम के छोटे खंडों में विभाजित करके जिसके लिए हरित मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी, ईआईए को चतुराई से दरकिनार कर दिया गया था।

पर्यावरण कानूनों को खत्म करने का काम तेजी और उग्रता से हुआ। सरकार ने तटीय विनियमन क्षेत्र अधिसूचना 2011 को सीआरजेड 2018 से बदल दिया, जिसका अर्थ है देश की 7500 किलोमीटर लंबी तटरेखा को भारी बुनियादी ढांचे के विकास के लिए खोलना। यह कदम जून 2014 की शुरुआत में प्रारंभ किया गया था और इससे तटीय पारिस्थितिकी और लाखों छोटे मछुआरों के हितों की कीमत पर रियल एस्टेट क्षेत्र और पर्यटन क्षेत्र को लाभ होगा।

इसकी अगली कड़ी में एमओईएफ ने 27 अक्टूबर 2022 को बंगाल की खाड़ी में अंडमान और निकोबार द्वीप के दक्षिणी सिरे पर स्थित ग्रेट निकोबार द्वीप में एक मेगा बुनियादी ढांचा परियोजना शुरू करने के लिए वन मंत्रालय की मंजूरी दे दी है।

ये सभी परियोजनाएँ एक ही पैटर्न का अनुसरण करती हैं। एक अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे, एक बिजली संयंत्र, एक ग्रीनफील्ड टाउनशिप की स्थापना जो एक ऐसे द्वीप में 160 वर्ग किलोमीटर से अधिक भूमि पर कब्जा करेगी जिसका आकार सिर्फ 900 वर्ग किलोमीटर है और जिसमें से 850 वर्ग किलोमीटर को अंडमान और निकोबार आदिवासी जनजाति संरक्षण विनियमन 1956 के तहत एक आदिवासी रिजर्व के रूप में रखा गया था। ।

अधिक कंक्रीटीकरण. अधिक प्रदूषण. इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि भारत पर्यावरण प्रदर्शन सूचकांक 2018 में निचले पांच देशों में शामिल है, 180 देशों में 177वें स्थान पर। 2016 में हम 141वें स्थान पर थे। वर्तमान सरकार का तीसरा कार्यकाल हमें संभवतः बैरल के सबसे निचले पायदान पर देखेगा।

जनजातीय समुदाय जो देश की आबादी का आठ प्रतिशत हिस्सा है, सबसे बुरी तरह प्रभावित है क्योंकि वे अपनी आजीविका के लिए जंगलों पर निर्भर हैं। दो साल पहले पेश किया गया एक और कानून वन संरक्षण नियम 2022 था जो कलेक्टर को ग्राम सभा की पूर्व सहमति के बिना वन भूमि में परिवर्तन की अनुमति देता है। वरिष्ठ अधिवक्ता, कॉलिन गोंसाल्वेस बताते हैं, 'इन नए नियमों का सबसे शोषणकारी पहलू यह है कि केंद्र सरकार को अब वनों के दोहन के लिए डेवलपर के साथ

सीधे अनुबंध में प्रवेश करने की अनुमति है। पैसा केंद्र को सौंप दिया जाता है और व्यक्तिगत आदिवासी या ग्राम सभा को देय भुगतान का निपटान राज्य सरकार पर छोड़ दिया जाता है। यह केंद्र के लिए एक सम्पन्न कार्य होगा, जिसमें आदिवासियों को कोई मुआवजा नहीं मिलेगा।''

कार्यकर्ताओं ने सावचेत किया है कि केंद्र सरकार वन अधिकार अधिनियम और पंचायत विस्तार अनुसूची क्षेत्र अधिनियम को निरस्त करने पर भी काम कर रही है, जो ग्राम सभा को सर्वोच्च बनाता है। वन अधिकार अधिनियम का मामला पहले से ही सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, केंद्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया है कि आदिवासियों के भूमि भूखंडों के ८०% दावे झूठे पाए गए हैं और खारिज कर दिए गए हैं।

वकील गोंसाल्वेस ने कहा, 'उन अस्वीकृति आदेशों को पढ़ने से पता चलता है कि वे केवल एक-पंक्ति वाले हैं जो इस बात का कोई कारण नहीं बताते हैं कि इन दावों को क्यों खारिज कर दिया गया है।'

आदिवासी समुदायों को डर है कि वन अधिकार अधिनियम में संशोधन से पारंपरिक जंगलों पर उनका अधिकार खत्म हो जाएगा, क्योंकि इससे उनकी जमीन प्रमुख औद्योगिक और कॉर्पोरेट घरानों को आसानी से हस्तांतरित हो जाएगी।

विभिन्न आदिवासी संगठन वन अधिकार अधिनियम 2006 के तहत आदिवासियों के सामुदायिक वन अधिकारों और व्यक्तिगत वन अधिकारों को तत्काल मान्यता देने की मांग कर रहे हैं।

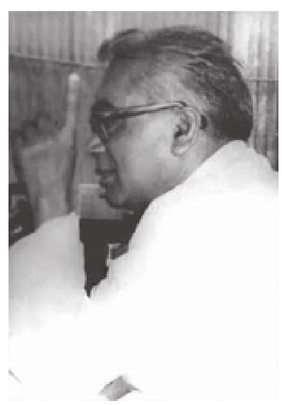
वे यह भी मांग कर रहे हैं कि ग्राम सभा की सहमति और सार्वजनिक सुनवाई जरूरी है ताकि अनुसूचित क्षेत्रों में खनन परियोजना की अनुमति देने से पहले ग्रामीणों के विचारों को जान लेना सुनिश्चित किया जा सके।

यदि प्रधान मंत्री मोदी की सत्ता में वापसी होती तो ऐसा होने की संभावना नहीं के बराबर है।

अब उस विषय पर लौटती हूं जो ठीक मेरी नाक के नीचे घटा है और जिसकी मैं गवाह हूं। 30 जनवरी 2024 को, उत्तर प्रदेश सरकार ने गाजियाबाद, मेरठ और मुजफ्फरनगर के तीन वन प्रभागों के संरक्षित वन क्षेत्र में ऊपरी गंगा नहर के पश्चिमी तटबंध के किनारे उगने वाले एक लाख से अधिक पेड़ों और झाड़ियों की कटाई को मंजूरी दे दी।

इतने बड़े पैमाने पर कटाई की वजह क्या है? 111 किलोमीटर लंबे कांवरिया पथ के लिए रास्ता बनाना। इस सड़क को बनाने में सरकारी खजाने पर करीब 700 करोड़ रुपये का खर्च आएगा और इसे कांवड़ मार्ग कहा जा रहा है। विभिन्न शहरों के लिए गंगा जल ले जाने वाले कांवड़ियों को निर्बाध रूप से चलने की जगह देने के लिए मार्ग। यह तथ्य कि पेड़ों का यह बड़े पैमाने पर नरसंहार अत्यधिक प्रदूषित क्षेत्र में हो रहा है, इसका भी कोई खास असर नहीं दिखाई देता। तथ्य यह है कि यह कटाई इस क्षेत्र की जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी और स्थानीय वन्यजीवों को विस्थापित करेगी, पर इन बातों से उदासीन सरकार पर कोई फर्क पड़ता नहीं दिखता।

अनुवाद — प्रियंकर पालीवार, संपादक, 'अक्षर'



'गद्दारी अपने आप में या गद्दार अपने आप में इतना खतरनाक नहीं होते। गद्दार तभी खतरनाक होता है जब उसके काम को जनता से प्रेम और सहानुभूति मिलती है । मान लो, कोई गद्दार है , गद्दार पार्टी है। जनता उसका साथ नहीं देती,तो क्या होगा? अकेले पड़ जाएंगे , खतम हो जाएंगे। सरकार उनको पकड़ कर हटा सकती है,जनता हटा सकती है। लेकिन जब उन गद्दारों को जनता से सहयोग मिलने लगता तभी वे खतरनाक हुआ करते हैं ।जिन गद्दारों को जनता से सहयोग नहीं मिलता उनका इतिहास में कोई स्थान नहीं। खराब लोग हैं लेकिन बेमतलब लोग हैं। लेकिन जिन गद्दारों को जनता से सहयोग मिलता है वही इतिहास के लिए खतरनाक होते हैं।'

–डॉ राममनोहर लोहिया

महिला दिवस पर केसला में महिलाओं ने लिया संकल्प



अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस को मनाने के लिए सतपुड़ा महिला संगठन और समाजवादी जन परिषद द्वारा केसला में एक कार्यकर्म का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता संगठन की वरिष्ठ कार्यकर्ता गुलिया बाई और संचालन बिसतोरी बाई ने किया। इस कार्यक्रम मेकेसला, नदीपुरा, भूमकापुरा, गोंडिपूरा, सुइया कालाठूंठ, जामुनडोल, झुनकर, सहेली जैसे गांवों से आई हुई महिलाएं काफी संख्या में शामिल हुई। इस कार्यक्रम की शुरुआत दो क्रातिकारी गीतों को गाकर की गई। शुरुआत में महिलाओं ने बताया कि उनके जीवन में अलग-अलग तरह की समस्याएं है जिसके कारण वो संगठन से जुड़ी हुई है। कई महिलाओं ने अपने घरेलू हिंसा के किस्से सुनाए। शराब और घरेलू हिंसा का आपस में रिश्ता है और नशाबंदी का एक अभियान चलाना चाहिए ये बात बिसतोरी बाई ने कही। इसके लिए शराब की दुकानें और शराब की बिक्री बंद होनी चाहिए इस बात को लेकर मीटिंग में महिलाओं की आपस में सहमति बनी। गाँव की आदिवासी और अन्य जातियों की महिलाओं को जो सम्मानघर के अंदर और बाहर मिलना चाहिए वो अक्सर नहीं मिलता है। संगठन की पुरानी नेता शांति बाई ने कहा कि घरेलू हिंसा से निपटने के लिए महिलाओं को घर से बाहर निकलकर दूसरी महिलाओं की मदद लेना और करना होगा। भोपाल से आकर शामिल हुई शिउली वनजा ने कहा कि महिलाओं को पिता की संपत्ती में हिस्सा नहीं मिलता है और यह उनका कानूनी हक है जो उन्हें मिलना चाहिए। भूमकापूरा की अर्चना बाई ने कहा कि महिलाएं किसान है और खेती किसान का काफी सारा काम करती है उसके बावजूद काफी घरों में बही खाते में नाम होने के बाद भी उन्हें किसान सम्मान निधि नहीं मिल रही है जो उनको मिलना चाहिए। आदिवासी क्षेत्र में तेंदू पत्ता टूटने का और वन विभाग के लिए मजदूरी करने का उचित मेहनताना महिलाओं को नहीं मिल पा रहा है। गुलिया बाई ने कहा कि तेंदू पत्ते का दाम बढ़ना चाहिए और इस गर्मी के मौसम में बढ़ती महंगाई को ध्यान में रखते हुए उनके लिए सम्मानजनक मेहनताना तय होना चाहिए। साथ ही तेंदू पत्ता की हर सौ गड्डी पर 5 अतिरिक्त गड्डी ली जाती है इसको घटा कर 1 करना चाहिए। कई गांवों में नल जल योजना नहीं चल रही है इसको लेकर भी महिलाओं ने चिंता जताई। एक बात जो बार-बार सामने आई वो यह थी कि महिलाएं बहुत मेहनत और कष्ट से एक-एक पैसा जोड़कर अपना घर चलाती है पर उनके घर में उनके पति, बच्चे और अन्य सदस्य उनकी इज्जत नहीं करते। जब वो घरों से बाहर निकलती है तब बाहर के लोग, सरकारी दफ्तरों में, थाने में उनके साथ ठीक से व्यवहार नहीं करते। जब आज हम महिला और पुरुष की बराबरी की बात करते है तो महिलाओं के साथ इस तरह का व्यवहार नहीं होना चाहिए। इस मीटिंग में यह संकल्प लिया गया कि इस क्षेत्र की महिलाएं सतपुड़ा महिला संगठन के बैनर तले एकजुट होकर एक दूसरे का साथ देंगी और नशाबंदी, उचित मजदूरी, संपत्ति में हिस्सा, किसान सम्मान निधी मिलने के लिए और घरेलू हिंसा के खिलाफ अपनी आवाज उठायेंगी।

(गुलिया बाई, बिसतोरी बाई)

दिल्ली किसान महापंचायत

दिल्ली में 14 मार्च 2024 को किसान मजदूर महापंचायत हुआ। जिसमें देशभर के सैकड़ों संगठनों के हजारों की संख्या में किसान, मजदूर, महिला, नौजवान, रामलीला मैदान नई दिल्ली में इकट्ठे हुए। कई राज्यों से आए किसान संगठनों के नेताओं ने सम्मेलन को संबोधित किया, और केंद्र सरकार को खूब कोसा। वक्ताओं ने केंद्र सरकार पर वादा खिलाफी का आरोप लगाया कि सरकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों व पूंजीपतियों के इशारे पर काम कर रही है। सम्मेलन को संबोधित करते हुए किसान मजदूर परिषद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री फागराम ने कहा कि केंद्र सरकार ने किसानों मजदूरों को मिटाने की तैयारी कर ली है। जल जंगल जमीन और अन्य संसाधनों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं पूंजीपतियों को सौंपते जा रही है। इस परस्थिति को देखते हुए किसानों और मजदूरों को संगठित होकर अपने हक के लिए सड़क पर आकर लड़ना होगा। इसके सिवाय कोई चारा नहीं बचता है। इस मौंके पर किसान मजदूर परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष चौधरी राजेंद्र, अफलातून, रामदयाल, सुरेश मौर्य, रवीन्द्र सिंह, वीजेन्द्र प्रसाद, गुलिया बाई, कपिल, मोहन, अर्चना प्रीति और रेशम इत्यादि शरीक थे।

***फागराम**, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, किसान मजदूर परिषद्*

(आवरण पृष्ठ 2 का शेषांश)
हैरानी से देखने वालों की तादाद बढ़ती जा रही थी
एक आदमी से रहा न गया आकर पूछ बैठा –
फन्ने खां, तुम तो सजदे के अलावा कभी झुकते नहीं
यह क्या कर रहे हो?

फन्ने खां बोला –
हाँ भाई, मैं सजदे में हूँ!

फन्ने खां : चार
फन्ने खां को रह–रह कर
इतिहास में होने की
तलब लगती थी

वह चाहता था
उसका सबकुछ ऐतिहासिक हो

होता भी था

वह उठता तो लगता
पहले इस तरह कोई उठा नहीं था
वह बैठता तो लगता
सबकुछ बैठ गया है
वह बोलता तो उसका एक एक शब्द
ऐतिहासिक होता
वह चुप रहता तो उसकी चुप्पी दीवार बन जाती
लाख सिर पटको टूटती नहीं थी

उसका हर कदम ऐतिहासिक होता
और जब वह चुपचाप पड़ा रहता
कोई कदम न उठाता
तो वह भी ऐतिहासिक होता

जिस दिन कुछ ऐतिहासिक न होता
फन्ने खां के लिए दिन काटना मुश्किल हो जाता
ऐसे ही एक बेचैनी भरे दिन
उसने एक पिल्ले को गाड़ी से कुचल दिया
और इसकी ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए
इसकी तुलना हजार हजार मनुष्यों के मारे जाने से की

कुछ दिन बाद
उसने इस घटना पर दुख भी जताया
कहा कलिंग युद्ध के बाद अशोक को भी
शायद ही इतना दुख हुआ होगा

एक दिन कुर्सी पर बैठे बैठे
फन्ने खां सोच रहा था
फिर कुछ ऐतिहासिक हो जाए
सोचते सोचते
सोचते सोचते
वह उठा और दीवार से
देश का नक्शा उतार कर
उसमें आग लगा दी

आग अपना काम कर रही थी
फन्ने खां अपना काम कर चुका था।

फन्ने खां : पांच
फन्ने खां के मन में
क्या चल रहा है इसका इजहार
वह कई मामलों में
सिर्फ तस्वीरों के जरिए करता था

मसलन अपने ड्राइंग रूम में उसने
एक संत की तस्वीर लगा रखी थी
और अपने बेडरूम में
उसी संत के हत्यारे की तस्वीर

सोते उठते रोजाना
वह बेडरूम में लगी तस्वीर निहारता
और जब कभी मेहमान या मुलाकाती आते
तो उन्हें ड्राइंग रूम में लगी तस्वीर दिखाता

कभी कभी रात में फन्ने खां
बेडरूम में लगी तस्वीर उतार कर
ड्राइंग रूम में लगा देता
संत की तस्वीर के ठीक सामने
और फिर सुबह उतार कर
वापस बेडरूम में उसी जगह लगा देता

लेकिन कौन सी तस्वीर कहाँ रहे
इस द्वन्द्व से एक दिन उसने निजात पा ली
संत की तस्वीर के बगल में
उसने खुद अपनी
एक बड़ी सी तस्वीर लगा दी।

●

आखिरी पन्ना

बेरोजगारी पर एक बहस

राजेन्द्र राजन

पहली जुबान बोली, देखिए एक बेरोजगार के खुदकुशी कर लेने की घटना पर चर्चा करना फिजूल है। सुसाइड-नोट में भले ही बेरोजगारी से तंग आकर आत्महत्या करने की बात कही गयी है लेकिन ऐसा कई बार देखने में आया है कि बेरोजगार आदमी कर्ज से दबा होता है और उधार न चुका पाने के कारण खुदकुशी कर लेता है मगर सुसाइड-नोट में बेरोजगारी को वजह बता देता है। असल वजह तो फिजूलखर्ची के चलते उधार लेते जाना है।

दूसरी जुबान ज्यादा संजीदा स्वर में बोली, देखिए अभी हमें मालूम नहीं है कि जिस युवक ने खुदकुशी की, उसने कर्ज ले रखा था या नहीं; इसलिए हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि खुदकुशी के पीछे कर्जखोरी वजह थी या नहीं, लेकिन यह पक्के तौर पर कह सकते हैं कि घटना के मूल में गहरा अवसाद था, और अमूमन खुदकुशी करने वाले अवसादग्रस्त होते हैं। यह प्रायः अकेलेपन की वजह से होता है। यह एक मानसिक समस्या है और इससे निपटने के लिए मनोवैज्ञानिकों की मदद ली जानी चाहिए।

अब तीसरी जुबान ने चर्चा में प्रवेश किया, कहा कि खुदकुशी का असल कारण गृह-कलह हो सकता है क्योंकि हम अकसर देखते हैं कि खुद को बेरोजगार बताने वाले युवक अपने आप पर काबू नहीं रख पाते, बदमिजाज होते जाते हैं, घर में झगड़ा-झंझट करते हैं और आखिर गृह-क्लेश की बलि चढ़ जाते हैं।

चौथी जुबान ने जानकारी का तड़का लगाते हुए कहा, देखिए बेरोजगारी पर जो नयी रिपोर्ट आयी है उसमें गाँवों में भी और शहरों में भी बेरोजगारी बढ़ने के आँकड़े तो दिये गये हैं और इस पर सरकार को आगाह भी किया गया है लेकिन उसमें बेरोजगारी की वजह से किसी के खुदकुशी करने की बात नहीं लिखी है।

यह आर्थिक ज्ञान आ जाने के बाद पाँचवीं जुबान ने मामले पर राजनीतिक प्रकाश डाला, कहा कि कुछ लोग इस घटना पर केन्द्र से नाहक सवाल कर रहे हैं, जबकि यह घटना केन्द्र में नहीं एक राज्य में हुई है।

छठी जुबान ने इससे इत्तफाक जताते हुए कहा, ऐसे वाकये किसी न किसी राज्य में ही होते हैं इसलिए केन्द्र से सवाल पूछने का कोई मतलब नहीं है, और मुझे तो शक होता है कहीं इस तरह के सवाल उठाने के पीछे केन्द्र को बदनाम करने और देश की छवि खराब करने की साजिश तो नहीं है!

यह सुनते ही सातवीं जुबान का पारा चढ़ गया और वह बोल पड़ी कि देखिए, जब हम चाँद और मंगल पर जा रहे हैं और महाशक्ति बनने की दहलीज पर खड़े हैं तब बेरोजगारी के चलते किसी के खुदकुशी कर लेने जैसी छोटी-मोटी घटनाओं पर हमें ध्यान नहीं देना चाहिए। मेरा तो यह भी मानना है कि ऐसी खबरें छापने दिखाने पर रोक लग जानी चाहिए।

अब आठवीं जुबान की बारी थी। उसने कहा कि देखिए, हम चाहकर भी बेरोजगारी की समस्या से आँख नहीं चुरा सकते, इसलिए अच्छा हो कि सरकार बेरोजगारों को किसी काम में लगाने की औपचारिक या अनौपचारिक योजना बनाए और सबसे अच्छी योजना यही होगी कि उन्हें राष्ट्र-विरोधी तत्त्वों से निपटने में लगा दिया जाए।

नौवीं जुबान ने चर्चा को दार्शनिक रंग देते हुए कहा, देखिए बेरोजगारी कोई समस्या ही नहीं है, एक ही समस्या है जनसंख्या वृद्धि। इसलिए चाहे कोई बेरोजगारी की वजह से, चाहे कर्ज के चलते खुदकुशी करे, इस पर माथा पीटने की जरूरत नहीं है। हमें यह मानना चाहिए कि प्रकृति संतुलन बिठाने की कोशिश कर रही है।

दसवीं जुबान ने समापन करते हुए कहा, असल समस्या यह नहीं है कि देश में बेरोजगारी बहुत बढ़ गयी है। असल समस्या यह है कि बेरोजगारी का शोर मचाने वाले बढ़ गये हैं। अगर बेरोजगारी का सवाल ही न उठाया जाए तो इस तरफ किसी का ध्यान ही नहीं जाएगा और तब शायद कोई बेरोजगार खुदकुशी ही न करे। इसलिए मेरा तो मानना है कि खुदकुशी की यह जो घटना हुई है, इसके लिए उन लोगों को जिम्मेदार मानते हुए, जो बेरोजगारी का शोर मचा रहे हैं, उनमें से कुछ चुनिंदा लोगों के खिलाफ खुदकुशी के लिए उकसाने का केस दर्ज किया जाए।

इस तरह बहस का समापन हुआ। फिर दसों जुबानें एकसाथ देर तक अट्टहास करती रहीं।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार प्रसाद सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091 से प्रकाशित और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4 ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : **अफ़लातून**